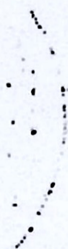
कुँवर नरेन्द्र सिंह रचित

तंत्र और योग वाङ्गमय की खोजपूर्ण कृति

कामाक्षी चषकम्





तन्त्रौट योगः



तंत्र और योग वाङ्मय की अद्भुत खोजपरक कृति
साहित्याकाश का ज्योति-नक्षत्र

कामाक्षी चषकम्

कुंवर नरेन्द्र सिंह



सहजानन्द फाण्डेशन, दिल्ली-110053

प्रकाशक:
सहजानन्द फाउण्डेशन
बी-5/263, यमुना विहार, दिल्ली-110053 (भारत)
मो.न. 08010339910
email: ashok.sahajanand@gamil.com

संस्करण : प्रथम, 2017
मूल्य : रु. 500
ISBN : 81-85781-94-X

मुद्रण व्यवस्था एवं वितरण
मेघ प्रकाशन
239, दरीबाकलाँ, चाँदनीचौक, दिल्ली-110006 (भारत)
मो.न. 09811532102
email : meghprakashan@gmail.com

दो शब्द

श्री अक्षर - चञ्चु उवाच

वर्षों पूर्व स्वनामधन्य विश्रुत साहित्यकार डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय रचित 'जाग मछन्दर गोरख आया' औपन्यासिक कृति दृष्टिक्षेत्र में आई थी। इसके पूर्व भी युगपुरूष मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ तत्सम्बन्धी ग्रन्थ भी दृष्टिगोचर हुए। लगभग सभी ग्रन्थों में और लोक-कथाओं में एक समान सार यह था कि गोरखनाथ ने नारी देश में बद्ध उनके गुरूवर्य श्री मत्स्येन्द्र नाथ को मुक्त कराया था। इसके पूर्व भी युगपुरूष श्री मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथ के चरित्रों पर आधारित पुस्तकें दृष्टि क्षेत्र में आयी थी। सभी में एक ही बात मुख्य रूप से लिखी गई थी कि गोरखनाथ ने स्त्री राज्य में नारी मोह में आबद्ध अपने गुरू श्री मत्स्येन्द्र नाथ का उद्धार किया। जब भी यह बात मेरी स्मृति में आई मन में, यशःपूत, अक्षरविन्यासी विद्वानों की इस उक्ति पर आक्रोश हुआ। किसी ने यह नहीं सोचा कि गुरू शिष्य का उद्धारक होता है, शिष्य गुरू-उद्धारक नहीं।

जब यही चुभन मैंने गुरूदेव पं, गोविन्द शास्त्री, चौंमू (जयपुर-राजस्थान) के श्री चरणों में रखी तो वे एक क्षण मौन हो गए फिर बोले "नरेन्द्र जी अब तक विद्वानों ने लोकश्रुति को मान्यता देकर ही इन योगियों का चरित्र चित्रण किया है, पर ये चरित्र-चितेरे मूलतः 'लेखक' थे, साधक नहीं। मत्स्येन्द्र के दिव्य चरित्र का दर्शन लेखक के चर्मचक्षुओं से नहीं, साधक के अन्तःचक्षुओं से किया जाए, यह एक अन्वेषण होगा और मान्य भी। आप इसी महनीय बिन्दु को ध्यान में रखते हुए लिखो, अनेक रहस्य स्वतः ही अनावृत होते चले जाएंगे।"

मैं साधक नहीं! लेखक भी नहीं!! फिर भी गुरूचरणों की पादुका देवी का स्मरण कर लिखने बैठा। यद्यपि यह मेरा अहं भाव ही था कि मादृश्यजन, भगवान मत्स्येन्द्र के योगिनी कौल सम्प्रदाय पर लिखे, जिसके विषय में मेरी कोई गति नहीं, ज्ञान नहीं, पर लिखने बैठ गया। इस लेखन के मध्य अनेक दिव्य-अनुभव हुए, अवरोध भी आए, कुछ मित्रों ने उत्साहवर्द्धन भी किया तो कुछ मित्र विघ्न का साकार रूप भी बनें, पर यह गुरू कृपा ही थी जिसने यह पुस्तक पूर्ण की। लेखन के मध्य अनेकों अवसरों पर मुझे श्री गुरूदेव का स्वर नाद श्रवण गोचर हुआ, उन्हीं की कृपा से माँ ऋतम्भरा के विविध स्वरूपों के दर्शन भी हुए और प्रभु मत्स्येन्द्र की लीला भी भाषित हुई। प्रयास है कि इस पुस्तक में आए चरित्रों से किसी सम्प्रदाय, पाठक एवं अन्य किसी को क्लेश या अमर्ष का भाव उत्पन्न न हो, फिर भी कहीं किसी को ऐसी प्रतीत हो तो अल्पज्ञ मान क्षमा करें।

अशोक सहजानन्द जी ने जिस तत्परता से "कामाक्षी-चषकम्" के प्रकाशन में कार्य किया, वह स्तुत्य है। उनके यशस्वी चिरंजीव मेघराज जैन ने इस प्रकाशन में 'सेतु' का कार्य किया। परमेश्वर उनका सर्वोत्थान करे। 'कामाक्षी - चषकम्' का आवरण चित्र मदन झा एवं अशोक योगी की देन है। मदन जी ख्यातनाम छायाकार हैं और अशोक योगी प्रसिद्ध दार्शनिक, मैं इनका हृदय से आभारी हूँ। वहीं मेरे चिरस्नेही नरेन्द्र श्रीमाल की स्नेहसिक्तता भी आर्द्र करती है। प्रसिद्ध शिक्षाविद और चिकित्सक किरीट, डॉ. निर्मल सोनी-गुना (म.प्र.) का अलौकिक आशीर्वाद भी "कामाक्षी-चषकम्" को मिला, उनका कोटिशः आभार।

कुँवर नरेन्द्र सिंह

रूठियाई (गुना) म.प्र.
मोबाइल - 08982189670, 09039841008

- अक्षर को नहीं बांध सकते
- शब्दों की परिधि में
- निंःसीम व्योम, नहीं समाता
- अक्षि देशमें
- उनकी कृपा-औदार्य और करुणा
- लोक शर्म्मण, तप और तितिक्षा!
- वे प्रत्यक्ष तीर्थराज थे
- शास्त्र उनसे ही उद्भूत
- उन्हीं पुण्य पुरुष, पाण्डित्य के किरीट
- यशःशेष, प्रातः पुण्य स्मरणीय देशिकाचार्य
- श्रीमत्गोविन्द- शास्त्री जी चौमूं-जयपुर
- उनकी पावन स्मृति का अभिषेकभूत

यह 'सहजानन्द पुष्प'
सादर समर्पित है।

—कुँवर नरेन्द्र सिंह
02.12.2015

श्री

अति सुललित गात्रां हास्य वक्त्रां त्रिनेत्राम्।
जित जलद सुकान्ति पट्ट अस्त्र प्रकाशाम्।।

अभयवर कराढ्यां रत्न भूषाति भव्याम्।
सुर तरु तल पीठे रत्न सिंहासनस्थाम्।।

हरि हर विधि वंद्याम शुद्ध-बुद्धि स्वरूपाम्।
मदन रस समाक्राम कामनी कामदात्रीम्।।

निखिल जन विलासोद्याम रूपां भवानीम्।
कलि कलुष निहत्रीम योनि रूपां भजामि।।

वह स्व वसित आन्तरी[1] के आंतरिक्ष विस्तार बिन्दु की आनन्दि[2]-अधिष्ठात्री दैव्या का, परिश्रुतपूर्ण[3] गान स्वर से स्वयं का ही परिष्कार[4] रच रही थी। यह कैसा वैचित्र्य! यह कैसा आश्चर्य!! यह कैसा ताच्छील्यभाव[5]? वह स्वयं ही स्वयं का अर्चन करती है-स्वयं से ही बाराकांक्षिणी है, स्वयं ही साधक; स्वयं ही ईष्ट। वह ईष्ट जो योनि मन्दिर की आन्तर्गुहा[6] में सुरा रूप में निवासित है, वह आनृशंसी[7] जिसके चिरशाश्वत रूप का स्वयं ब्रह्मा यजन करते हैं, जगत्पोषक विष्णु उसके आपांगवीक्षणी[7] कृपा प्राप्ति को आतुर हैं और प्रलय के देव महेश अपने अकुल स्वरूप का विस्मरण कर उसकी सदेह विस्तार शून्यता को अपने भस्माच्छिादित कबंध पर स्थापित कर उन्मत्त उपास्यी के समान भ्रमण करते हैं, वही त्रिकोण-निवासिनी उसे अभीष्ट है, प्रिय है क्योंकि वह उसी का समग्र किंवा महाविस्तारित रूप है, आनन्दकोष है, बृह्माण्य[8]-उद्भूति-उद्यान है।

वह महायोनि का प्रीण[9] प्रयंकर[10] विग्रह था। कामाक्षी नित्य उसका मानन-आराधन कर्म सम्पन्न करती थी। नारी राज्य की प्रथम साम्राज्यी कामरूपा ने यह महायोनि का मान्मथी[11] मदिर विग्रह स्थापित किया था। कामरूप राज्य की प्रत्येक शासिका ने इसी विग्रह की कामराजि[12] का मसृणार्चन[13] कर सिद्धि प्राप्त की थी। परम्परानुसार उसे भी प्रकृति के इस अर्चिस्[14] रूप की आराधना श्रेयकर थी।

कामाक्षी सौन्दर्य का अर्क[15] थी, स्वयं अर्णवोद्भवा[16] का प्रकट विग्रह थी इसलिए कामरूप देश के नारी-नागर जनों की दृष्टि में अर्कोपला[17] सी अरेपस्[18]

थी। कामराग-से उत्क्लेद[19] कण्ठी गायिकाएँ-गणिकाएं उसके नित्य सौन्दर्य का यत्र-तत्र उत्कीर्तन[20] करतीं उसके उत्तमारूप[21] का वर्णन करती, उसके क्षिपण्यु[22] पूरित और क्षीर[23] वर्णी यौवन मण्डित देह को महाभिषव[24] से निर्मित महेशानी[25] के प्रकुल[26] के समान मान कर सतत वन्दना करती वे गणिकाएं कभी श्रमक्लान्त नहीं हुई।

प्रतिमाह की शुक्लपक्षीय त्र्योदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा, इन धौत तिथियों में जब महाराज्ञी कामाक्षी उदक्या[27] रूप में स्थित होती तब राजधानी में जैसे हिरण्यलोक ही अवतरित हो जाता। पूर्णिमा की धवल चन्द्रिका में भाँति-भाँति के प्रक्रीड सम्पन्न होते क्योंकि उसी रात कामाक्षी के प्रकृति[28] चिन्ह की रजस्त्रावी राजि[29] से से रज प्रक्षरण[30] का रजोत्सर्ग[31] सम्पन्न होता था।

शरद पूर्णिमा की रात्रि बेला में विशिष्ट वार्षिकोत्सव सम्पन्न होता था। उस रात प्रालेयांशु[32] के धौत प्रावर[33] में जब मेदिनी[34] चन्द्रालोक से प्रावृत[35] होती तब नगर नारी-संकुल योनि मन्दिर के प्राङ्गण्य में एकत्रित हो जाता। वहाँ नृत्यांगनाएं अपना अलौकिक नृत्य प्रस्तुत करती। वे सभी सुभग धारिणी, चारू लोचनी, शोभा की उत्स और सुकुमारिता की चक्षुष्या[36] चञ्चरीक[37] के समान चटुल्ललोल[38] शब्द करती हुई विविध काम्य क्रियाओं के कौतुकों का, अपनी सखि संग हिल्लोलासनों[39] का, अन्य रति बन्धों का मुक्त रूप से प्रदर्शन करती नाट्य रचती थी!

ललित गात्रा कामाक्षी पांच वर्ष की अल्पायु से ही देवी कामाख्या के नित्य साधन में रत हो गई थी। तेरह वर्ष की आयु में कामाक्षी को सिद्ध गुरु महातपा ने वज्र मंत्र से अभिषिक्त कर उसे अपने मूल लक्ष्य-गवेषण[40] को प्रेरित कर दिया था। उस काल किशोरी की स्निग्ध सिंच, मृणालमयी, सद्य दुग्धवर्णी देहयष्टि पर कामदेव की प्रिया देवि रति ने, अपने कामिकांगो से लावण्य रस को एकत्र कर कामाक्षी को रस्यमण्डिता संज्ञेय बनाने का उपक्रम प्रारम्भ कर दिया था।

प्रथम बार उसकी सुरभित देहयष्टि के निर्रोमश[41] योषांग[42] से रज का रोचिस्विन[43] रजवारि के रूप में प्रकट हुआ, उस स्वयंभु कुसुम[44] से आप्त कपास को सृष्टि की उद्‌भूता महाजननी कामाख्या ने नैवैद रूप में स्वीकार कर कामेश्वरी ने जैसे उसे तद्रूपता का अमोघ वर प्रदान किया हो। उसके पश्चात् तो कामाक्षी के कैशौर्य रौप्य[45] यौवन के रोह[46] पर शोभा की सुकाँति नित्यारोहन करने लगी। उसने ललिता[47] के ललाम[48] लावण्य[49] का लालित्यसिन्धु[50] लसित[51] हो लास्य[52] करने लगा।

कामाक्षी की नगरी[53] में आवासित गोप्यिकाएँ[54] नट[55]-नट्टियों ने आवेशित नट्न[56] प्रारम्भ कर दिया। जैसे स्वयं पिणाकपाणि कामाक्षी की प्रमुद्[57]-प्रभा के प्राङ्गण्य में प्रमुदित हो उठे। कामाक्षी में प्रमावृति[58] सहज थी, जो उसे मन्मथ की मैथुनी सज्जा से संवार कर आत्मकाम के बोध प्रघ्यान[59] की ओर प्रकर्षित कर रही थी। स्वयंम्भु कुसुम प्रक्षरण के पश्चात् ही कामाक्षी की अन्तःचेतना आध्यात्मानन्द की आह्लादिक उर्मि के रसानन्दी ब्रह्माण्य में संचरण करने लगी।

वह नित्य कामाख्या के सजाग्र विग्रह का अर्चन करती, जपश्चर्या में रत रहती, गहन ध्यान के पराकाश में उसके आन्तर्चक्षु स्थिर हो विविध दैव्यांगनाओं के मुक्त रूप का सुदर्शन करते, वह मुग्ध हो जाती, सुकुमार गात्र लोमहर्षित हो हर्षोत्सव मनाता, पर इस प्रहर्षण में उस किशोरी को यत्किन्चन विघ्नानुभूति उन अतिरेक क्षणों में होती जब महि से गगन तक का वलय लम्ब धारण किए, स्फटिक से धौत, रजत से रोचिस्[60] ज्योर्तिमय महालिंग का अन्तःदर्शन करती।

उसके किशोर मन में सहज जिज्ञासा प्रज्ञा योनि से प्रसूत होती। विस्तारित चित्ताकाश के वक्ष पर अनेक प्रश्न दीप्ति नक्षत्रों के समान अरूषित[61] हो उठते। वह स्तब्ध-अवहित[62] हो उस अनावहेल[63], अवनदात्र[64], अवाप्य[65] ज्योतिर्मय पिण्ड को श्रद्धातिरेक से प्रणाम कर कुमुदनी की भाँति प्रफुल्लित हो उठती। यह वर्तुल पिण्ड क्या है? इससे उद्‌भाषित-आलेक उसके चित्त को क्यों प्रशान्ति प्रदान करता है।? सहज प्रश्न-निरूत्तर थे, किशोरी कामाक्षी के लिए। इस भास्वर[66] भण्डिल[67] भासपिण्ड[68] के विषयक कामाक्षी ने अपनी समवयस्क सखी-सहचरी मेखला और पताका से भी जिज्ञासा शमन हेतु परिचर्चा की पर वे दोनों किशोरियां भी चकित भाव से सुनती रही, कुछ शमन नही कर सकी।

इसी महिमन्[69] पूर्ण प्रसंग को कामाक्षी ने अपनी माता महाराज्ञी तिलोत्तमा को भी सुनाया। सकल श्रवण कर सौन्दर्य और औदार्य की उत्स मही[70] तिलोत्तमा के आरक्त-अधरों पर रक्ति स्मित की रमा[71] रास[72] करने लगी। उसने अक्षिविकसित[73] अपांग दृष्टि से स्वजाता कन्या की नवनीतता को सस्नेह निहार कर स्निग्ध स्वरोच्चर किया-"पुत्री आराधयितृ[74] के मानस लोक में जब भावलोक का विहंगम विस्तार होता है तो सत्व तत्व उदित होता है। ब्रह्मचर्यानुसार संयम और ब्रह्मचर्य व्रत से ही ऐसे भाष्मान अनुभवों की उत्पत्ति या अनुभूति का निष्कर्षण होता है, पर यह योगिनी कुलाचार द्वारा सम्पूर्णतः मान्य नहीं।"

"तब संपूर्णतः मान्य क्या है मातु?" कामाक्षी का सारभूत प्रश्न था।

"वही, जो सर्वमान्या है।"

–"फिर यह सर्वमान्या क्या हैं, भगवति।?"

–"सर्वमान्या कामाक्षी है, मैं हूँ पुत्री–तू है। निखिल ब्रह्माण्य को अपनी महायोनि के महाविवर से प्रसूत कर्त्री कामाख्या है, वही प्रसूता ही सर्वमान्य–सर्वमान्या है, नर, नाग, यक्ष, किन्नर, रक्षसंस्कृति के पोषक, देव संस्कृति के पालक, रज, तम और सत्व गुणों के अधीश्वर विष्णु, महेश और ब्रह्मा इत्यादि सर्व जीव एकमेव कामाख्या का ही मनन, अर्चन, वंदन करते है। वही श्रेष्ठ है, वही श्रेष्ठतर। उसी कामाख्या के स्रित[75]–सिक्त[76] चिन्ह को धारण कर हम सिता[77] संज्ञा से अभिशब्दित[78] हैं। हम स्त्रियां रजोमयी राज्ञी है इसलिए राजस का देवत्व विष्णु हमारे पीनोन्नत वक्ष मण्डल के वर्तुल वितान में बसता है और क्षीर के अमल रूप में साक्षात् प्रकट–प्रकट भवा हो पोषण करता है। ब्रह्मा की सकल सृष्टि का समग्र केन्द्र योनि है.....मात्र योनि....। इसलिए यही सर्व पूज्या है–सर्वमान्या है, स्वयं सिद्ध है, सर्वाभिव्यापिका[79] है।"

"उस पाषाण चिन्ह से सर्व चरिष्णु[80] जगत कैसे उत्पन्न होता है माते। यह तो परमाश्चर्य है।" किशोरी कामाक्षी के दृष्टि पटल पर अपने मन्दिर में स्थापित कामाख्या के चिन्ह विग्रह की छवि मूर्तिमती हुई।

"योनि का वह पाषाणी चिन्ह तो प्रतीक मात्र है चर्चिका[81] पुत्री। उसका मूल विग्रह हो मादृश्य–तादृश्य चार्वंगी[82] योषिताओं[83] के रेतस्[84] चिर्कीषु[85] भग चक्र में स्थापित है। उसी से सर्वसृष्टि का प्रादुर्भाव है।"

"महाश्चर्या है यह।" कामाक्षी के स्वच्छ–निर्दोष नयनायतों में विस्मय स्फूर्त हुआ।

"यह स्त्यानी[86], स्तोम्या[87] नारी नगर के किस स्थल में स्थगिता[88] है जननी।?" कामाक्षी के स्वर में मंदता थी और हृत्कमल संकोच से निर्स्फूत।

"यह अभिज्ञान तुझे कामचार शिक्षिका लोलापा प्रदान करेगी उसकी नियुक्ति तेरे कामज्ञान हेतु कर दी गई है। कल प्रातः सुलग्न बेला से तेरा कामाध्ययन प्रारम्भ हो जायेगा।"

अपनी बात समाप्त कर महायज्ञी, कामाक्षी जननी, तिलोत्तमा राज्य कार्यावलोकन हेतु प्रस्थान कर गई। कामाक्षी माँ के आश्चर्यचकित करने वाले संवादों के मर्म का संधान करती चिंतन में डूब गई!

1. भीतरी, गुप्त
2. हर्ष, कौतूहल
3. उमंग सहित या मद सहित
4. श्रृंगार
5. किसी काम को लगातार करने की क्रिया
6. गोप्य गुप्त गुफा
7. कृपालु, कोमल
8. कटाक्ष
9. ब्रह्माण्य की उत्पत्ति
10. प्राचीन
11. प्रसन्नता करने वाला
12. कामदेवीविषयक
13. यौन रेखा
14. मनोहर पूजन
15. अग्निपिण्ड (अंगारा)
16. सूर्य
17. लक्ष्मी
18. सूर्यकांत मणी
19. स्वच्छ, निष्पाप
20. यौन राग से भीगे कण्ठ से गायन करती गायिकाएं
21. स्तुति करना
22. श्रेष्ठा (स्त्री)
23. बसंत ऋतु से परिपूर्ण
24. दूध के रंग की
25. सोमरस के आधिक्य से उत्पन्न
26. पार्वती
27. सुन्दर देह
28. रजस्वला
29. भग-योनि
30. लकीर-रेखा
31. टपकना बूंद-बूंद करके चूना (पानी का यहां आशय रज बूंदो के टपकने से)
32. रज (महावारी M.C.) से निवृति
33. चन्द्रमा
34. परकोट या घेरा
35. पृथ्वी
36. आच्छादन
37. दर्शनीय (सुन्दर) स्त्री
38. भ्रमर
35. मधुर भाषी
40. एक विशेष रतिबन्ध

    यथा-हृदि कृत्वा स्त्रियः पादौ कराभ्याम धारयेत् करौ।
    यथेष्टं ताडयेत योनिं बन्धो हिल्लोल संज्ञकः।।

41. खोज
42. रोम या लोमहीन
43. स्त्री अंग (यहां आशय योनि से)
44. तेज
45. प्रथम वार हुई रजस्वला कुमारी का रज
46. रजत
47. ऊपर चढ़ना
48. रमणी
49. रमणीय-श्रेष्ठ
50. मनोहरता, सलौनापन
51. प्रीति वोधक हावभाव का संसार
52. प्रादुर्भूत या प्रकट हुआ
53. हर्ष सहित नृत्य
54. देह
55. देह में स्थित रससिक्त नाड़ियां
56. नृत्य-अभिनय करने वाला
57. नृत्यमय अभिनय
58. अतिहर्ष युक्त
59. यथार्थ ज्ञान
60. गम्भीर ध्यान
61. चमकीला
62. चमक
63. सावधान, एकाग्र

64. जिसका तिरस्कार न किया जा सके
65. हर्ष प्रदाता
66. प्राप्त करने योग्य
67. चमकीला दीप्तिमान
68. मंगलकारी
69. प्रकाश पिण्ड
70. महत्वपूर्ण
71. भूमि
72. शोभा
73. हर्ष सहित नृत्य का भाव
74. तिरछी चितंवन
75. आराधना करने वाली
76. चमकीला
77. सिंचित-गीलां
78. मन्दिरा से (मद से युक्त सुन्दर नारी से आशय)
79. घोषित या वर्णित
80. सभी ओर विस्तारित
81. जंगम
82. आराधिका
83. सुन्दर अंगो वाली
84. स्त्रियां
85. वीर्य
86. अभिलाषी
87. अमृता
88. प्रशंसनीया
89. छिपी हुई

लोलापा!

आयु लगभग 30 वर्ष।

रूप-यौवन माधुर्य से सम्पन्न लावण्यवती लोलापा की दर्शनीय, बंसत वसित, गौरोज्ज्वल कमनीय काया की रस रति मे जैसे कामदेव चिरस्थायी निवास करते थे अथवा रतिदेवी ही उसके स्फुरित-स्मित अंग प्रसार के उच्चावच्चों में नित्य क्रीड़ालीन थी। उस नित्य-निर्दोष-शृंगारिणी के कायगेह में कामकलाएं वैसे ही आश्रय पाती थी जैसे नवनीत स्निग्धा हिमसुता कुमार्य्याचारी पार्वती के अन्तःक्षेत्र में अकुलदेव कैलाशी को प्राप्ति हेतु भक्ति भावनाएं।

मंगलामुखी लोलापा विदुषी, परिचय चारुणी और कला प्रवीणा थी। वह चारूस्मिता कामाचारणी को 64 कलाएं[1] सिद्ध थी जिसके कारण भूत राज्य-समाज में उसे विशिष्ट आदर प्राप्त था। इसके अतिरिक्त लोलापा में एक अन्य विशेषता भी थी जिसके कारण वह सर्वजन आदरणीया के साथ ही श्रद्धा की भी पात्र बन गई थी।

लोलापा की वह विशेषता थी, उसकी साधना-उपासना। कहा जाता था लोलापा भोट देश के किसी सिद्ध वज्रयानी की पट्टु शिष्या थी। अधिकांश नगर संकुल यह भी मानता था कि लोलापा को महायोगी, कौलाचार्य श्री मत्स्येन्द्रनाथ के गुरुभ्राता श्री जालन्धर पाद के सुयोग्य कापालिक शिष्य श्री कृष्णपाद ने उसे कापालिक पंथ में दीक्षित किया था। अनेक महानिशाओं में निविड-अंधकाराच्छादित चित्या क्षेत्रों की भयावह-उत्संग में, उसने महाशवों पर आसन लगा शवसाधन किया है, प्राणहीन देहों को भी रिझाया है और उनके संप्रलयकाल में संचेतना की उर्मि का शवकायों में संचार किया है।

श्मशानी साधनाएं, शवसाधन-जागरण, वैतालादि का दर्शन और अनेक कापालिक साधन साधने के पश्चात लोलापा जब राजमहिषी चारूलोचना यौवन की पुण्य सरिता महाराज्ञी श्रीमती तिलोत्तमा के सख्य भाव से स्थित हुई तो वज्रयान सिद्धान्तों को स्वीकार कर वह भी वज्र योगिनी हो गई। जन सामान्य यह भी मानता था कि महाराजी तिलोत्तमा और वज्रयोगिनी लोलापा दोनों के गुरु एक ही थे। सम्भवतः यही कारण था कि तिलोत्तमा और लोलापा का सख्य भाव सहोदरि-भगिनियों के भ्रातृ-भाव में परिवर्तित हो गया! तिलोत्तमा अनुभव और आयु में लोलापा से ज्येष्ठ थी। जब तिलोत्तमा ने कुमारी (कन्या) पुत्री को

कामाचार शिक्षा के लिए-लोलापा का चयन किया तो लोलापा ने प्रसन्न गात्र से स्वीकार कर लिया।

शुभ मुहूर्त में प्रांगी[2] लोलापा ने मूलाधाराधीश स्थित गणेश का पूजन सम्पन्न कराकर कामाक्षी का काम्याचार शिक्षण प्रारम्भ किया। कामाक्षी के साथ ही मेखला और पताका दोनो सखियां भी थी। हालांकि मेखला और पताका कामाक्षी की परिचारिकाएं थी पर कामाक्षी उन्हें सख्य भाव से ही मान देती थी!

लोलापा ने शिक्षा की प्रारम्भिका में कहा-

–"सत्रपा कामाक्षी! नारी ही सर्वश्रेष्ठा है, क्योंकि वह प्रकृति की प्रत्यक्ष प्रांगण-धरा है, उसी की सारभूता प्रकीर्ति[3] है। उसके दिव्य प्रकुल[4] में, उसके प्रकृतिप्रागार[5] में संवेश[6] देव सहित त्रिगुणधारी त्रिदेव निवास करते है। इस कारण वह जगत्सपर्या[7] की प्राक्तन पात्र है क्योंकि वही संसार मार्ग की संसृति[8] है।"

–"प्रकुल-प्रागार के किस देश में देवत्र्य सहित संवेश का आवास है देवि? कामाक्षी की जिज्ञासा स्वर के रूप में मुखरित हुई।"

–"नारी के त्रिकोण में देवत्र्य संवेश सहित शव रूप में उपस्थित है कामाक्षी। यह त्रिकोण ही संवेशक की सदयवृत्ति[9] के शिव संकल्प से सक्त[10] होकर सकल कुल का संसरण[11] करता है।"

"पर संवेश तो शवातीत-अवस्था में महासुप्त हैं देवि, लोपा, वह इस अवस्था में किस भाँति समीचक[12] कर्म से संवेशत्रिकोण[13] में सर्वशस्[14] सर्ग[15] रत होते है? मेरी प्राकृत जिज्ञासा भी कहे-कहें वह त्रिकोण कहां स्थित हैं? जहां पर सृष्टि सर्ज्[16] कर्म संपादित हो रहे हैं।? कामाक्षी लोलापा के संलाप[17] संवाद से और अधिक विजिज्ञासु हो उठी।

लोलापा ने कामाक्षी को स्नेह-स्निग्ध दृष्टि से निहारा फिर प्रसन्न स्वर में उसकी मेघा को "धन्य-धन्य" कह कर प्रशंसा की। एक क्षण रुक कर कामचारिणी ने ओजस्विन स्वर में कामाक्षी से पुनः संवाद किया।

–"संवेश त्रिकोणस्थ अन्तःकुहर में निवास करते हैं और देवत्र्य की स्थिति इस भाँति है पर इसके पूर्व उस 'त्रिकोण' की उपस्थिति कहती हूँ। कुण्डलनी का वह मुख जहां त्रिपुर इड़ा, पिंगला और सुषम्ना संयोगित होती हैं, और जो इन तीनों की सुपोषिका शक्ति है वही त्रिपुरा तथा जहां त्रिपुरा का वास वहीं त्रिकोण। अतः त्रिकोण की अधिशासिका त्रिपुरा हुई। यह त्रिपुरा त्रिकोणस्थ अन्तःगुहा के

मध्य बिन्दु भवन में 'संवेश देव' के शवासन पर आसीन है। इस त्रिकोण की नित्य उपस्थिति प्रकृति की प्रतीक नारी के भगदेश में मान्य की जा सकती है। इसी देश के प्रदेश पद्मों में सत्व और तम के द्वय देव तथा रज का देव योनिपत्रों के विस्फार पश्चात आकाशी विस्तार में रमण करता है।" (योनि देवि के एक ओठ पर सत्व, द्वितीय पर तम तथा इस संम्पुटन के मध्य विविर में रज देव का निवास होता है ऐसी वामाचारी तांत्रिकों की मान्यता है) लोलापा ने एक क्षण मौन धारण कर कामाक्षी के कलंवित पुटित बदन को तीक्ष्ण दृष्टि से निहारा। जैसे उसने परीक्षा की। कामाक्षी के आयत, स्वच्छ लोचन भूस्पर्शी थे। लोलापा ने अपना कामज्ञान क्रम आगे बढ़ाया।

–"वामोरूकन्या[18], लावण्या के मदिर मंदिर में शववत् शून्य देवों को त्रिपुरा की षट् सहायक देवियां अपने रास-लास्य से इन शवों पर महाघात करती है, संघट्टाघात[19] करती है तब वे शव प्राणतोषित हो जाग्रत होते हैं। वे छैः देविया जिनका निवास लोक की प्रतीत योनि में हैं। योनि के गुह्य गाम्भीर्य में 'पुत्री' महादेवी (नाड़ी) योनि के अन्तः दक्षिण में 'दुहिन्निणी' वाम भाग में 'सती' दक्षिण में 'असती' योनि विविर के मध्य वाम-दक्षिण पार्श्व में कुछ अन्तर से 'सुभगा' और 'दुभर्गा' देवी (नाड़ी) निवासित है। ये सभी देवियां (नाडियां) अपने नामानुसार फल प्रदात्री हैं। 'पुत्री' नाडी के संचारण से नारी चिरयुवावस्था को प्राप्त होती है, सुभगा के संचालन से सौभाग्यवती, दुभर्गा संचालन से रूक्ष वर्णी, असमय में वृद्धावस्था को प्राप्त, दुहित्री संचालन से कन्या जननि का सौभाग्य प्राप्ता होता है।" लोलापा पुनः ठहरी फिर वाक् निःसृरण किया-

–"कुचमर्दन[20] से संहतस्तनी[21] की 'सती' प्रस्फुरित होती है, सुभाङ्गी की वाम-दक्षिण भाग (बगलें) सहलाने से असती, वामा के अधरोष्ठ चुम्बन से सुभगा और योषिता के कटाहतल[22] क्षेत्र सहलाने से दुभर्गा, ललना के श्रीमुख चुम्बन से 'पुत्री' और ललिता के ललित-ललामी नितम्बों के सहलाने से 'दुहित्री' दैव्या में क्षोम-उत्पन्न होता है। ये सभी चारूवनिता स्वरूपिणी देवियां (नाडियां) त्रिपुरा की सहायिकाएं हैं। वे ही शव पर आघातकर्त्री भी हैं!

–"यह त्रिपुरा! यह त्रिपुरा का स्वरूप क्या है देवि!?" कामाक्षी के लावण्य मण्डित मुख पर लज्जा का अरूणोदय हुआ।

–"त्रिपुरा!" कह कर लोलापा हँस उठी। उसकी मोक्ति खंच धवल रदस्पंक्तियाँ[23] विद्युत प्रभा के समान चमकी। वह क्षण हास्य कर मृदुल पर ज्ञान संवृत्त स्वर में बोली-

"त्रिपुरा! तू है सुहासिनी, मैं हूँ, यह मेखला और पताका भी हैं, महाराज्ञी और तेरी जननी देवि तिलोत्तमा भी त्रिपुरा का ही संसिद्धि स्वरूप है और वह हमारी कुलाराध्या भी जिसे जनमत 'कामाख्या' की नाम संज्ञा से श्रद्धा-सम्मान कर इस कामरूप देश में अभ्यर्चा[24] करता है। इसीलिए हम स्त्रियों का स्वभाव से मलिन, रज वारि[25] के प्राधार[26] से अशौच होते हुए भी धर्मशास्त्र कथन करता है- यथा

वस्तः प्रस्त्रवणे मेध्यः श्वा मृगग्रहणे शुचिः।
शकुनिः फलपाते तु स्त्रीमुखं रति संगमे॥

"दुग्ध दोहन काल में बछडा (मुख) मृग ग्रहण (मृगाखेट के समय) काल में श्वान, (मुख) फलों को गिराते समय पक्षी (मुख) और रतिकाल में स्त्रियों का मुख पवित्र होता है।" (यहाँ स्त्रीमुख से आशय स्त्री के द्वितीयमुख (योनि) से भी हो सकता है।) निखिल विश्व की यौवन मदालसाओं के निगूढ़[27] रति[28] कुंज में वह निःसरिणी[29] निवास करती है, वह परिशाश्वती[30] कामाख्या की परिष्यन्दता[31], रजस्त्रावणी[32] की मदिर[33] गुहा में चरिष्णु है। यह जान कर कामाक्षी चकित थी। उसके साथ ही मेखला और पताका भी विस्मय विभोर हो जीवन के इस सर्वदा नवीन रसयुक्त अध्याय को श्रवण कर रही थी। उन्होंने उदकनिर्झरिणी[34] का यह निर्णेक[35] पर हतनिर्धाती[36] निरूपण[37]-निरूह[38] रूप इसके पूर्व कभी न जाना था-न सुना था।

लोलापा ने उस दिन काम शिक्षण के पठन को वही विरामित किया। वह तीनों सखियों को कुछ ऐकान्तिक परिचर्या के निमित्त स्वतंत्रता देने की पक्षधर थी। अतः उन्हें वही शिक्षागृह में जो कौसुमिक उद्यान के पुष्पाच्छादित लता वितानी कुंज में स्थित था, छोड़कर महाराज्ञी तिलोत्तमा के सामीप्य लाभ के लिए प्रस्थान कर गई। लोलापा के प्रस्थान करते ही तीनों सखियां अति समीप आ गई!

कामाक्षी और मेखला के मन में गाम्भीर्य था-गम्भीर तो पताका भी थी पर उसने इस गाम्भीर्याच्छादन को कुछ अनावरित कर लिया था वह सहज रूप से रंजक भाव उत्पन्न कर स्मित अधरों से बोली-

-"आचार्या कामप्रज्ञावती के उपदेश से प्रजुष्ट सखियों! सुनें, हम भी तीन हैं। तीन देवियां त्रिगुणी सृष्टि की उद्भूताएं।" कह कर वह मुक्त रूप से हँस उठी। हास्यरत अवस्था में ही वह पुनः बोली-

–"मैं इड़ा हूँ, मेखला पिंगला और कुमारी कामाक्षी सुषम्ना। अब आओ हम तीनों संगमित हो एक युत हो जाए और निर्मित हो जाए एतादृशी[39] विग्रह।" कहते हुए उसने अपने रक्ताभ कोमल करतलों से योनिमुद्रा का प्रदर्शन किया। तीनों सखियां मुक्त भाव से किल्लोल करती हँस पड़ी।

वह ज्यौत्स्न[40] की ज्योक्[41] निशा थी। वसुधा के प्रसून-प्राच्छादित प्राकुली प्रसार पर चन्द्रिका का धौतवैकक्ष[42], लता-गुल्म, तरूरोहों पर अपनी विनिद्रतावस्था[43] में, विर्निजय[44] की जयपताका फहराता अपनी प्रसन्न प्रभा से हर्षोत्सव मना रहा था। रोचिष्णु[45] पुष्पों के पद्मदलों पर राकेश की रोचसी[46] क्रीडा का रौप्ययुक्त[47] शोभाभा से रोदसी[48] रूचिरा[49] रमणी के समान रागानुरक्त हो रागिणी[49] हो उठी। अनुरंजनी राका का द्युत सौन्दर्य, सुकुमारिक् सुमन समूह का सौरम्भ[50]-सौहार्द्य[51] पा स्फीत[52] हो उठा था। सुवासित पवन प्रकृति के प्रल्हन्न[53] प्रांगण में प्रल्हादित[54] हो प्रसृत्वर[55] प्रसीदिका[56] में प्रहेला[57] रंग रचाने लगी। प्रकृति प्रणयिनी के पुलकित[58], प्रफुल्ल कुसमित पर्यवदात[59] रूप की अम्लान छवि पर जैसे दिक्पति मुग्ध हो उठे थे, मधुस्रावी चन्द्रिकापति भी उसकी परिष्कृत शोभा श्री पर चकित प्रसन्न थे। संभवतः इसी कारण वे गगनसंचरित अमृतकोषी वलयमण्डल से पीयूषी[60] परिस्रुता का परिस्यन्द[61] पर्जन्य[62] की भांति कर धरा-परिषिक्तन[63] कर थे।

महाराज्ञी तिलोत्तमा के भास्वर नेत्रों में निद्रा का क्षणांश भी उपस्थित नहीं हो सका था। वह स्वर्णमण्डित शय्या के पुष्पास्तरन[26] पर चिंतित भाव से लेटी विचारोदधि में डूबती-इतराती, कुछ विकल सी थीं। त्रयोदशी, चतुदर्शी और आज पूर्णिमा की पूर्ण ज्योत्सन तिथि भी अन्तसंन्निकट को आतुर थी पर इस माह कन्या[64] कामाक्षी के पुष्पभारित काय क्षेत्र में रजवारि प्रक्षरण प्रारम्भ नहीं हुआ था। यद्यपि यह कोई विशेष घटना नहीं थी। तथापि अज्ञाततः ही महाराज्ञी का अचेतन विकल हो रहा था। एक माह पूर्व ही कामाख्या का तेजस कामाक्षी के मदनसुषिर[65] से प्रकट हुआ था पर यह पारम्परिक नहीं था। कामरूप की भावी शासिका कामाक्षी की पूर्ववर्ती सभी चारूवदना महाराज्ञियों के ऋतुकाल का प्रारम्भ कृष्ण पक्षीय त्रयोदशी से प्रारम्भ होकर अमावस्या की रजन बेला में उत्सर्गित होता था। यह वैचित्र्य गत-अनेक पीढ़ियों से निरन्तर था पर यह नैरन्त कामाक्षी तक आकर एतेष्य हो गया। क्या कामाक्षी के पश्चात, इस देश से लावण्यमयी नारी की राज्यसत्ता का समापन हो जायेगा? तिलोत्तमा के अन्तःकरण में ऐसे अनेक प्रश्न साकार होने लगे।

तिलोत्तमा के गाम्भीर्य भाल पट्ट पर चिंतन राजि और अधिक स्पष्ट हो गई, अंग निःसंगता से प्रोक्त हो उठे पर मुख पर कोई ग्लानि का चिन्ह नहीं उभरा। देह में अलस-शैथिल्य की उपस्थिति के पश्चात् भी वह शय्या से उतरी और पद्म पलाशितारक्त चरणतलों को धरित्री धाम पर सौम्य गति से संचालित करती कामाक्षी के शयन कक्ष में पहुंची।

विनिद्रत परिचारिकाएं राज्ञी के असमय आगमन पर चकित थी। वे सम्मान प्रदर्शित करती एक ओर हट गई। शय्या के सुमनास्तरण पर आरूढ़ सुकन्या कामाक्षी का घनाश्लिष्ट निष्पाप सौन्दर्य चादर के अन्तःक्षेत्र से दीप्ति निर्वात-निष्किम्पित दीप शिखा की निर्मल ज्योति की भांति उनकी आँखो को स्निग्ध आलोक से प्रसन्न करने लगा। अनुभाववती कामाक्षी के चारू लोचन अर्द्ध स्फुटितावस्था में स्थिर थे जिनमें कभी-कभी चांचल्य का राग दर्शन देता था। कामाक्षी की लावण्यलसित काया पर महीन-आवरित वस्त्र-विन्यास अस्त-व्यस्त था और मृणाल नाल सी कोमल भुजवल्लिरियां शिथिल पड़ी हुई थी।

तिलोत्तमा स्वरमण से उत्पन्न फल कन्या रत्न के कुसुम ललामार्क रूप झर्झर को स्तब्ध, अतृप्त नेत्रों से स्थिर खड़ी निहारती रही। कैशौर्य्यधारिणी कन्या के स्वभाविक अधरोष्ठ दलों की कोमलता स्फुरित हुई, स्मित का चारू-चिक्कण अधरों पर स्फीत हो स्फारण रचने लगा। स्वप्न निबद्ध निद्राणी कन्या सम्भवतः अपने प्रिय के स्वप्न देश की राग गंगा में निर्भृत रूप से निमज्जन करती प्रमथ पारण कर रही थी।

तिलोत्तमा ने माकरन्दसाप्लावित कायधरित्री, सुकोमल्य की परिहार्यवती, कैशौर्य्य की निग्रहनिर्गा, महाभिषम से आप्तोत्क्लेदा और क्षिपण्यु प्रावरित स्वभुता का निद्राखण्डन नहीं किया। वह स्वयं कामराजि की आनन्दलब्धि की शोभा को निहार कर प्रासाद स्थित प्रकृति के चिन्ह (कामाख्या) मंदिर की ओर चल पडी। तिलोत्तमा का कामाक्षी को भी 'कामाख्या' मन्दिर में लाने का विचार था पर पुत्री को प्रिय स्वप्न में अपने अज्ञात प्रियंकर के सन्धान का अनुमान कर उसने उसे अपने प्रिय से पृथक नहीं किया।

जगतसृजिका माँ कामाख्या का आत्मश्री विग्रह।

महाराज्ञी के राजप्रसाद में ही यह विग्रह स्थापित था। मन्दिर गर्भगृह के दीपाधारों पर स्थापित दीप शिखाओं से समुद्भव निष्कम्प-आलोक के स्त्यायन" में जगदाधारिका का संमूर्त विग्रह अपनी ललित-ललाम शोभा से दप-दप दमक

रहा था। दशभुज धारिणी, षड्मुखी माँ के शार्दूल वाहन पर शम्भु शवातीत हो आसन के रूप में संस्थापित थे। दक्षिण हस्त पर कमलासित चतुरानन, वामहस्त पर नागारिवाहक चतुथुर्ज वेष्ठित जगत पोषक विष्णु की प्रस्थापना थी।

शववक्ष के हृत्पद्म पर आसनासीन दैव्या कामाख्या के मुख्य मुख से स्मित की दमनकराजि का मद स्फूर्ज[67] जैसे अब स्फुट[68] हुआ–अब स्फुरित[4] हुआ की प्रतीति क्षण-क्षण होती थी। सृष्टि प्रस्वनि माँ के आयन लोचनों में करूणा का सिन्धु हिल्लोरित था। उन्नत ललाट के भ्रूमध्य में दामिनी की समुज्वलता को लज्जित करता तृतीय नेत्र की तड़ित चमक प्रचण्ड भास्कर की प्रखरता से भी तीव्र थी। जगत्प्रसूता कामाख्या के षड्मुखों में मुख्य मुख कामरूप शेष पंचमुख पंच मकारादि[68] का बोध कराते थे अथवा पंचवृतियां[69] का। मूलाधार निवासिनी के दस हस्त दसमूल[70] भूतधर्म के बोधक थे। माँ के कोटि कन्दर्प रूचिर विग्रह पर आरक्त परिधान का आच्छादन था। सिरों पर रत्नविजडित मुकुटों के मध्य सिरोशीर्ष पर मधुर-मृदुहास्य युक्त मुख स्थित था। नूपुर युक्त पादपद्म, रत्नखंच स्वर्ण मेखला युक्त क्षीण कटि देश, सर्वविध रत्नों से मण्डित देदीप्य अलंकारों से परिशोभित, पोनोन्नत स्तनी माँ-कामरूपिणी कामाख्या का मोहक मोहन गात्र दिव्याभा से जग-मग कर रहा था।

कामाख्या के श्रीविग्रह के चरण पद्मों में रत्नवेदिका निर्मित थी। इसी वेदिका पर महायोनि का मूल विग्रह प्रस्थापित था। योनि अधरों पर आरक्तवर्ण का चमकप्रोक्त आच्छादन था। दक्षिण ओष्ठ गहन रक्त था तो वाम ओष्ठ पर सत्व का धौत वर्ण दर्शनीय था। विशेषतः यह वर्ण विभाजन योनि विग्रह के विविर पर आच्छादित पल्लव द्वय में स्पष्ट दर्शन देता था।

महाप्रसूता कामाख्या के निदाध[71] चिन्ह पर स्वर्ण निचोल[72] वस्त्रावरित रहता था पर इस समय वह महायोनिचिन्ह निरावृत था। किसने इस आवृता से आवरण हटाया? गर्भ गृह में प्रवेश की अधिकारी कामाक्षी, वह स्वयं और पुजारिन मदिष्ठा थी। तो क्या मदिष्ठा गृह गमन पूर्व कामाख्या चिन्ह पर वस्त्रावरित कर्म को विस्मृत कर गई? पर नहीं उसे स्मरण आया गर्भगृह के पट्ट उसी के सम्मुख ही बन्द किए थे। गमन पूर्व उसने स्वयं महायोनिमण्डल के पल्लवों पर पट्टाच्छादन देखा था।

गर्भगृह में मदिर गंध का महाप्लावन हो रहा था। यह सुरभि का मदसारण[73] ठीक उसी प्रकार था जैसे अक्षतयोनि षोडसी के सुकुमार गुहा-अभिमर्षण[74] के

पश्चात भग पिधानक[75] पत्र छिन्न-विछिन्न हो परिम्लान[76] के भाव को प्राप्त हो विनष्ट गया हो और उस जगत्कुण्ड[77] के संकीर्ण स्मरपित्सल[78] से मन्मथ का मंथनपद प्राचुर्य[79] को प्राप्त हो कामसुवास की महासुरभि सहित कोमल अधर पल्लवों पर प्रसारित हो उठा हो।

तिलोत्तमा ने इस तादृश्य गंध का दिव्य अनुभव उस काल में भी किया था, जिस काल में उसका मदन क्षत्र प्रथम रति में कामाख्या को अर्पित हुआ था और कामाक्षी उसकी कुक्षिधरा में बीज रूप से प्रविष्ट हुई थी। और अब! यही सुरत गंध का मधु प्रसारण आज! क्या पुनः किसी कामाक्षी का 'बीजारोपण' होगा? पर कैसे? उसका संसर्गी देवतुल्य पुरूष महायोग के साधन हित हिमाच्छादित कैलाश की हिम-उपत्यका स्थित दृष्टि से परे आयामी आश्रय में साधनरत है। उसे भी उसी गोप्याश्रम में साधन हितार्थ जाना है किन्तु उसके पूर्व वह कामाक्षी का राज्याभिशेष करेगी, उसे पूर्ण कर ही उसका प्रस्थान संभव है।

तिलोत्तमा कामाख्या विग्रह के दक्षिण में स्थित-पंचमुण्डी[80] आसन पर बैठ गई। उसने गुरु को नमन किया, आत्म रूप कामाख्या का स्तवन किया फिर नेत्र बन्द कर मनोहर छवि की अम्लान सत्ताधीश्वरी, भुक्ति-मुक्ति प्रदात्री भातृ सत्ता की निजरूपणी महादैव्या के भावरूप सिन्धु में डूबने लगी किन्तु....

अभी उसने आसनानीत हो नेत्र बन्द किए ही थे कि पंचमुण्ड आसन के समीप ही मधुर कण्ठी, विनम्र स्वर गुंजन हुआ-

-"समादरणीया जननी के श्री पाद पद्मों में कामाक्षी प्रणाम निवेदित करती हैं। स्वीकार्य कर कृतार्थ करें। मेरी अभ्यर्चा स्वीकृत हो।" कण्ठ स्वर, कामाक्षी का ही था। तिलोत्तमा ने चौंक कर नेत्र खोले। कामाक्षी उसके चरण युगलों में जवाकुसुम के आरक्त पुष्पार्पण कर रही थी।

-"पुत्री कामाक्षी! तुम्हारा आगमन कब हुआ। इतनी गहन निद्रा से इतनी शीघ्र कैसे उठी! तुम्हारा गात्र अलसहीन और स्फूर्त है।" तिलोत्तमा ने उसके सुवास वसित कैशोर्य को गम्भीरता से अनवेक्ष किया।

-"मैं शयनारात्री के पश्चात यहीं हूँ माँ। एक क्षण भी नेत्रों ने निद्रा-अभिमुखीकरण नहीं किया इसलिए गात्र निरालस्य और स्फूर्ति से प्रोत है।" कामाक्षी के मिष्ट स्वर में अतिरेक शान्ति और गाम्भीर्य गहित मण्डन था।

कामाक्षी के वचन श्रव्य कर तिलोत्तमा विस्मयविभूत हुई। यह कैसे? किस

भांति संभव है? कुछ समय पूर्व ही तिलोत्तमा ने उसे शयनकक्ष में निद्रा-निमज्जित हुए प्रत्यक्ष देखा था। एक क्षण महाराज्ञी तिलोत्तमा ने अन्तर्चिन्तन किया। उसके चित्ताकाश में एक विचार चपला की भांति स्फूर्ज्य हुआ वह त्वरता से बोली-

-"तू यहीं ठहर-कुछ क्षणों पश्चात् मैं यहां पुनः प्रत्यागमन करूंगी।" कहती हुई महाराज्ञी वायुवेग से मन्दिर गुहा से अपने पद संचरित करती, कामाक्षी के शयनकक्ष में पहुंची! शयन कक्ष की शायिका पर अभी भी कामाक्षी निद्रोत्संग में शयनरत थी।

तिलोत्तमा का पवन वेगी आगमन देख, परिचारिकाएं सजग हो नत मस्तक हो गईं। प्रधान परिचारिका धराधन्वी ने कुछ आगे बढ़ कर महाराज्ञी का नतमस्तक हो सम्मानार्चन किया। धराधन्वी पर दृष्टि निक्षेप कर राज्ञी बोली-

-"धन्वी, कुमारी कब निद्रालीन हुई थी।?"

-"आदरणीया, पूज्या दैव्या। कुमारी कुलदेवी जगत्प्रसवनि की शयन आरती के पश्चात ही निद्रित हुई थी। तब से इस काल वे उतिष्ठ नहीं हुई और न ही कोई शब्द संचार किया। वे पूर्ण निद्रा में हैं महाराज्ञी।" नतमस्तका धन्वी ने करबद्ध मुद्रा में कहा-

तिलोत्तमा उसका उत्तर सुन तत्क्षण द्रुतगति से कामाख्या भूगर्भ की ओर दौड़ पड़ी। उसकी अन्तःचिति कह रही थी "तिला अब तक की गई साधना की परिणति रूप में यह अलौकिक उपस्थित हुआ। कुमारी के रूप में कोई अन्य नहीं अपितु स्वयं जगजननी ही उपस्थित हुई थी।" वह भलीभांति समझ चुकी थी कि अब मन्दिर में उसे 'कुमारी' नहीं मिलेगी।

तिलोत्तमा का वैचारिक अनुमान पूर्णतः सत्य था। कामाख्या की गर्भ गुह्या में उसे कुमारी नहीं मिली। हाँ, पंचमुण्डासन पर जहां वह ध्यान हेतु वैठी थी, जबा कुसुम के सद्य प्रसून बिखरे हुए थे। साथ ही पुष्पों का गुच्छ कामाख्या महाचिन्ह पर भी सज्जित था। गर्भ गेह में मधुर-मदिर सुगन्ध और गहन हो उठी। महाराज्ञी की चेतना दिव्य भाव से ओत-प्रोत हो कामाख्या के चरणों में अभिलीन हो गई। उसका नेत्र पर्जन्य माँ के चरणों पर अश्रु विमोचन करने लगा।

---

1. कामशास्त्रानुसार कलाएं 64 हैं-गीतम्-विभिन्न राग-रागनियों में बद्ध नवरसी गीतों का गायन करना। विशेषतः श्रृंगारिक गीतों को मधुर राग-रागिनयों में प्रवद्ध कर गान कला में प्रवीण होना 'गीतम्' कहलाता है।

2. उत्तम अंगो वाली
3. संज्ञा
4. सुन्दर शरीर
5. योनि भवन
6. अग्निदेव है, जो रति के अधिष्ठाता है।
7. जगत पूज्या
8. धारा, भवचक्र
9. दयालु वृत्ति
10. मिला हुआ
11. जन्म, पुनर्जन्म
12. संयोग (संभोग)
13. योनि से आशय
14. पूर्णरूप से
15. रचना, निर्माण
16. व्यापार
17. गोपनीय चर्चा (परस्पर)
18. सुन्दर ऊरूओं वाली कन्या (किशोरी)
19. टक्कर सहित आघात
20. स्तनों का मर्दन (प्रसलना-मलना)
21. वह स्त्री जिसके दोनों स्तन परस्पर सटे हों।
22. कमर (कटि)
23. दन्त पक्तियां
24. पूजा
25. रज-जल (रजस्वला का रक्त) बूंद
26. बंदू-बूंद कर टपकना, रिसना
27. अत्यन्त गोप्य
28. ऐसा रतिमंदिर जो लता बितान के समान हो।
29. मोक्षदात्री
30. सदैव उसी रूप में (प्राकृत रूप में) रहने वाली
31. आर्द्रता
32. रजस्वला
33. मदपूरित गुफा (योनि)
34. जिससे जल (उदंक) का स्राव होता हो (भग)
35. धुला हुआ-स्वच्छ
36. हृदय में सनसनी पैदा करने वाला
37. मौखिक रूप मे ठीक-ठीक समझना
38. तर्क, वह पूर्ण वाक्य जिसमें कुछ छूटा न हो।
39. ऐसा, इस तरह का।
40. शुक्लपक्ष
41. लज्बल
42. श्वेत उत्तरीय (वस्त्र)
43. निद्रारहित, खिला हुआ
44. पूर्णरूपेण विजय
45. हर्षित
46. चमकीली
47. चांदी के समान शोभा की आभा
48. पृथ्वी
49. चमक से भरी
50. स्वेच्छाचारिणी (स्त्री)
51. सुगंधित
52. मैत्री
53. प्रसन्न
54. प्रसन्न
55. अत्यधिक आनंद

56. चारो ओर फैली हुई
57. पुष्पवाटिका
58. रसरंग (स्वछन्द क्रीडा)
59. गद-गद, आन्नदित
60. नितांत विशुद्ध
61. (एक प्रकार की) अमृत युक्त मधु (मदिरा)
62. रिसाव, वहाव
63. मेघो से जल की वृष्टि
64. अभिसिंचिन
65. पुष्पों का विछावन
66. काम छिद्र (यहां आशय योनि छिन्द्र से जहां से रजस्राव होता है।)
'कन्या' को महाभारत में इस प्रकार परिभाषित किया गया है।-
यथा- यस्मान् कामयते सर्वान् कमेर्धातोश्च भाविनि।
तस्मात् कन्येह सुश्रोणि! स्वतन्त्रा वरवर्णिनि।।
67. एकत्रीकरण
68. सहसा होने वाला स्फोट
69. व्याप्त
70. कम्पित
71. मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन
72. प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति
73. अस्तित्व, संयोग, वियोग, शेषवृत्तित्व, एकत्व, अर्थक्त्व, परार्थ्य, अन्यता, अकर्तृत्व, वहुत्व
74. ऊष्मित (गर्मी से युक्त) चिन्ह (यहाँ योनि चिन्ह से आशय
75. चादर, ओढ़नी, परदा
76. मदपूरित एक विशेष गन्ध द्रव्य
77. कन्या (कुमारी) योनि में अतिवेग (आक्रमक ढ़ग से) किया गया संभोग
78. कौमार्य क्षत्र (कुमारी अवस्था में योनि पर आवरित चर्मावरण (झिल्ली)
79. हतप्रभ
80. भग
81. काम मार्ग (योनि की वह संकीर्ण रेखा जिससे 'सार' बाहर आता है)
82. अधिकता
83. पंच मुण्डी आसन में दो चाण्डालों का मुण्ड, एक श्रृगाल मुण्ड, एक कपि (वानर) मुण्ड और एक नाग मुण्ड। इन पंच मुण्डों का तांत्रिक विधानानुसार पंच मुण्डी आसन बनाया जाता है।

सृमरी[1] सन्ध्या के सुकुमार वातावरण में तीनों सखियां प्रसन्नता से परिचर्चा करती कुसुम-वाटिका में भ्रमण कर रहीं थीं। मेखला और पताका दोनों ही कामाक्षी से एक-एक, दो-दो वर्ष वय में ज्येष्ठ थी। विशेषतः पताका का यौवन काल प्रारम्भ हो चला था, उसकी आयु लगभग सोलह वर्ष की थी। यौवन के लोल[2] लौहित्य[3] की लालित्य[4]-लसित[5] लहरें उसके लावण्य मण्डित लावणी[6] अंगो पर हिलोल्ल करने लगी थी। यद्यपि पताका में सिसृक्षा[7] भाव का उद्‌यन नहीं हुआ था, पर उसके यौवन सोमनृसोम[8] में कामनाओं का सर्जु[9] स्फारारभ्य नहीं हुआ था फिर भी वह अनंगदेव की रससत्ता के महत्व को जान चुकी थी। पताका का प्रसन्नप्रावरित[10] मन उस संध्या में कुछ अधिक ही चंचल था इसलिए उसके चप्पल[11] चक्षु[12]हीरक चतुर चपला[13] के समान चटुल[14] हो रहे थे।

पताका शीघ्रातिशीघ्र अपनी सखियों को अपनी ज्येष्ठा सखि सव्रीड़ा[15] द्वारा कथ्य और स्वानुभूत कामानुभव जो उसने आख्यायिका[16] के रूप में सुनाया था। उसकी रसगम्य-क्रीडा गाथा में सस्वेदा[17] का हर्षानन्द था तो अभिसारिका[18] का अभिपुष्टिकरण[19] भी।

पताका की दृष्टि सम्मुख पुनः पुनः प्रमुदप्रांगी[20] सव्रीड़ा का स्मित आनन् भाषित होता। उसकी मन्मथी क्रीड़ा के स्तोम्य[21] प्रसंगों की स्मृतियां, अक्षत योनि पताका के लावण्य मण्डित मुख पर सव्रीड[22] रेखाओं का आरक्त सृजन करने लगी। उसके मृगीवत नेत्र लज्जा और भावानुराग से पुनः पुनः मुंद से जाते। वह अकारण ही उत्स्मिता बन जाती, उसकी लोमराजि प्रहर्षित हो उठी और कोमल स्वच्छ श्वेत करतल श्वेद[23]सिक्ता से पसीजने लगते। पताका की ऐसी अतिरेक-अवस्था देख मेखला ने परिहास किया।

–"ज्येष्ठ सखि! ऐसा प्रतीत होता है कि तू आनन्द के गहन सिन्धु में निमज्जित है। उसी महानन्द के प्रक्षरण से तेरी ललाम देहयष्टि के मधुपूर अंगों में निवासित रतिपति कामदेव ही अपने अनंग नीर से तुझे उत्क्लेदा[24] बना रहा है।? री प्रियंकरा, रोचसी! तू किस रंग में लिप्त हो घनानंद उत्सव मना रही है?"

"सव्रीडा द्वारा कथ्य उस रसरम्य कथन को कैसे अभिव्यक्त करूं प्रमदा सखि? हेला[25] सव्रीडा की काम-हेलि[26] क्रीडा का वर्णन मुझसे सम्भव नहीं। मैं उसी के आनन्दसिंधु में आकण्ठ डूबी रसिका[27] बन गई हूँ। उस केलि की

आख्या श्रावणी इतनी मधु-मधिर है तो फिर प्रत्यक्ष समागम पर्व कैसा आह्लादिक होगा।?"

मेखला संकर्षणाकारवती[28] सव्रीड़ा से सुपरिचित थी। सव्रीड़ा की आयु लगभग पच्चीस वर्ष की थी। यौवनाकल्पी[29] सव्रीड़ा नारी समाज में स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त कर चुकी थी। उसे प्रबल वशीकरण सिद्धि प्राप्त थी। किसी भी कुसुमेषुमण्डित[30], उत्तम तनुधारी और पुष्टाकारवान[31] पुरूष को, अपनी स्मरवांक्षा[32] पूर्ति के हितार्थ वह आकर्षित, सम्मोहक अथवा वशीकृत कर सकती थी।

राज्यनियमानुसार इक्कीस वर्ष से कम वय की युवती उपर्युक्त कृत्य सम्पादन के लिए अपात्र थी। नियम खण्डन करने पर युवती राजदण्ड की अधिकारिणी मानी जाती थी। स्पष्ट था कि इक्कीस वर्ष की आयु से कम की युवती को पुरूष साहचर्य-संभोग निषेध था। नियमानुसार पच्चीस वर्ष की अवस्था के पूर्व गर्भधारण भी अपकर्तृ[33] था। उपर्युक्त नियमों की अवहेलना पर राज्य द्वारा कठोर दण्ड की व्यवस्था प्रचलित थी।

21 से 25 वर्ष आयु की युवतियां अपनी लघु सखियों को अपनी अभिसार जन्य-अनुभवानुभूतियों को, मनसिजरसाभिस्रावणी[34] में अनंगवारिसम्पात[35] के कामग्नि अभिहोम[36] की सरस, स्वानुभूत गाथाओं को सुना कर उन्हें बृहमस्[37] प्रशिक्षण देती थी। यह प्रशिक्षण तेरह वर्ष की वयधारित किशोरियों से प्रारम्भ हो विंशवर्षीय कन्यानायिकों को दिया जाता था। इसी मध्य राजकीय विद्यालयों में, कामाचार्यायों द्वारा संचालित आश्रमों में कन्याओं को विधिवत नृत्य, गायन, वादन इत्यादि काम की कलाओं के सहित राजनीति, सैन्य नीति, धर्म-समाज नीति एवं शास्त्रों का प्रशिक्षण भी दिया जाता था।

राज्य में पुरूष निरीह और स्त्री सबला थी। पुरूष जन्म जनन भी अत्यल्प था। उसका कारण था स्त्री राज्य की वे वैज्ञानिक वनिताएं जो निदिध्यासन[38] ऐसी-औषधियों के संधान में रत रहती, जिनके सेवन से कन्या प्रजनन का प्राधान्य ही रहता।

पताका और मेखला इन राजनियमों से परिचय प्राप्त कर चुकीं थी। परिचय तो राजकुमारी कामाक्षी को भी था पर इन नियम-संहिताओं से न तो उसे लगाव था और न ही वह नारी संहिता को उचित मानती थी। उसका किशोर मन राज्य में मुक्त यौनाचार को भी राज्य की अवक्रिया[39] मानता था, पर उसने यह मनः विद्रोह कभी प्रकट नही किया था।

पताका की स्मररसवर्षणी गाथा का राग गान सुन मेखला प्रसन्न हो उठी। उसकी लोमराजि प्रहर्षित हो रास करने लगीं वह मुक्त स्वर में अपना औत्सुक्य प्रकट करती बोली–

"बता सखि, शीघ्र कथन कर सव्रीड़ा के पुष्पधन्वन्[40]–प्रसंगाक्रीडन[41] को।"

"क्या कहूं? सव्रीड़ा ने एक सुपुष्ट तन युवा पुरूष को वशीकृत कर अपना बन्धक बनाया है। मैंने इन नग्न नेत्रों से उस साक्षात मदन विग्रहधारी का मोहन दर्शन किया है। सत्य कंथ्यता हूँ उस युवा मूर्ति के दर्शन मन को आह्लाद और नेत्रों को तृप्ति देते हैं। नगर की अनेक यौवनवती–योषिताओं ने उसके स्वर्ण से चमकते काय भवन को कामेच्छु चक्षुओं से देखा और सव्रीड़ा के सौभाग्य पर ईर्ष्या की।"

"वह रतिपति सा पुरूष सव्रीड़ा ने कहां से प्राप्त किया।?" मेखला का मन बन्धक युवक को देखने के लिए आतुर हुआ।

"वह मालव देश का निवासी है सखि। किसी शैव ग्रन्थ का स्वाध्याय कर सव्रीड़ा ने धन–धान्य और नीर–क्षीर से पूरित मालव देश के उज्जयनी क्षेत्र में स्थित, क्षिप्रवेगनी नीरमहि पुनीत क्षिप्रा तट पर, महाकाल वन में 'महाकाल ज्योतिर्लिंग' का दर्शन किया। वहीं उसी सुसमृद्ध नगर की श्रेष्ठ नाट्यशाला में नटचर्या[42] कर्म संपादित करते सव्रीड़ा ने उसे देखा था। उसी क्षण उसने मोहनी मंत्र से उस पर मृदु–अभिचार किया और वशीकृत कर लिया।"

पताका सव्रीड़ा द्वारा सुनाए अनुभव को व्यक्त करने लगी। आरम्भ में उसकी स्वर शैली संयमित रही फिर स्वर व्यंजना में अश्लीलता का मिश्रण हुआ और अन्ततः वह मैथुनी क्रियाओं का निर्लज्ज भाव से वर्णन करने लगी। आरम्भ में कामाक्षी धैर्य और उत्सुकता से श्रवण करती रही पर जब मैथुनी सृष्टि प्रागल्भ्य पताका के कण्ठ स्वर से प्रकट हुआ तो न चाहते हुए भी वह तीक्ष्ण स्वर में बोली–

"तुझे कामचर्या का उपदेश अथवा कामाचार वर्णन का अधिकार नहीं पताका। राज्यविधानानुसार तू दण्डनीय है।"

कामाक्षी का तीक्ष्ण स्वर सुन और यह जान कर कि वह दण्ड पात्री हो सकती है, उसका गात्र प्रकंम्पित हो उठा। कामलीला का, मन में समाहित

स्वरूप बिखर गया और नेत्रों में राज्यभय का विकार स्फुरित हुआ!

–"क्षमा....क्षमा राजकुमारी, मुझसे गुरूतर अपराध हुआ। अब ऐसे अशोभन प्रसंग अधरों पर नहीं आयेगें, क्षमा....।"

पताका की भयविजडित देहप्रभा को देखकर कामाक्षी के मुक्त कण्ठ से हास्य–उद्गम हुआ। उस हास्य में अपूर्व सौन्दर्य की घन तरलता घुली थी और नयन–पक्ष्म में अनुराग के स्रोतस्विन का उद्भास।

पताका चित्रलिखिता–दीवारी–उत्कीर्णा मूर्त पुत्तलिका के समान स्तंम्भित निष्चेष्ट स्थिर खड़ी रह गई। कामाक्षी का गाम्भीर्य मण्डित कोप स्वर और फिर अनुराग प्रलिप्त हास्य तान! वह समझ नहीं सकी कि सत्य क्या है? कामाक्षी के आरक्ताभा से उज्वलित कपोलों पर अभी भी परिहास का मनोजन्मा देवता अपूर्व–नृत्य नाटिका रच–रच कर लीला स्पंदन की सहज क्रीडा कर रहा था। हास–परिहासी चन्द्र की धवल ज्योतिधारा के प्राकृत प्रकाश से आवृत कामाक्षी की अमल देहयष्टि का अणु–अणु स्मित स्रोत में स्नान कर और भी निखर उठा। चारू स्मिता, शोभा की दीप्ति और कैशोर्य के घन भाव से पोषित कामाक्षी स्मितानन से बोली–

–"मधुस्रावणी सखि, कुसुमसायकस्मिता पताका। तेरी भयविजड़ित रूप राजि और भी मनोहर हो गई है। भय के शृंग देश पर आसीन कुमारी, सौन्दर्य की विद्युच्छटा, तेरा यह सुकुमार गात्र क्यों भयभीत है? अच्छा....बता, उस यौवन संगठित, नारी सम्मर्द की मंत्रमुग्ध कर देने वाले अभिभूत पुत्र का क्या नाम है? यह भी बता मालव देश में सौन्दर्य की सुचारिकाएं हम स्त्रियों की समाज–राज्य में क्या मान्यताएँ हैं? देवाधि देव महादेव का महाज्योतिर्लिंग कैसा मनभावन है?"

"कुमारी देवी, यह ज्ञान मुझे नहीं, सव्रीड़ा के अनुसार....।" पताका की बात समाप्त भी नहीं हो पाई थी कि पार्श्व से कामाचार्या लोलापा का आगमन हुआ। आते ही वह बोली–

–"किशोरियों, सायंकाल समीप है, अब प्रस्थान करो। जगत्सृजा माँ कामाख्या की नित्य–आरती का समय आ रहा है।"

लोलापा बहुत समय से किशोरवयी बालाओं की परिचर्चा गोव्य रूप से एक लता कुंज के आच्छादन पार्श्व से, खड़ी होकर सुन रही थी। वह उनकी सहज वृतियों का अध्ययन कर परीक्षण हेतु उपस्थित हुई थी। विशेषकर कामाक्षी की

मन:वृति में स्मरदेव का उदय किस रूप में उत्थित हो रहा है?

वे तीनो राज्यवास की ओर चल दीं।

मोहक सुगन्धसिक्त शैय्या के दुग्ध-धवली आस्तरण पर सुकुमार्य्य की शोभा तीर्थ, विद्युल्लता की स्वच्छछटा कुमारी कामाक्षी निष्चेष्ट सी लेटी अपने चिंतन गगन में विहार कर रही थी। उसके उरेपस्, स्वच्छ पुण्डरीक नेत्र गवाक्ष द्वार के उस ओर, ताराखचित आकाश की प्रस्तर नीलिमा के वक्ष-बिन्दु को निर्निमेष दृष्टि से निहार रहे थे।

कक्ष में मुक्त गवाक्षों से प्रवेशित उपवन-पुष्पों की सुरभि पवनारूढ़ हो आती-कक्ष मह-मह महक रहा था। कामाक्षी का चिंतन चल रहा था। कैसा होता है पुरूष, कैसी होती है उसकी कठर-कठोरता।

कामाक्षी के नेत्रों के समक्ष गगन पट्ट पर अनदेखे पुरुष के कल्पित चित्र सजीव होने लगे पर, वह पुरूष कहाँ? वह तो उसका अपना ही प्रतिरूप है, उसी की सौवर्णच्छटा का दीप। क्या ऐसा ही पुरूष सव्रीड़ा ने बन्धक बनाया है? उसने आज तक कोई पुरूष नहीं देखा, अवसर भी नहीं आया। स्त्रियां बन्धक पुरूषों को गोप्य रूप से गुप्त रखती है। उसने सुना था कि स्त्रियां रात्रि बेला में ही पुरूषों को प्रकट कर उनके पौरूष से सेवाकृत्य सम्पादित करवाती हैं? इस सेवा कृत्य का क्या स्वरूप है?

कामाक्षी के मन में पताका द्वारा कथित सव्रीड़ा के पुरुष प्रसंग का कथन स्मरण हुआ। कामिनी सव्रीड़ा ने सम्भवतः प्रथम वार इस राज्यसत्ता में अपने बन्ध पुरुष को नारीसम्मर्द के सम्मुख प्रकट कर अपने दर्प की दुन्दिभी फूंकी है। उसकी पुरुष परिचर्चा से कामाक्षी के मन में पुरुष दर्शन की इच्छा बलवती हुई थी पर संकोच बस अपनी सखियों के सम्मुख इस भाव को प्रकट नहीं किया।

सम्भवतः आचार्या लोलापा ही पुरुष तत्व के विषय में उसकी जिज्ञासा का शमन करने में सक्षम होगी। कामाक्षी ने निश्चिय किया हि वह इस हेतु लोलापा से अपने अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर पूछेगी।

अर्द्ध निशा तक कामाक्षी विनिद्रत नयनों से जागती रही फिर शनैः शनैः उसके आयत लोचनों में निद्रा दैव्या अपना लास्य रंग भरने लगी। उसके पद्म पक्ष्म मुंदने लगे।

स्वप्न? तुरीय? अथवा जाग्रत-अवस्था? कामाक्षी निर्णय नहीं कर पा रही

थी। उसका मृदुल-मनोहर देह भारहीन हो, शैय्या का परित्याग कर कक्ष के अन्तरिक्ष में स्थिर था, जबकि उसी का प्रतिरूप नेत्र मूंदे शैय्यासीन भी। यह नवीन, सर्वदा मुक्त-अवस्था उसे सुखकर प्रतीत हो रही थी।

कामाक्षी की दृष्टि दिगन्त विस्तारित हो गई। कक्ष की पाषाणी दीवार पारदर्शी हो चुकी थी, सृष्टि के कण-कण से शुभ्र-आलोक का उद्भव हो रहा था। गगन, धरा, जड़-चेतन, वृक्ष-वनस्पति सहित सकल तत्व प्रकीर्णालोक से प्रकाशित हो उठे थे।

कामाक्षी की दिक्-भेदक दृष्टि देख रही थी निर्णेक प्रकृति में कहीं निर्घात[43] का निर्धर्षण[44] था तो कहीं निर्वर्तन[45] का निर्वृत[46]-निलिम्प। उसके अंग-प्रत्यंग से अलौकिकालोक की स्निग्ध-स्फुरणाएं प्रकाश रश्मियों में प्रत्यावर्तित हो, उसके अमलावरण को दीन-विदीर्ण कर कामाक्षी की अंगयष्टि की लावण्य प्रभा को निर्गत करने लगीं। कामाक्षी की चेतना कुछ क्षण स्तब्ध सी, आविष्टाभिभूत और घूर्णोद् भ्रान्त सी रही फिर जैसे चेतन तत्व सजाग्र हुआ। प्रकाश-प्राकार में प्रबद्ध प्रकाशित प्रकुल द्रुतगति से वायसन्तार करता पाषाणी अवरोध को सहज पार कर, गगन विहारी नक्षत्रों की द्युति दीप्यता के मध्य से निकल कर किसी अज्ञात प्रान्त के प्रक्रीड कानन में आ उतरा।

इस आनन्द कानन में घन वन्यश्री की सुषमा के सघन साम्राज्य का प्रस्तर-प्रसारण था। बहुभांति के द्रुम-पादप, पुष्पारोहित लताएं, कल कल निनाद से नदित निर्झर जिनकी निर्घोत नीर राशि वरबस ही मोहित करती थी, स्थित थे। उसी वन में थी रजत धारा सी प्रकाशित क्षिप्रवेगिनी पयस्विनी की धारा। उसी धारा के पुनीत परिप्लावित[47] नीर के तीर पर था मेघवर्णी पाषाण खण्डों के अद्भुद शिल्प से निर्मित विशाल देवालय।

देवालय प्रांगण और महावन से कुछ दूरी पर समृद्ध नगर। वहाँ के गगन-चुंबी भवन, अट्टालिकाएं, हाट, राजभवन इत्यादि व्यवस्थित थे। देवालय के उत्तर में, नीरमहि के तट पर महाश्मशान का नित्य चित्या क्षेत्र। उस चित्या क्षेत्र में दग्ध हो रही चिताओं के घ्रूम से दिक्पाल तक धूसर हो उठे हैं। कुण्डली मार कर गगन गमन करते चिताओं के धूम से भुवन-भास्कर भी त्राहि-त्राहि कर अपने सारथी अरूण को शीघ्र ही उस महाक्षेत्र से गतिमान होने का संकेत देते हैं। भैरव-भैरवियां, कापालिक-कापालिनियां, भस्म स्नान कर पर्यस्ति[48] आसन से परिचर्या कर अपना पर्युषण[49] कर रहे हैं।

कामाक्षी की भेदक दृष्टि में निवासित अंशुभर्तृ[50] उसके (कामाक्षी) अक्षिकूटों[51] के माध्यम से, पञ्चभूतात्मक देह से हीन कराली कटपूतनाओं को धूसर मेघों का विच्छेदन कर चित्या[52] क्षेत्र में गगन के उच्चावच्च से उतरते देख रहे थे।

कठपूतनाओं के गलों में नरकपालों की कण्ठमालाएं थी जो कटपूतनाओं के नर्तन से परस्पर अभिघात[53] करती कपालमालाओं में पड़ी क्षुद्र घंटिकाओं के रण रण रव ध्वनि से संयुक्त हो खड्र-खड्र की कर्करा ध्वनि का कुनाद का महाघोर कुनाद उत्पन्न कर रहीं थी। कहीं कोई कोई विकृत अंगो वाली, कज्जल कूट सी श्यामा प्रसन्नता से धरती पर पदाघात करती नाचती तो कोई-कोई न्यग्रोध[54] तरू-पुरोह[55] के समान झूलती सुलंबि कच जटाओं को फैलाती चिताओं के आस-पास विविध वीभीत्स क्रीड़ाऐं रचती! कोई-कोई हड्डियों की खंजरी बजाती जिसकी कर्णाघाती कर्कश ध्वनि से श्मशानी धरा में कम्प छा जाता। इन्हीं स्वरों के मध्य ऊलूकों के घूत्कार और सियारों के चीत्कार, स्निग्ध गाढ़तर-अन्धकार की परिपूर्णता से व्यापित चित्या क्षेत्री धरिणी के वक्ष पर दूर-दिगन्त तक फैल जाते।

अकस्मात् कामाक्षी के नेत्रों से सकल चिता देश अदृश्य हो गया। अब मन्दिर का पाषाणी कलेवर दृश्यमान था। अपार जनसंकुल एकत्रित था। अरे! यह कौन है? उसकी चेतना कुछ चकित हुई। मन्दिर के जनरव से कुछ हट कर दूर एक सघन पाती तरू छाव में एक तेजोमण्डित व्यक्तित्व पद्मासनस्थ हो स्थिर चित से मौन बैठा है। जैसे स्फूर्ति अग्निपिण्ड हो।

शनैः शनैः आकार स्पष्ट होता है। उसके स्वर्णतप्त गात्र पर जैसे पीयूष वर्षी कुमुदनी नायक चन्द्र से स्वित चन्द्रिका का साराच्छादन हुआ हो अथवा गौरी के क्रीडांगन हिम धौती हिमालय के हिमाच्छादित हिम श्रृंग के हिमास्तरण पर आरूढ़ महादेवी पार्वती के हास्य काल में प्रकटित उज्जवल धवल मनोहर दन्त पंक्तियों की आभा हिमखण्डों पर परावर्तन कर अर्क रूप से ही उस पद्मासनी व्यक्तित्व के आरूषिक[56] देह पर लेपित हुई है।

उसके नेत्र बन्द थे जैसे अभिसारिका अपने विपरीत रति के अभिसार कृत्य से क्लान्त हो लक्ष्य प्राप्ति को प्राप्त कर महानन्द के सधनाकाश में आनन्दातिरेक से रसलीन हो गई हो। पर यह क्या? यह अभिनायिका कहाँ? इसके उद्दीप्त मुख पर श्मश्रु का सघन संवरण[57] है।

"अरे! यह कौन सा तत्व है? किस पदार्थ का सारभूत संयम[58] है?" कामाक्षी के मधुस्त्रावी अधरदल स्फुरित हुए और श्लक्ष्ण[59] वाक् स्वर निकला। तत्क्षण चमत्कार चरित घटित हुआ।

कामाक्षी की कमनीय क्षीर छटा से छादित देहयष्टि से तदृश्या[60] का देहोद्भव सम्पन्न हुआ। प्रतिरूपा के चारू अधरोष्ठों के कलम्बित[61] पुटित प्रदेश पर मन्द स्मित ने मदिर क्रीडा की फिर मुख से स्वर ध्वनन हुआ–

"रे किशोरी, अरी काञ्चानांगी[62], यह कोई अन्य नहीं पुरुष पदार्थ है। यह योग का प्रत्यक्ष विलास[63] है, शिव का शालीन[64]–अनुष्ठान है, शुचिस्[65] का शुच्य[66] शुटीर[67] और शुभ[68] का शुभ्रि[69] शिखर है। इस विलसत्[70] योगी के अनश्वर देह में मत्स्येन्द्र की चिरामरता चरण करती है। चरिष्णु जगती इस नरार्क को महायोगी मछन्दर कहते हैं।" अपनी बात समाप्त कर वह मदन रस की सारणी, नवयौवन की तरंगित रागिनी, स्फुरित पद्म दलों की मनोरम शोभा और लावण्य निर्ग[71] निवासिनी कामाक्षी की सादृश्या, तपमण्डित पुरुष के समीप पहुंच उससे संश्लिष्ट[72] हुई फिर उसी में समाहित हो अनध्यक्ष[73] हो गई।

हे आत्मभूया[74], कुसुमेश्वरी मातृ! यह कैसा चमत्कार? उसके अनधप्रान्तीय[75] देह से निष्पन्न उसी की प्रतिरूपा अनवद्यांगी[76] उसी की देहयष्टि में लयलीन न होकर उस तेजस्वी के सर्ग[77] मे संवृत[78] क्यों हो गई?

और वह योगानिभृत[79] पुरुष? तो यही है पुरुष। कितना अद्भुत, कितना अनौद्धत्य[80], कितना अनपेक्ष![81] नारी पदार्थ से नितान्त निर्भट[82], नारी दैव्या को नीरार्जित निर्माल्य[83], यही है... यही है... यही है पुरुष। कामाक्षी का कुसुम गात्र लोम–प्रहर्षणा के आधिक्य से अत्युर्मिल हो उठा। उसके मन में उस योगी पुरुष से प्रत्यक्ष परिचर्या का भावोदय हुआ। जैसे ही उसका मन बांक्षाबद्ध हो उसे योगी के समीप ले जाए, योगी का दर्शनीय देहधरा से उठा और.....प्रज्ज्वलित नक्षत्र के समान आलोकोदभाष से काश्यपी[84] को प्रकाक्षित करता, गगन मण्डल की परमोच्चतां का स्पर्श करता, नक्षत्र मण्डल की ओर उठता उठता ही चला गया। कामाक्षी विस्फारित नयनों से निहारती रह गई, हत्संज्ञ, स्तब्ध और निज्चेष्ट! निर्वाक, निःसंग और निष्शेष! उसके चकित नेत्र, नक्षत्र–निहारिकाओं के पिण्डालोक में टंग गए थे।

इस वार नूतन दृश्य के स्वयंभु सृजन का अभिराम उसके नेत्रोन्मुख था। मन्दिर की प्रदीपमल्किाओं के आलोक रस से प्रावरित ज्योतिर्लिंग पर प्रालेयाभा[85]

का महाभिजात्य रूप कामाक्षी की सर्वाभित्यापक[86] चपल चेतना के अन्त:क्षितिज पर सम्मूर्त हुआ। आह! कैसा मनोरम, कैसा रम्य-रासक, कैसा महारोप्यमण्ड, कामारि[87] का रोचिस्वन[88] पावरित ज्योतिर्लिंग।

महालिंग से आलोक रश्मियों का चपल स्राव हो रहा था, सृष्टि प्रवर्तक नायक के ज्योर्तिमय मूलदण्ड से अग्नि स्फुर्लिंग धारावाह गति से झर रहे थे। दीप्र[88] द्राघिष्ठ[89] ज्योतिर्लिंग की अपरम्पार शोभा का सत्व सरन निहार कामाक्षी के चक्षु हीरकों ने धन्य-धन्य कहा, मन सृष्टि रचयिता की सित छवि के निर्मल निर्ग निलय में रमने लगा।

हिरण्यलोकी, भूलोकीदेव (ब्राह्मण) महाज्योतिर्लिंग का नीर-क्षीर धार से मंगालाभिषेक करते मुक्त-मुग्ध कण्ठ स्वरों से निगम छन्दों का महागान पर परम पर्युषण का प्राभकपारण[90] कर रहे थे। मन्दिर के प्रांगण में छन्दों की रागिनी, लय की नर्म संगनी, भावों की भास्वती[91], नृत्यों की नक्षत्रिका, यौवन की युवराज्ञी और सौन्दर्य की संवृता[92] चार्वंगी[93], चक्षुष्या[94], नवयौवन सम्पन्न रमणी रत्न उद्दाय वेग से नृत्य कर नटेश्वर[93] का नटार्चन कर रही थी। तीव्र घूर्मण के मध्य उसके चन्द्रमुख को वस्त्रप्रावर को पवन की चंचल तरंग ने स्थानच्युत किया तो नायिका नृत्यांगना के घनाश्लिष्ट-अनुभावमय सौन्दर्य के स्निग्ध-आलोक में जैसे स्वयं आशुतोष[94] ही अभिनिविष्ट[95] हो गए, निराग राग में संपृक्त हो गया। उसकी मुखच्छवि की मनोरमा नित्य वृंदावनी रास्य का श्रृंगार रस साक्षात शोभित हो वेणु-निनाद कर उठा। उज्ज्वल धौतश्वेद् निर्मित मोक्तिमाल के प्रत्येक मणिक पर मोहन ही मोहन का मोह निरन्तर नदन करता उसी रमणीया का मुखर यजन करता, प्रत्यक्ष नृत्य बन गया।

नृत्यकर्त्री की लावण्य छटा की ललामरूपी मुखच्छवि का निर्णेक दर्शन कर कामाक्षी चकित तो हुई, चौंकी भी। नर्तनी और अन्य उसी की जननी, शोभा की सरलता, नाट्य की प्रफुल्ल दमनकयष्टि, भावों की सौरभ सिक्त भार्या, नटन चेष्टाओं की उच्चोष्णीशा और अभिनय की अंगरंगरागिणी, नारी राज्य की महाराज्ञी तिलोत्तमा ही थी। उसकी इच्छा हुई कि शोभा की सुमंगला अपनी माँ से पूछे कि वह यहां किस प्रयोजन से किस देवाधिदेव अथवा महोदवी का नृत्य पर्युषण कर रही है? जैसे वह उसके समीप पहुंची तिलोत्तमा सहित सकल रंगशाला और उसमें सुसम्पन्न हो रहा-नृत्यरंग कर्म शून्य में तिरोहित हो गये। वह पुनः चकित हो प्रतिमा सी स्थिर खड़ी रह गई।

अब कामाक्षी के पक्ष्य निर्ग में वही धौतावरित, ज्योतिर्मयी प्रभा से आश्लिष्ट महालिंग था। रोचस्विनी लिंग से उद्भाषित चपल रश्मियों के विद्युन्न आलोक में क्षण-प्रतिक्षण संवृद्धि के शोभन संभार का सागरी भाव प्रकट होता जा रहा है। कामाक्षी की दृष्टि स्पष्ट देख रही थी महालिंग का अर्कोद्भाषित आकर मन्दिर के उच्चस्थ मण्डप का ठोसत्व विदीर्णकर व्योम के निःसीम नीलप्रावरित महापट्ट की परमोच्चता का स्पर्श कर रहा है। महि से अम्बर तक औश्र अब अम्बर से पूर्णातीत।

कामाक्षी की संचेत दृष्टि धरा देश के उस प्रान्त की ओर उठती है, पर वहाँ मन्दिर कहाँ? वहाँ तो धरा की महान्तरी गुहा से मृसृणार्चित ज्योतिर्लिंग ही काश्यपी का भेदन करता गगन शोभा बन रहा था।

कामाक्षी के कमल-कोमल हस्त नमस्य मुद्रा में स्वतः ही संयुक्त हो गए। यद्यपि वह लिंगाकारी संज्ञा से अनविज्ञ थी इस सर्व तन्त्र स्वतन्त्र की सुरति सत्ता के स्वराज रमण से असंज्ञय थी तद्पि वह उस महाद्युतिकार के वन्दन को विवश थी। उसके रस संपुटित चारू अधरो पर ध्वनि के रूप में केलि करने लगा।

हे, प्रकाश के प्रकीर्त, सुलोचनों के पुनीत तीर्थ, अकुल[96] के अभिरूप[97], अकल[98] के अकव[99], अभिमाद[100] के अंशल[101] और समभ्यर्चन[102] के संस्कृतस्वरूप[103] मेरा संराधन[104] स्वीकार कर कृतार्थ कर। हे ब्रह्माण्य समाकर्षी[105], पूर्ण समाख्यी[106] मेरे स्तवन को सर्वशस[107] स्वीकार कर मुझे सविद्[108]-दान कर।

"प्रियंकारी अनुजा! पुत्री कामाक्षी....ई....ऽ।" किसी का स्वर शयन निलय में गूंजा। कामाक्षी की तन्द्रा भंग हुई। चेतना हिरण्यलोकी देश से स्थूल प्रपञ्ची देह में आबद्ध हो गई। चर्म चक्षुओं ने दृष्टि का सर्जुकर्म प्रारम्भ कर दिया। कामाक्षी ने देखा, उसकी शैय्या के समीप ही उसकी माता तिलोत्तमा खड़ी, उसके सिर पर अपने शीत हस्त का स्नेह चालन करती उसे पुकार रही थी। तिलोत्तमा की नितम्ब प्रसारित घन चिक्कन मुक्त केशराशि से जल की सांर्द्र सुगन्ध प्रवाहित हो रही थी। माँ के सद्यस्नात, कुमुदिनी से स्फुरित स्वरूप को देख कामाक्षी त्वरा से उठी।

-"पुत्री! इस ब्राह्मय मुहूर्त में किससे संविददान की याचना कर रही थी? सुतामणि हम शक्ति की समग्रस्वरूपिणी किसी से किसी प्रकार का याचन नहीं करती-हम तो स्वयं से ही स्वयं याचना करती हैं, क्योंकि हम संविद का प्रत्यक्ष-साक्षात् रूप हैं। हम ही संविदा हैं, हम ही सकला और हम ही सनातनी, शिखरिणी।"

"हम कुलाराध्या से ज्ञान-याचना करते है मातु। ऐसा क्यों?" कामाक्षी ने चकित हो कहा।

—"क्योंकि हम स्त्रियां उसी के सदृश्य पदार्थ हैं। जो वह है वही हम में सन्निहत-समाविष्ट है। अन्तर है तो मात्र इतना कि वह महाविस्तारिणी है और हम उसके विस्तार का प्रसःतत्व। इस हेतु हम विस्तारिणी उसके महाविस्तार को अपने विस्तार विसार में विस्तारित करने के लिए उससे ज्ञान याचना करती है। इमसे श्रेष्ठत्तर, ब्रह्माण्य में अन्य कोई सत्ता उपस्थित ही नहीं है राज सुता।"

कामाक्षी की मनेच्छा हृत्कमल की कोमल कर्णिका में प्रस्फुटित हुई, क्या वह उस अज्ञात देश में दर्षित, नेत्रों को तृप्तिदाय महाज्योतिर्पिण्ड के महिम गुणों का वर्णन अपनी माता से करे, कह दे कि उपासना का आधार वही शुभ्रमय ज्योतिर्मण्डल ही आपेक्ष है, संभवतः वही जगत की महानेत्तर सत्ता है। पर वह उस ज्योतिर्लिंग के विषय में कथन नहीं कर सकी। सत्य तो यह था कि वह उस भास्वर पिण्ड की संज्ञा से ही अपरिचित थी।

—"उठ पुत्री, स्नान कर निवृत हो। मैं और लोलापा, प्रसृत्वरालोकी, पुलक की परिश्रुता, पर्यवशत की ज्यौत्सना रजपर्जन्यवती कामाख्या के सन्निकट तेरी प्रतीक्षातुर हैं। उनके प्रातःदर्शन-अभ्यर्चन के हेतु शीघ्र उपस्थित हो।" तिलोत्तमा स्नेहसिक्त-आदेश देकर सुषिर धारिणी देवी माँ कामाख्या के मन्दिर की ओर चली गई।

रन्ध्र रूचिरा, ज्योक् उत्क्लेदा कामाख्या का मन्दिर।

तिलोत्तमा के मुख चन्द्र पर यत्किचत् चिंता की सूक्ष्म रेखाओं का मण्डन था। वह मन्द पर गाम्भीर्य स्वर से कह रही थी–

—"स्फीताननी सखि लोला, राज्य की गोप्यचरी ने सव्रीड़ा का विचित्र समाचार दिया है। उसके मुख कथनानुसार सव्रीड़ा ने जिस कन्दर्प रूपी पुरुष को बन्धक बनाया है, वह सत्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि सव्रीड़ा उससे रतियाचना करती पाई गई। यही नहीं वह उसके चरण चंचु का कुसुमादि से पर्युषण भी करती है, उसकी प्रत्येक आज्ञा का पालन भी प्रल्हन्न वदन से कर स्वयं को धन्य मानती है। यह भी श्रुत हुआ है कि वह प्रचण्ड वेगी रति के सुरमण में सव्रीड़ा सहित अन्य उसकी सखियों के कन्दर्प कूपीं कुण्डों में अपने वीर्य का अभिहोम नहीं करता। सभी अभिसारिकाएं विपरीत रति से परिक्लान्त हो, श्वेद समुद्र में डूबी शव के समान निष्क्रिय-निर्वाक, निश्चल हो एक ओर जा गिरती हैं।

सव्रीड़ा उसका विनिमय पर व्यापारी की भांति कृत्य कर्त्री हो गई है। नगर की धनिकाएं अपनी कामेच्छा और रति अभिसार्य्य के लिए सव्रीड़ा के भवन की ओर गमन करती देखी जा सकती हैं। इस प्रकार वह उच्च मूल्य पर पुरुष का विक्रय कर नित्य ही सहस्त्रों स्वर्ण मुद्राओं का भण्डारन-संग्रह कर रही है-करे, हमें इससे प्रयोजन नहीं पर विशेष यह कि सव्रीड़ा के भवन की प्रत्येक सृमरी नायिका उस पुरुष के पौरुष से पराजित हो पुरुष पुजारिन बन गई। वे सभी सौन्दर्य की सौदामनियां, उस संचरित बसंत के प्रत्यक्ष विग्रह पुरुष की दासी बन चुकी हैं। अगर यही अवस्था रही तो एक दिन कामरूप की समस्त स्त्रियां नारी सत्ता का परित्याग कर शेष संसार के समान पुरुषानुगामिनी होकर अपना पतन स्वयं कर लेगीं।" तिलोत्तमा ने अपनी बात समाप्त कर लोलापा की गम्भीर मुखच्छवि की ओर देखा।

–"सत्य ही....यह चिन्ता का विषय है। सव्रीड़ा के कारण राज्य पर संकट संभाव्य है। वह सव्रीड़ा दण्डनीय है। इसके पूर्व कि राज्य में विद्रोह का शंखनाद हो पुरुष को देश की सीमाओं के उस पार कर दिया जाये, अथवा मृत्युदण्ड से दण्डित।" लोलापा ने विचारा–"नही....यह संभव नही। राज्य संविधानानुसार किसी पुरुष दास को उसकी स्वामिनी की अनिच्छा से दण्ड प्रदान नहीं किया जा सकता।"

"तो सव्रीड़ा को विवश किया जावे कि वह उस पुरुष को राज्य हित में मुक्त कर दे।"

–"धन-वैभव और रति की वुभुक्षिता सव्रीड़ा इस पर सहमत नहीं होगी, और उस पर राज्य बलात् करता है तो रति बांक्षी नागरिकाएं विद्रोह कर देंगी। ऐसे विद्रोह के बलात शमन में रक्तपात अवश्यसंभावी है, और मैं नहीं चाहती कि राज्य में रक्तपात हो।"

"फिर निदान क्या हो?"

"सर्वप्रथम उस पुरुष का परीक्षण हो, इस हेतु मैंने कल ही राजकीय आदेश सव्रीड़ा को प्रेषित किया है। वह आज सन्ध्याकाल में उस पुरुष के सहित उपस्थित हो रही है। एतद् विषयक उससे परिचर्चा भी होगी। मुझे भाषमान हो रहा है, इस संकटेयी बेला में एकमेव लोलापा ही सुकर कृत्य कर सकेगी। इस हेतु एकाभिनव योजना के क्रियान्वयन हेतु तुम्हें मानस रूप से सनद्ध होना पड़ेगा।" तिलोत्तमा ने अपांगवीक्ष दृष्टि से लोलापा को निहारा!

"महिमामयी राज्ञी, कृपया अपने उस अभिनव योजना के क्रियान्वयन पक्ष से मुझे अवगत कराएं।" तिलोत्तमा ने ससम्मान कहा।

"अवश्य! अवश्य सखि, पर समयानुसार वह पक्ष भी प्रस्तुत करूंगी। इसके पूर्व मैं उस पुरुष का गहन परीक्षण के उपरांत ही अपनी योजना को मूर्त रूप दूंगी।"

"आपकी प्रत्येक आज्ञा का श्रद्धा और निष्ठा से परिपालन करूंगी।" लोलापा ने संकल्पित स्वर में कहा।

"उत्तम....अत्युत्तम सखि। अब देखो.....पर्युषण काल समाप्त ही होने आ रहा है पर कामाक्षी का आगमन अभी तक नहीं हुआ। "तिलोत्तमा के द्वार की ओर दृष्टि निक्षेप करते हुए कहा।

–"मैं उपस्थित हूँ मात्! आप दोनों के मध्य गम्भीर संवादचर्या समपन्न हो रही थी, अतः मैंने मध्य काल में उपस्थित होना उचित नहीं समझा। वार्ता समाप्ति की प्रतीक्षा में द्वार पर ही उपस्थित रह कर परिचर्चा का श्रवण करती रही, इसके लिए क्षमा।" कामाक्षी ने अपनी जननी एवं योषित गुरु के पाद्पद्मों पर श्रद्धा से नत होकर कथन किया।

"स्वस्ति! पुत्री निरिर्गिण निर्गावासिनी महाविवरा तेरा सर्व कल्याण करे। उसके विलसित विस्तार की आनन्दलब्धि तुझ प्रांगी के योषांग में योजित हो।" दोनो सुचारू योषिताओं ने कामाक्षी को मुक्त कण्ठ और परम प्रसन्न स्वर से आशीर्वचन कहे।

इसके पश्चात् तीनों ने कामाख्या के पाषाण विग्रह का पूजन सम्पन्न किया फिर वे कामराजि के रोचस्विन्[109] विग्रह वु अभ्यर्चन में व्यस्त हो गई। जैसे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य की त्रिधाराएं ही नारी चर्चिकाओं[110] के प्रफुल्ल प्रावरण में प्रबद्ध हो अपना अर्चन कर रही थी अथवा त्र्यगुणाधीशों[111] की त्र्यसंध्रीचियां[112] सदेह उपस्थित हुई हो अथवा योग पथ की त्र्य गोप्किाएं इड़ा, पिंगला और सुषम्ना प्रकट प्रत्यक्ष संसादित[113] हो जगसंसृति[114] मुक्ति के हित अपनी ही सपर्या[115]–क्रिया मे रत हो गई हों।

---

1. गमन करने वाली
2. चंचल
3. लालिमा
4. मनोहर
5. सुशोभित
6. नमकीन

7. सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा
8. आकाश
9. बिजली
10. प्रसन्नता से ओत-प्रोत
11. चंचल
12. आंखों के हीरे
13. यौवन दीप्ति से दीप्त (स्त्री)
14. अस्थिर, चंचल, मनोहर
15. एक स्त्री का नाम
16.
17. वह कुमारी जिसका कौमार्य हाल ही नष्ट किया गया हो।
18. एक प्रकार की नायिका
19. किसी कथन आदि की सत्यता पुनः स्वीकार कर उसे अधिक दृढ़ एवं विश्वसनीय बनाना
20. उत्तम अंगो वाली
21. प्रशंसित
22. लज्जा
23. पसीने की नमी
24. गीली (भीगी हुई)
25. आमोद-प्रमोदमयी (स्त्री)
26. आलिंगन
27. रसभरी (स्त्री)
28. आकर्षक-आकार रूप वाली
29. यौवन से श्रृंगारित (स्त्री)
30. कामदेव के समान
31. पूर्णस्वस्थ युवक
32. काम (sex) इच्छा की पूर्ति
33. अनिष्टकर
34. ऐसा यत्र या भट्टी जो कामरूपी रस को अर्क रूप में खींच कर बूंद-बूंद कर टपकाए (योनि)
35. कामरूपी जल (रस) का गिरना (नीचे की ओर)
36. कामाग्नि में आहुतियां देने की क्रिया
37. काम (sex)
38. निरंतर, लगातार, ध्यानपूर्वक
39. भूल-चूक
39. काम (देव) sex का क्रीड़ा प्रसंग
40. काम (देव) sex का क्रीड़ा प्रसंग
41. अभिनय-आचरण
42. आंधी-तूफान
43. रगड़
44. कर्म को पूरा करने की क्रिया
45. निष्पत्ति का देवता
46. चंचल
47. वीरासन
48. पूजन-अर्चन
49. सूर्य
50. आंखों में गोल तारा
51. श्मशान
52. चोट
53. बरगद का पेड़
54. टहनी (यहां बरगद के वृक्ष पर लटकती लम्बी जटाओं से आशय)
55. चमकदार
56. आच्छादन
57. तपोनिष्ठा
58. कोमल

59. उसी के समान
60. मक्खन
61. स्वर्ण अंगो के समान आभा वाली
62. सौन्दर्य, चमक
63. चमक, दीप्ति
64. मार्जित
65. वीर
66. कल्याणप्रद
67. ब्रह्मा
68. शोभित होता हुआ
69. देश
70 प्रगाढ़-आलिंगन
71. अदृश्य
72. कामदेवी (कामाख्या)
73. पाप रहित, सुन्दर
74. निर्दोष सुन्दरी
75. रचना, निर्माण
76. ऐक्य
77. ऐसा पुरुष जिसका योग (साधन) गुप्त न हो।
78. विनम्र
79. स्वतन्त्र, पक्षपात रहित
80. मजबूत सख्त
81. देव-अर्पित वस्तु
82. पृथ्वी
83. हिममण्डित आभा
84. सभी ओर विस्तारित
85. कामदेव के भस्मकर्ता (शिव)
86. तेज
87. चमकीला
88. दीर्घकालीन
89. उत्कृष्ट
90. चमक
91. परिपूर्ण
92. सुन्दरी
93. दर्शनीया
94. नृत्य-नाट्य के अधीश्वर (शिव)
95. शिव
96. मग्न
97. जिसका कोई कुल न हो (शिव)
98. मनोहर
99. जो अखण्ड हो, अविभक्त
100. वर्णनातीत
101. मद
102. बलवान
103. पूजन, सम्मान
104. परिमार्जित (साफ किया हुआ)
105. आराधना करके प्रसन्न करने की क्रिया
106. भलीभांति-आकषर्ण करने वाला
107. कीर्ति, ख्यातिधारी
108. पूर्णरूप से
109. चेतना, ज्ञान, बोध आदि
110. तेजस्वि
111. आराधना करने वाली स्त्रियां
112. तीन गुणो के आधीस (ब्रह्मा, विष्णु, महेश)
113. तीन पत्नियां (सरस्वती, लक्ष्मी, काली)
114. एकत्रित होना, गोष्ठी सभा आदि में
115. भवचक
116. पूजन

क्षिति से क्षितिज तक सन्ध्या सुन्दरी ने अपने स्वर्ण छुरण[1] से प्रकृति का परिमल[2] श्रृंगार कर दिया। जैसे धरित्री का परिमुंध[3] धरा धाम सन्ध्या के आरक्त अधरों के सार-अर्क से परिमृष्ट[4] हो प्रकाशित हो उठा। मन्द पवन का प्रवाह सुरभित पुष्पवाटिकाओं से भूरि-भूरि[5] सुवास को अपने अदृश्य वाययान में भर-भर कर वासुकि[6] के विस्तार पर परिसिंचन कर रहा था।

सव्रीड़ा के रथ के सुपुष्ट रक्तवर्णी अश्व, रथ को खींचते राजप्रसाद की ओर बढ़ रहे थे। रथ की गति मन्थर थी, संभवतः इस कारण कि रथ के पार्श्व में नारी सम्मर्द का प्रभूत्य[7] परिमाण[8] रथानुगमन करता आ रहा था। रथ का अर्द्ध भाग निरिगिणी[9] हीन था। इसी भाग में सव्रीड़ा अपने बन्धक पुरुष के साथ दर्प मण्डित मुखश्री सहित आसनासीन थी।

जिस राजपथ से रथ जा रहा था, उस मार्ग के तटदेश में स्थित उच्च अट्टालिकाओं की शोभित श्रृंखला थी। माननी सव्रीड़ा अपने बन्धक को लेकर राजप्रसाद जा रही है यह समाचार मरूत वेग से भी तीव्रतर गति से फैल गया था। अतः अट्टालिक-आलिन्द गवाक्षों से अपनी सुरभित श्वासोच्छवास का प्रक्षेप्त करती मुग्धाएं, सव्रीड़ा के भाग्य पर ईर्षा करती देख रही थी!

सव्रीड़ा से बन्धक सहित राजप्रसाद गमन के विषय में भांति-भांति की चर्चा हाट, वीथी, भवन और चतुष्मार्गों पर हो रही थी। कोई कामरस से सिक्त सुन्दरी अपनी सखि से कह रही थी-

-"उस पौर[10] पति को राज्ञी ने 'स्वहितसाधन' के लिए ही बुलाया है। आज की रात्री में महाराज्ञी के प्रसाद मे मदनरस पूरित पर्जन्य का परिस्यद होगा।"

कोई रूप गर्विता स्मित मुख से कहती-

-"अरी सखि! आज की यामिनी में सव्रीड़ा के बन्धक दास का दर्प चूर-चूर्ण हो जाएगा दिखना महाराज्ञी के तप्त कुण्ड में दास के दिधि[11] दण्ड का दहन अवश्य सम्भावी है।" दूसरी उसका प्रतिपाद करती और कहती-

-"अरी, नहीं (महाराज्ञी नीतिज्ञा हैं वे विधान सम्मता भी है। किसी के दास पुरूष का उपभोग कर वे निंदिता नहीं होना चाहेंगी। किसी अज्ञात कारण से ही पुरूष को बुलाया गया है।"

कुछ उत्तमांगनाएं, सुरतार्थियां राजमहिषी और साकार कामदेव स्वरूप पुरूष के उन्मत्ताभिसार की मनः कल्पना कर स्वयंम्भु आनन्द सागर में निमज्जित हो रही थी तो कोई कन्दर्प आहता अपने जघन देश की कामनगरी में उस देवता की प्रतिष्ठा के सुख स्वप्नों का दर्शन कर प्रमत्त हो रही थी।

दीप-आलोकन काल के पूर्व ही अश्वतरी राजप्रसाद के सिंह द्वार पर जा पहुंची। द्वार पर उपस्थित स्त्री सैनिक वनिताएं सतर्क हो गई। उनकी दृष्टि भी मन्मथ कोषागार की पौरूष निधि के दर्शनों को आतुर-लालायित थी।

प्रथम सव्रीड़ा रथ से अपनी नूपुर मणियों के झणत्कार से गुंजन उत्पन्न करती उतरी। उत्तम पुरूष धारण के मद से उसकी ग्रीवा उठी हुई थी। वसंतकालीन वन पंक्ति के समान श्रृंगारपूर्णा सव्रीड़ा की दर्पित दृष्टि का निक्षेप नारी सम्मर्द पर निष्पन्न कर गवेत्किण्ठा से प्रासाद के अन्तःपुर की ओर बढ़ी। उसके पीछे मृदुबन्धनों से बद्ध पुरूष और सव्रीड़ा की केलि सहचरियां थी।

मार्गदर्शिका राजपरिचेरी सव्रीड़ा का मार्गदर्शन करती उस कक्ष में ले गई जिसमें लोलापा अपनी दुग्ध-मुग्ध छटा के सहित आगतों की प्रतीक्षा कर रही थी। लोलापा ने आसन परित्याग कर सव्रीड़ा का आत्मीयता से स्वागत किया। एक क्षण तो सव्रीड़ा हत्प्रभ् हो उठी उसकी दर्प लेपित मुखच्छवि पर म्लान का आच्छादन हुआ। वह मन ही मन चौकी कामाचार्या लोलापा की उपस्थिति? कहीं उसके पुरूष के बलाताहरण की नीति सम्मत योजना तो नहीं बन रही? राज्यादेश में उसे बताया गया था कि विधि के अनुसार वह बन्धक सहित राजमहिषी का पुण्याशीष ग्रहण कर उत्तम पुरूष को उसकी पूर्ण स्वामिनी के दर्शन कराए।

—"सव्रीड़ा यहां के पश्चात् तुम्हारा अग्रिम प्रवेश या गमन निषेध है। तुम अपनी सहचारिणयों के सहित इसी कक्ष में विश्राम करो। मैं तुम्हारे बन्धक पुरूष को महाराज्ञी के सम्मुख उपस्थित करूंगी।" लोलापा के स्वर में किंचित कठोर्य्य था।

सव्रीड़ा का दर्प जैसे निमिष मात्र काल में दलित हो खण्ड-खण्ड हो लोलापा के चरणों में लुंठित हो गया। वह कातर स्वर तीव्र स्पंदित हृदय से विनयावतन हो बोली-

"आचार्या, मैं भी राज्ञी के महिमामय दर्शन की आकांक्षणी हूँ, उनकी अनुभूति पूर्व से ही....."

–"प्रलाप व्यर्थ है अहं पुत्तिली। तेरे दर्प का मण्डन अब से कुछ क्षण अतीत तक तेरे प्रकुल गात्र में मण्डित था। राज्य के चतुष्पद, बीथी और बाजार तक तेरा गर्व वैध्य है पर राजप्रसाद में भी दर्पप्रभूत? यहाँ एकमेव दर्प की प्रारूपा महाराज्ञी है, यह उसी अतिबला का अलंकरण है जिसे तूने बलात धारण का राजापराध किया है, तू दण्ड की पात्रा है।" लोलापा के नेत्रों में आरक्त आया, अमर्ष जाग्रत हुआ।

–"क्षमा.....भगवति.....क्षमा......।" सव्रीड़ा का सर्व सम्मान लोलापा के पाद-पद्मों पर उत्सर्ग हो गया। वह क्षमा......क्षमा.....का निरीह स्वरोच्चारण करती लकुटीवत भूलुण्ठित होकर विनय करने लगी।

–"उठ! स्वयं पर कृपा कर और राज्ञी के अन्य-आदेश की प्रतीक्षा भी।" कहती हुई लोलापा ने बन्धक पर दृष्टि डाली। लोलापा उस पुरूष के प्रारूप को देखकर चौंक उठी। उसके अन्तः निवासित साधक तत्व सघनतर हो उठा। क्षण मात्र में ही पुरूष का 'बल', उसकी उद्दात्तता, उसके रेत्स स्तम्भन का रहस्य प्रकट हो गया।

–"इसे मुक्त करो!" लोलापा ने आदेश दिया।

सव्रीड़ा ने तत्क्षण उसका बन्धनोद्धार किया, फिर करबद्ध मुद्रा में एक ओर खड़ी हो गई।

"पौरूष धर्त्रे! तू किस नाम संज्ञा से इस जगत में प्रचलित है?" लोलापा ने उसके पुष्टांगों के स्निधप्रावरण पर तीक्ष्ण दृष्टि डाली।

–"मैं अनन्तव्रज हूँ देवी।" पुरूष का मणिपूर चक्र से वायारूढ़ हो, गम्भीर स्वर मुखरित हुआ।

–"हूँ.......तो तू वज्रयानी है।" अज्ञातत: लोलापा के हृत्पदमों में कम्पन हुआ।

–"मैं नहीं जानता देवी। नाम संज्ञा के पश्चात 'वज्र' शब्द मुझे आह्लादित करता है इसी हेतु मैं स्वयं को अनन्त व्रज की संज्ञा से अभिहित करता हूँ।"

–"तू किस देश का आवासी है?"

–"भगवती! सर्वधरा ही मेरा देश है। मैं सार्वदेशिक हूँ।"

–"चतुर है। पर तू वह नहीं जो दृश्य है। अस्तु, आज तेरे ललाट पट्ट पर

लिखित विधाता की लिपि उज्ज्वल दिखती है। तेरा दैव प्रसन्न है, प्रारब्ध सुकर्मारूढ़ हो तेरे हित साधन को सन्नद्ध है, चल तू भाग्यशाली है, आज राजमहिषी का दर्शन कर अपने पुण्यों में संवर्द्धन कर। यह तेरे प्रक्तन पुण्यों का उदय काल है।"

"मेरा अहोभाग्य, मैं धन्य धन्य हुआ देवि! परन्तु मैं अपनी स्वामिनी की आज्ञाभाव में कहीं अन्यत्र प्रस्थान नहीं कर सकता।" अनन्त व्रज ने कहते हुए सव्रीड़ा की ओर दृष्टिपात किया।

इसके पूर्व कि लोलापा की दृष्टि से अमर्षाग्नि के स्फुलिंग स्फूर्जित हो, सव्रीड़ा तत्परता से बोली–

–"आज्ञा है भद्र....। तू आचार्या सहित महाराज्ञी की प्रत्येक आज्ञा का अक्षरतः पालन कर।" सव्रीड़ा ने विवशतावश आज्ञा प्रदान की। अनन्तवज्र ने नतमस्तक हो उसका आदेश ग्रहण किया और लोलापा का संकेत पाते ही उसका अनुकरण करता चल दिया।

योषराज्य की घिषना[12]–ह्रादिनी महाराज्ञी तिलोत्तमा अपने विशिष्ट कक्ष में सुखासन से बैठी किसी वज्रयानी ग्रन्थ का विहंगावलोकन कर रही थी। आनन्द की उर्मि[13] उसके शुचि[14]–आवरित मृदुलगात्र को क्षण–क्षण मुत्[14] विभोर कर रही थी। वार–वार उसके अन्तर्प्रेक्षा[15]–गगन में ज्ञान की शुभ्र शम्पा[16] वज्र–निर्घोष[17] करती। संवित[18] धरा पर श्रेयम्[19] प्रद वारिद, ज्ञानार्क का धारा[20]–सम्पात वर्षण करते फलतः उसकी प्रज्ञप्ति[21] परमानन्द के आम्रती रसासार मे डूब जाती जिसके पृषत[22] बिन्दु उसकी त्रिविष्टपी[23] सुषमा[24] पर प्रकट हो उसे कल्याणी की प्रमुद–प्रमा[25] की प्ररूपणी बना देते।

–"परमादरणीया, महाभागा, कैवल्यदात्री[26], पीयूषस्राविणी[27] की स्तनिता[28], कामाख्या की प्रत्यक्षरूपा महाराज्ञी! कामाचार्या, योषितरत्ना, स्त्री मुकुटमणी, छवि की उष्णीषा श्री शालिनी लोलापा महादेवी के कक्ष–द्वार पर बन्धक पुरूष के सहित उपस्थित हैं। वे सपुरूष कल्याणी के पाद्पद्मों के दर्शन हेतु उत्किण्ठित है, अनुमति–आकांक्षिणी के लिए क्या आदेश है योषितेश्वरी[29]? यह एक विशिष्ट सेविका का स्वर गुंजन था, जो तिलोत्तमा से कुछ दूरी पर नतमस्तक हो विनय करती, लोलापा एवं बन्धक पुरूष अनन्त वज्र के आगमन की सूचना देते हुए उन्हें उपस्थित करने हेतु आदेश मांग रही थी।

सेविका का स्वर श्राव्य कर तिलोत्तमा चौंकी। श्रद्धा से ग्रन्थ को एक ओर स्थापित कर आनन्द सिन्धु से उभर कर वाह्य भुवन[30] में आई और गम्भीर स्वर में बोली।

—"अनुमति है, उन्हें यथाशीघ्र उपस्थित कर"

सेविका सम्मान प्रदर्शित करती लौटी गई। तिलोत्तमा द्वारापटी की ओर देखने लगी।

लोलापा और अनन्तवज्र ने कक्ष में प्रवेश किया, जैसे कलानिधि के साथ उसकी तुहिन सिक्त चन्द्रिका हो अथवा स्वयं आमोद के संग घीमती की सुकान्ति ही शोभित हो रही हो या निर्देह बसंत स्वामी स्मरदेव ही अपनी प्रिया रति के रत्योद्गाढ़ मण्डल में साकार रूप से उपस्थित हों। अनन्तवज्र और लोलापा कुछ इसी प्रकार तिलोत्तमा के हृत्-पुष्करी, प्रज्ञा-पट्ट पर आलोकांकित हुए।

—"महोदेवि! आमोद कौमुदी, कलि कलुष निहंत्री, भव्य प्रसः दैव्या। यही वह बन्धक पुरूष है जो कामरूप की शम्पित कामनियों का आनन्दथु है, उनके मनस् व्योम का घौत मयंक है, उनके कामार्द्र सरोवर का शोण रोचिष्-उत्पद है।" लोलापा ने नत्मस्तक हो सविनय स्वर संचार किया।

तिलोत्तमा विस्फारित नेत्रों से देखती रह गई। तप्त स्वर्ण का शोभन वर्ण, प्रस्तर वक्ष प्रदेश, वृष की भांति स्कन्ध, स्वच्छ नेत्र, उन्नत प्रस्तर भाल। अनन्तवज्र त्रित्रिक[31] और त्रिप्रलम्बन[32] पुरूष के गुणों से संपूरित था।

—"परमादरणीया, सम्मान की पुण्य पुरी, प्रकृति पराँ की प्रत्यक्ष सम्प्रति, आनन्दानन की द्युति छवि महाराज्ञी के पाटलाच्छिादित पाद् पद्मों में स्वयं को समर्पित करता हूँ।" अनन्तवज्र ने स्वराभ्यर्चन किया।

तिलोत्तमा की दृष्टि निरख रही थी। अनन्तवज्र के छह अंग[33] उन्नत थे तथा त्वचा, केश, दन्त, रोम, दृष्टि, नख एवं नाभि-समुत्भद् वाणी स्निग्ध थी। यही नहीं उसके सर्वांगों में धवलोत्पल की कान्ति भी विश्रामित थी।

तिलोत्तमा के मदस्रावी, रोहित[34] अधरोष्ठों पर स्मित की अरूण राजि तरंगित हुई। वह सुष्ठु[35] युक्त स्वर में बोली-

—"निश्चिय तुम पौरपति नहीं हो और न ही किसी यौवनाकल्पी[36] सुन्दरी के भवन विहारी। तुम चित्त व्योम के क्षेम[37] वक्ष पर ह्रादिनी[38] का महास्फूर्ज हो,

चपल शम्पा[39] की अवदातसित[40] शलाका हो, अथवा पाण्डर[41] ऐरावती[42] की अर्चिषहेति[43]। सव्रीड़ा की कामवह्निमयी[44] काया में वह उत्ताप नहीं जिसमें तुम सदृश्य पुरूष दग्ध होकर दास-आचारण को अंगीकार कर ले। तुम प्राण के उपासक पुरूष हो वज्रयोगी और यह भी निश्चित से सत्य है कि तुम मार्ग भ्रमित हो चुके हो। तुम्हें निर्वाण[45] की प्राप्ति वज्रमार्ग से ही संभाव्य है। अब सत्य कहो, यहाँ इस योषराज्य में तुम्हारे आगमन का क्या प्रयाजन है? तिलोत्तमा ने भेदक दृष्टि से अनन्तवज्र को देखते हुए गम्भीर स्वर से कहा!

अनन्तवज्र को प्रतीत हो रहा था मानो तिलोत्तमा की तीक्ष्ण असि-अस्त्रिका से भी तीव्र दृष्टि उसके तनु-विग्रह का भेदन करती, बहत्तर सहस्त्र नाडियों को प्रकम्पान्दोलित करती अन्तर्तम क्षेत्र में प्रचण्ड निर्धात[46] का फूत्कार प्रसव कर रही है।

"देविधीमती[47], शोभा-शालिनी, आप धन्य हैं, आपका बुद्धि बल धन्य-धन्य है। मैं मुक्त हर्ष हृदय से आपकी पुण्य प्रभा का मंगलमय स्तवन करता हूँ। आपके अन्तःचक्षुओं ने जो देखा वही सत्य है। मैं संसार शर्म्मण्य[48] हेतु ही इस अमांगलिक कलेवर को धारण कर इस पुरी में प्रविष्ट हुआ हूँ।" अनन्तवज्र ने अपना नैष्छल्य प्रस्तुत किया।

–"अपनी हेतु सिद्धि का कथन करो।" महाराज्ञी की गौर प्रभा पर जातवेदा[49] ने आंशिक नर्तन किया।

–"मैं अनन्तवज्र हूँ देवि! सम्पूर्ण भरतवर्ष एतर्हिकाल[50] में, वज्राचार, वामाचार, कौलाचार और मिथुनाचार की कृष्णवर्त्मा[51] में दग्ध हो रहे हैं। श्रीपर्वत पर कापालिकों की जुगषित कपाल क्रीड़ाएं, अन्ध्र-मद्र देश में संभोग सहित कौणपों की पशु-नर बलि जैसे कलुषित कृत्यों के महोत्गाढ़[52] से जन-जन विकल है। सौराष्ट्र, मालव, मरूनिर्ग, काशीरट्ठ, पांचाल, गान्धार, काम्बोज सहित समस्त आर्यावर्त में पञ्चमकार के विषाक्त धूम से अम्बरी नक्षत्रों की द्युति भी मन्द हो चली है। इस सबके केन्द्र में महायोनि का आराधन ही है। और महायोनि का विग्रह इस देश में अवस्थित है। यहाँ महायोनि का मदार्चन समाप्त हो जाए तो स्वतः ही सर्व प्रान्तों में साधना के नाम पर सम्पन्न हो रहा व्यभिचार क्षीण होकर समाप्त हो जाएगा। अतः हे नारी रत्न योनि केन्द्र को समाप्त कर, आप वेदाचार में दीक्षित हों। यही मेरी हेतु सिद्धि है।"

–"हुँ ऽ....म...।" तिलोत्तमा के कण्ठ से वज्र हुंकार ध्वनन का निःसृरण

हुआ। लोलापा के अंगों से जैसे श्मशानी भस्म झरने लगी उसके सुहासित नयनों में आमर्षाग्नि की ज्वालाएं प्रज्ज्वलित हो उठी।

–"तो तू ब्राह्मण है, पाषण्ड का प्रणेता, मिथ्याचार का प्रपन्च-पंक, दिक् भ्रमित पुराण[53] का अश्रान्त[54] वाचक। तू दण्डनीय है, निर्वीय-नघ[55] है, अपकर्त्री[56] का प्रत्यक्ष-प्रसृत्वर[57] राग है। रे हत्भाग्य, तू विर्निजय[58] की सिद्धि का वांक्षी है? अथवा इस रूप में परेतराट[59] का भोज्याहार?" इसके पूर्व कि तिलोत्तमा अपनी प्रतिक्रिया का अभिव्यक्तन करे, लोलापा कुद्ध फणधरी के समान फुंकारी।

"यह मिथ्या-आरोपों का कलुषवर्षण है देवि, लोलापा। यद्यपि मैं ब्राह्मण नहीं, तदापि ब्रह्मणत्व के प्रति मैं सदासय हूँ। ब्राह्मण आध्यात्म का पूर्ण पोषक और परा विद्या का प्रस्तोता-प्रणेता है। वह निःस्पृह भाव से सत्वार्चन करता योनिज जीवों की क्षेम कामना करता हुआ, अपनी सुकृत स्वँम्भु प्रभा.से लोक शर्म्मण्य का हित साधन कर्ता है।" अनन्तवज्र ने प्रशान्त स्वर में प्रतिपाद किया। उसने अपने तर्क को पुनः स्वर दिया।-

"मैं ब्रह्मचर्य की पोषक वृत्ति का समर्थक हूँ-क्योंकि वीर्य ही अमोघ है, वीर्य ही ज्ञान-सम्मद है और वीर्य ही शिव।"

–"तब फिर तू रेतस् की घनान्द पुरी का वृजिन विरोध क्यों करता? सम्भवतः तुझे अपने प्रबल वीर्य स्तम्भन से अभिमान उपजा है, दर्प का दैन्य सागर उमड़ा है, अहंकार का अपकर्तृन, उत्पन्न हुआ है।" लोलापा के मुख पर घृणा ही रेखाएं स्पष्ट हुई।

अनन्तवज्र के अधरों पर स्मित नाचा। मुख पर दर्प का संसाद हुआ, वह गर्वोक्ति से बोला-"देवी, कामचारिणी, आप सुविज्ञ हैं। मैंने अपने इसी अप्रितम शस्त्र बल से इस नगर की अधिकांश निवासिनियों को अपना पक्षधर बनाया है। समारभ्य में यह पक्ष मात्र मेरे लक्ष्य का आधार है। अभी तक किसी कामिनी को मेरा उद्देश्य ज्ञात नहीं पर भविष्य में यौन-आनन्द प्राप्ति के लिए मेरी प्रत्येक आज्ञा का पालन करने के लिए ये सुर सुन्दरियां विवश होगी। मैं सहस्त्रों-सहस्त्र कामराजि से युक्त कामोद्वीप्त ललनाओं को अजस्त्र रूप से नित्य तुष्टि प्रदान करने में सक्षम-समर्थ हूँ।"

–"रे दर्प-विग्रह-अपने सामर्थ्य पर मित्थाभिमान न कर।" लोलापा ने विचित्र स्वर संघात किया।

–"तेरे दर्प का अवश्य खण्डन होगा।"

–"अगर यह सत्य हुआ, मेरा दृढ़रतम्भन इस नगर के किसी भी कुण्ड में संपातित होता है तो......तो......मैं आपका अनुगामी होऊँगा, इस नगर का तत्क्षण परित्याग कर अन्यत्र चला जाऊंगा।" अनन्तवज्र ने दृढ़ स्वर में घोष किया।

"सायं की नित्यारत्री का समय समीप है। आचार्या। ये परिचर्चाएं, अब सुकृत के पश्चात" महाराज्ञी तिलोत्तमा ने वार्ता को विरामित करने का संकेत किया और उच्चासन से उठी खड़ी हुईं।

–"दैव्या क्या मुझ अकिंचन को आरात्रि–उत्सव में सम्मिलत होने का सौभाग्य प्राप्त होगा?"

अनन्तवज्र ने सविनय निवेदन अर्पित किया।

"अवश्य। मेरी ईक्षणा[60] काल के गोप्यावरण का सम्भेद करती, भविष्य में सम्भाव्य शुभ घटन का प्रत्यक्ष दर्शन कर रही है। तुम्हारा छद्मधारित आगमन, फिर महाचिन्हा के दर्शन की वांक्षा ही शुभाधार का सर्गारम्भ है। यह सुनिश्चित है कि अब तुम्हारा पराभव होगा ही।" महाराज्ञी ने उसे अनुमति प्रदान करते हुए गगन गम्भीर गिरा का उच्चारण किया।

इस नगरी में प्रथम वार अनन्तवज्र के हृदय में कम्प उर्मियां स्फूर्त हुईं, एक अज्ञात–अकूत भय ने अन्तर्क्षेत्रे में आन्दोलन का प्रसवन् किया। उसे गहनानुभूति हुई जैसे ऐरावती[61] के महाद्युत वज्र–निर्घोष से सचराचर ब्रह्माण्य के दिक्पतियों में महोत्कम्प उत्पन्न हो रहा हो, नभाच्छादित मेघमालाओं के धारा–सम्पात वारि वर्षण से विश्व[62] भरा जलमग्न होने से अत्यातुर हो उठी हो, निखिल निगम वारिद भण्डारण में लय–लीन हो रहा हो अथवा संवर्त[63] काल का महासत्य आ उपस्थित हुआ हो।

उसका मस्तिष्क व्योम कक्ष से महावात का धूर्मण चक्र उठा। निर्घात की फूत्कारी वात चक्रणा से उसका मानस संवृत हो उठा, प्रशस्त ललाट श्वेद जात प्रषत् वारि से उत्क्लेदित हो गया।

–"रे ओजस्वित, कन्दर्प शकल[64], तू हत्प्रभ् क्यों हो गया। क्या दर्प दंश के फलरूप ही तेरी पुष्धन्वन काय श्वेदस्त्रवा हो रही है?" लोलापा ने ईक्षण् कटाक्ष से उसकी अवस्था को निहार कर व्यंग गिरा का उच्चारण किया।

—"नहीं कामाचार्या मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ और सजग हूँ।" अनंतवज्र अतिरेक पर अदृश्य धूर्मण चक्र से बाहर निकला। फिर महाराज्ञी का संकेत पाकर उनका अनुकरण करता चल दिया।

मन्दिर के आलिबद्ध[65] दीपाधारों पर आलोक मल्लिकाओं की जगर-मगर करती लेखाओं[66] के द्युति-दीपन मे जगत्प्रसुः माँ का नयनाविभोर कामाध्वी[67]-विग्रह के श्रेयःदर्शन कर अनंतवज्र भाव विभोर हो गया। उसकी सकल लोम राजि 'सकला' के काम वर्त्य[68] पंथ का सामीप्य पा प्रहर्षित हो उठी, नेत्र कृतकृत्य और मन प्रशान्ति की निःश्रेणी[69] पर आरोहण कर महायोनि की सृति[70] से चलता महागह्वर में लीन होने को आतुर हो उठा, महा-आनन्द से नेत्र मुंदने लगे।

स्तवन प्रारम्भ हुआ, कोकिलकण्ठी गयिकाओं ने आरात्रि गान किया। वह निश्चल, निर्वाक स्थिर प्रतिमा के समान जड़वत रहा। लोलापा पुनः पुनः अनंतवज्र की 'अवस्था' को लखती और उसके अधरों पर स्मित आ खेलता, जबकि किशोरी कामाक्षी उसे पुनि-पुनि चकित भाव से देखती और तिलोत्तमा अपांगवीक्षण दृष्टि से।

घडी भर की प्रहरिका कब व्यतीत हो भूत संज्ञेय हो गई, अनंतवज्र अनविज्ञ ही रहा। अब उसके नेत्र खुले तो श्रद्धा का अपरम्पार था, अश्रुओं की पुण्य वारि वीथी थी, निष्कलुषता का शुभ्र नीर था।

—"पूज्यपाद प्रसूता, अब मैं स्वकक्ष को प्रस्थान करूं?" अनंतवज्र के कर्ण पटलों पर किसी के वाणी रस ने अभिमर्षण किया। यह वाग्स्वर है अथवा संगीत का मधुमद ध्वनन् या कृष्ण-वेणु से निःसृरित संकर्षित नाद का नदन। स्वर निःसृरिता की नाभि मण्डल से उठ रहे स्वर में अनौद्धत्य का अक्षुण्ण विलास था। योगी के कण्ठ से ही तादृश्य स्वर का निःसारण होता है।

—"कौन है यह स्वर साम्राज्ञी?" अनंतवज्र के मन में जिज्ञासा आरोपित हुई। दृष्टि ने स्वर शुभा का संधान किया। जैसे ही उसके अक्षि-आलोक में कामाक्षी का स्वर्ण लेपित काय-कुंज अक्षिगत हुआ वह पुनः आनन्दोर्मि के आप्लावन से शुक्ल मनः होने लगा, उसकी प्रगाढ़ प्रज्ञा अतिभाव सिन्धु के गाम्भीर्य में डूबने लगी। पर उसने स्वयं की चेतना को उस आनन्द सिन्धु से बाहर निकाला।

वह साक्षात् हिमवान सुता, सुलक्षणा उमा का किशोर विग्रह था अथवा

कामाख्या का ही कैशोर्य्य धन रूप? या निखिल विश्व से निचोड़ा गया शुभ सौन्दर्य का प्रलम्भ-प्रकर्ष? कामाक्षी के सुललित गात्र से अनंतवज्र की प्रेक्षा तृप्त ही नहीं हो पा रही थी। अकस्मात् उसके कर युगल नमस्य मुद्रा में संयुक्त हुए और किशोर प्रयाग की तीर्थ विग्रहवती के चरण पद्मों में वह उसका पौरूष और पुरूषार्थ उत्सर्गित हो उठे!

–"तू कामाख्या का ही चपल अवतरण है, उसीकी उर्मिशिखा है, उसी महाशक्ति का श्वसन स्पंदन है। महामाया की अंशभूता माँ-ईश्वरी मेरे अजस्र वंदन को स्वीकार कर मेरे अन्तःजगत में भी प्रकट हो।" अनंतवज्र ने स्तवन करते हुए याचना की!

–"यह मेरी स्वजात पुत्री है अनंतवज्र।" तिलोत्तमा ने कामाक्षी का संक्षिप्त परिचय दिया।

–"यह किसी की स्वजाता कन्या नहीं, यह तो जगत्प्रसूः माँ की नयनाविभोर छवि है देवि! उस रम्य कपर्दनी का रस है देवि जो नारी सर्ग में प्रकट हुआ है।" अनंतवज्र ने भावविभोर होकर अपने अन्तर्निर्हित आलोक को स्वर में प्रबद्ध कर बाह्य जगत में वाणी रूप से प्रकट किया।

कुछ क्षणों तक अनंतवज्र मौन धारण किए रहा मन्दिर में स्तब्धाच्छादन रहा। इसी अभ्यन्तर काल में तिलोत्तमा ने कामाक्षी को अक्षि संकेत से उसके निर्गमन का निर्देश दिया फलतः वह शनैस्चरण गति से मन्दिर से निर्गमित हो गई।

–"अनंतवज्र क्या अब भी तुम पूर्वाग्रहों से संग्रस्त हो?" तिलोत्तमा की मधुर कण्ठी ध्वनि ने मन्दिर के स्तब्ध आवारित कवच का भेदन किया!

–"पूर्वाग्रह नहीं महादेवी! वह सत्य सिद्धांत है, चिरामृत सनातन है। जो पर्यूषोपकरण वाह्य जगत में तड़ित है, उस तडड्ल्लता को अन्तःजगत में प्रकट करना है, उसी दिव्य-वह्नि की भृशशिखा के ज्वालोत्तापन से कायस्थ रिपु दल भस्म होगा, प्रशान्ति की चिरस्थापना होगी, कुल कमलनी कुण्डलनी प्रहर्षित होकर आत्मसिद्धि के प्रियंकाभ्र में नित्यता प्रदान करेगी।" अनंतवज्र ने कामराजि विग्रह को निर्निमेष निहारते हुए उत्तर दिया।

–"दुराग्रह व्यर्थ है पुत्र! जा यहाँ से प्रस्थान कर जा। मैं तुझे स्वतन्त्र करती हूँ। अपने वज्रयान पथ पर पुनः एकाग्रचित्त से स्थापित हो, यजन कर। वही तेरा श्रेयस् है, वही तेरा करणीय।" तिलोत्तमा के कण्ठ स्वर में आर्द्रता थी जिसे श्रवण

कर लोलापा चौकीं, अविश्वास की अनेक रेखाओं का सघन संगठन उसके मुख पर छाने लगा। वह आश्चर्य सिन्धु के अतिशाय में डूब रही थी। पुरूष से पुत्र भाव? पुत्र! जिसका प्रसव इस नारी राज्य में वर्जित है, निषेध है। यहाँ गर्भधारण हेतु अन्यत्र देश से पुरूष आहरित कर लाए जाते हैं, वह भी ऐसे पुरूप, जो अमोघ वीर्यवान होते हैं, युवावस्था के प्रखर सूर्य होते हैं। ऐसे सूर्यवान पुरूपों की आयु भी इस देश में दस वर्ष से अधिक नही होती क्योंकि देवी योनि उसका अवरित भोग भोगकर उसे अस्थि पंजर में परिवर्तित कर देती है और विविध रोगों से ग्रस्त वह यौवन-भानु असमय ही अस्त हो निर्देही बन जाता है।

हटात् उसका चिन्तन भंग हुआ। अनंतवज्र के मुख से हास्य फूट पड़ा। इस हास्य में उसकी विजय का आभास था, उसके अंह की साकारता थी। हँसते-हँसते ही वह विजित-दर्पवरित वाणी से बोला-

-"कामनगरी की सर्वोच्च नागरिका। मेरे 'स्तंभन' से भय-विजड़ित हो, मुझे पुरूष से पुत्र रूप में मान्यता देकर भयविमुक्त हो रही है। इसे क्या मैं अपनी विर्निजय मान लूँ?"

-"हत्भाग्य, मूर्ख, अहंकारी। मैं अस्पर्शन से तेरे कुल गात्र में संचरित वीर्य ही नहीं रक्त भी तेरी प्रौढ़ विशिखा से निष्कासित करने में सक्षम हूँ। रे मूड़ खल दम्भी, तूने मेरे काम तेजस का इक्षत्दर्शन किया ही कब है।" तिलोत्तमा के सौम्य नेत्रों में अमर्ष का दावानल दहका। एक क्षण उसने संवर्तमयी चक्षुओं से अनंतवज्र पर प्रक्षेप किया फिर लोलापा की दृष्टि पात कर कहा-

-"लोलापा इस मिथ्याभिमानी, दम्भी पुरूष का मान भंग कर पराजय प्रदान कर।" तिलोत्तमा आदेश देकर सत्वर गति से चली गई। शेष रहे लोलापा और अनंतवज्र। लोलापा के स्नैग्ध में अमर्षोत्तम का तारल्य था और अनंतवज्र के मन में लक्ष्य साधन का उल्लास।

-"चलो अनंत आज मैं सुचारूरता से तुम्हारा साक्षात कराऊं-नारी का लावण्यनिर्ग और उसके मदिर मन्दिर में आवासित देवता का ज्योत्स्न रूप-दर्शन कर तेरा इह जन्म धन्य हो जायेगा।" लोलापा की स्निग्ध प्रावरित मुखच्छवि पर लावण्य का अधिष्ठात्र देवता लास्य करने लगा।

-"मैं तत्पर हूँ देवि, क्योंकि मैं ही इस मन्दिर का प्रतिष्ठत देव हूँ-मुझमें ही वह ज्योत्स्न रूप विग्रह समाहित है।" अनंतवज्र प्रसन्नता से मुखर हुआ।

–"यह सत्य है वज्रधर, पर तुम्हीं ने उस देवाधिदेव का साक्षात् नहीं किया क्योंकि तुम्हारा आचार उसे शव मानता है और हमारे आचारण में वह शिव ही है, जो सर्व–सर्वत्र विराजित है। आज मैं तुम्हारे शव पर मृदु–आघात कर उसका पुर्नोत्थान करूंगी, साधूंगी। और तुम अपने जीवन में प्रथम वार अपने ही उस पौरूष से साक्षात् कर सकोगे जिसेस तुम पराङ्मुख होकर मार्गभ्रष्ट हो गए हो।"

अनंतवज्र मौन रहा, कुछ क्षणों तक लोलापा भी मौन रही, उसके मुख पर प्रशान्ति थी। कुछ समय पश्चात वह मन्दिर से निकल कर अन्य कक्ष में पहुंचे जहाँ सव्रीड़ा अपनी अनुचरिणयों सहित प्रतीक्षारत थी।

अनंतवज्र को अपने समीप उपस्थित देख सव्रीड़ा के मुख पर प्रसन्नता का रवि आलोक–आच्छादन हो गया। जैसे खिन्न कुमुदनी राकापति के धौत दर्शन से उत्फुिल्लित हो उठी हो।

अनंतवज्र निर्धारित आसन पर आसीन हो गया। लोलापा ने सव्रीड़ा को सह गमन का संकेत दिया। वे दोनों एक एकान्त कक्ष में पहुंची! लोलापा ने अनंतवज्र का नारी राज्य में आगमन का लक्ष्य–उद्देश्य बताते हुए सव्रीड़ा पर उसकी सत्यता प्रकट कर दी। सव्रीड़ा सर्व प्रसंग को श्रवण कर, उसके गम्भीर्य को ग्राह्य कर चकित तो हुई ही, अपराधबोध से संग्रस्त भी हो गई। कुछ समय तक उन्होंने कक्ष में विचार–विमर्श किया। अपने अपराध–बोध और राजदण्ड से भयभीत होकर सव्रीड़ा ने लोलापा की प्रत्येक बात को स्वीकार कर लिया। उसने सहमति भी प्रकट की कि वह सार्वजनिक स्तर पर अनंतवज्र की भर्त्सना भी करेगी।

मंत्रणाकक्ष से सव्रीड़ा पुनः अनंतवज्र के कक्ष में आई, पर जैसे उसे देख कर अपना निर्णय उसे स्खलित सा प्रतीत हुआ। मन ने कहा वह राजेश्वरी और लोलापा की नीति का आखेट बन चुकी है। लोलापा और राज्ञी सम्मिलत रूप से अनंतवज्र को भोग लेने की इच्छुक है, इसी कारण उस पर आरोप–प्रत्यारोपों का निरूपण कर अनंतवज्र को उससे बलात् छीना जा रहा है। उसके मन में विद्रोह का किकट दानव जन्म लेने लगा। वह अपनी चरण सहचारियों के साथ राजभवन से विदा ले अपने निवासालय की ओर प्रस्थान कर गई। पुरी के अध्व, पण्यवीथिकाएं, निषद्यादि पर उत्सुकता से प्रतीक्षा करती–नारी वृन्दों ने देखा, सव्रीड़ा अपनी सखि–सहचरियों के साथ पुरूषहीन होकर लौट रही है।

1. लेप करना
2. सुवासित
3. सादगी पूर्ण पर मनोहर
4. पवित्र किया हुआ, स्वच्छ किया हुआ
5. अधिकाधिक
6. पृथ्वी
7. अधिक (बहुत मात्रा में)
8. आकार
9. पर्दा, चिक
10. ऐसा पुरूष जो धन-स्वर्ण मुद्राएं आदि लेकर स्त्रियों को यौन तुष्टि देता हो
11. धैर्य
12. बुद्धि की चमक (स्त्रीलिंग)
13. लहर
14. स्वच्छ, पवित्र या शुभ्र-आवरित
15. हर्ष
16. बुद्धि का आन्तरिक आकाश
17. विजली
18. गडगडाहट
19. बुद्धि
20. कल्याणकारी
21. घनघोर मूसलाधार वर्षा
22. बुद्धि
23. जलकण
24. सांसारिक
25. उत्तम शोभा
26. यथार्थ ज्ञान
27. मोक्ष देने वाली
28. जिससे अमृत बूंद-बूंद कर टपके
29. बादलों की छटा
30. स्त्रियों की ईश्वरी
31. निर्मत्सरता, दया, क्षमा, सदाचरण, शौच, स्पृहा, औदार्य, अथक श्रम तथा शूरता। इनसे विभूषित पुरूष को 'त्रित्रिक' कहा जाता है।
32. जिस पुरूष के वृष्ण, भुजाएं सुलम्बि हो वह 'त्रिप्रलम्ब' का संज्ञेय है।
33. वक्षःस्थल, कक्ष, नख, नासिका, मुख एवं कृकाटिका-(छह उन्नत अंग)
34. लाल
35. प्रशंसा
36. यौवन श्रृंगार से श्रृंगारित स्त्री
37. कल्याण
38. विद्युत (जो आकाश मे तडित होती है
39. आकाशी विद्युत
40. शुभ्र (सफेद)
41. श्वेत
42. आकाशी विद्युत
43. अग्निज्वला

44. कामाग्नि
45. मोक्ष
46. आंधी-तूफा
47. बुद्धिमती
48. कल्याण
49. अग्नि
50. इसकाल (वर्तमान काल)
51. अग्नि
52. अधिकाधिक मात्रा
53 सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित। इन पांच वस्तुओं के समायोजन को पुराण कहा जाता है।
54. निरन्तर
55. कापुरूष पापी
56. बुरा कर्म करने वाला
57. चारो ओर फैला हुआ
58. विजय
59. दृष्टि
60. आकाशी विद्युत
61. पृथ्वी
62. प्रलय
63. टुकडा खण्ड (यहां आशय अंश से)
64. कतार बद्ध
65. कतारें
66. (काम+अव्थी) काम-मार्ग (यहां आशय योनि विग्रह से)
67. योनि उपासकों का पंथ
68. सीढ़ी, नसेनी
69. पथ

शृंगार से सुसज्जित, भूरि प्रभा से मण्डित, रोचिष् नवनीत की स्निग्धधरा, रूप जाह्नवी की पीयूषी वारि धारा, आनन्द, व्रीड़ा और स्मित की शोभातीर्थ लोलापा गज-गामिनी गति से पद संचार करती काम कक्ष में प्रविष्ट हुई। अनंतवज्र उस कल्पकारी[1] रूप को चकित-थकित दृगों से देखता रह गया। उसने कुछ समय पूर्व ही लोलापा को देखा था, उससे संवाद चर्या की थी, पर उस काल लोलापा का यह आनन्द तरंगन रूप नहीं था, उस काल उसके सर्वांगों में मनोरमता का मृसृण दृष्टि गत नहीं होता था।

यौवन के लावण प्रियंकर से परिश्रृत लोलापा के मद वसित काय देश में अद्भुत सुगन्ध का प्राचूर्य था। दीप्ति भाल पट्ट के भूमध्य में सर्जु तिलक, अक्षिकोरकों में ललित अंजन राजि, शंक नासिका मं दामिनी द्युति सा दमकता वलय भूषण, कानों के ताटंकाभूषणों में क्षण प्रभा का स्थायित्व, पीनोन्नति को प्राप्त संहतस्तन[2], क्षीण कटि प्रदेश और स्थूल वलयित नितम्बदेश की स्वामिनी लोलापा के गजशुण्डाकार कदली स्तम्भ की भांति स्निग्ध, घन-जंघाओं पर मानो नवनीत का नूतन आलेपन था।

युवावस्था के सुदृड़ आलिंगन से युक्त अपनी ज्योक् मण्डित काया को लोलापा ने आगुल्फाच्छादित पारदर्शी, स्वर्ण रंगी चीवर से छादित कर रखा था जिससे उसके नयन मनोहर, कामालोकी चिक्कण, रम्य वपुः से निःसृरित परिस्रुत किरणों की मदमयी घृष्णिप्रभा बलात-बलातत: बाह्य देश में निर्गित हो एक नवीन मसृणमय द्योलोक[3] का सर्ज रच रही थी।

"तू त्रिविष्टप[4] लोक-सुन्दरी के सहवास जनित प्रसार का प्रधार[5] नीर है, तू हिरण्यलोक की श्री सचि की देह के कुसम का सुरभित् पराग है अथवा अर्णदोद्भवा के स्फुट पद्म दल से प्रक्षरित रज का शोणार्द्र[6] सत है।" स्मित दीप्ति के सम्मोहक-अस्त्र को अपने शोण-अधरोष्ठों की रेखाओं पर सजाते हुए लोलापा का मद-स्वर मुखर हुआ। जैसे ही उसके मुख-निसृरित वाक्य का अंतिम अक्षर समाप्त हुआ, लोलापा ने स्वदेह पर आवरित चीवराच्छादन हटा दिया।

हटात कक्ष के प्रदीप ज्योतिहीन होकर प्रशान्त हो गए। कक्ष में घनचिक्क तामस का स्याह कलेवर छादित होकर लास्य रचाने लगा। यही नहीं प्राणतोषी वायु भी विरल होने लगी। अनंतवज्र ने कुछ बोलना ही चाहा था कि....

कक्ष के मध्य में.....जैसे प्रत्यूष की आशु[7]-शुक्षणि शोभा ही प्राची से उदित हुई थी, भास्कर का अहर्मुख ही उद्दीपित हो रहा था, अंशुपति के एकादश रश्मियों से गुंफित, ग्रंथित रति के सौषुम रूप का ही प्रकाट्य हुआ था। निविड अन्धकार में लोलापा का मन्द स्माय से परिपूर्ण स्निग्ध कलेवर की दीप्ति कुछ इसी प्रकार की थी।

क्षण-प्रतिक्षण लोलापा की आरक्त वपु छवि परिवर्तित हो रही थी। आश्चर्य तो यह कि कक्ष की प्रत्येक वस्तु (लोलापा को छोड़कर) घोर तामसार्णव में निमग्न थी। चमक रही थी तो लोलापा की शम्पा सादृश्य यौवन दीप्ति से आलेपित घनाश्लिष्ट सौन्दर्य राशि।

यौवन कादम्बरी से सिक्त लोलापा की दिव्य देहयष्टि पर अब स्वर्ण का तारल्य संलिप्त हुआ। समग्र वपुस हिरण्यत्विट से विलसत् हो उठा। अनंतवज्र देख रहा था, कामप्रिया रति सी रूपमती लोलापा की अंगुष्ठ प्रमाणी गम्भीर नाभि कुहर के आसपास सप्तवर्णी आलोक की कल्लोलाएं वलयाकार में नृत्यरास्य कर रही है। नाभि क्षेत्र की वलयित उर्मिलाएं वृद्धि को प्राप्त हुई और सत्यांतरिक्ष में घूर्मण करती उसके शिरोदेश पर आ स्थित हुई।[8]

अनंतवज्र नाभि प्रसूतिज सप्तरंगी तरंगों के चपलालोक से चमक उठा। इसके पूर्व कि वह करणीय का विचार करे, उन चटुल उल्लोलाओं ने उसे अपने चन्द्रिकास्त्र पाश में प्रबद्ध किया और निमिष काल के पूवार्द्ध में ही उसके देह प्रदेश में प्रविष्ट हो गई। अनंतवज्र के समस्त गात्र में तुहिन तरंगे जन्म लेने लगी-लोमरन्ध्रों में तनुरूह प्रहर्षित हुई, देह ने अतिरेक-उद्वेग छा गया। वह आपादमस्त आनंदप्रदायी तुषार के सुषीम सुख सागर में डूबने लगा। उसे तुहिनबद्ध-अवस्था में देख लोलापा मुक्त कण्ठ से हँस उठी। उसके कल-कल निनादित हास्य वर्षण से कक्ष की प्रत्येक वस्तु उत्फुल्लित हो उठी। लोलापा ने दौड़कर अपनी कंचनांगी काया के मृदु विस्तार में अनंतवज्र के पौरूष को समेट लिया। अनंतवज्र में प्रसुप्त पुरूष अमर्षदग्ध फणिधर के समान त्वरा से उत्थापित हो उठा, देह सकलनिर्ग आलोक से परिपूर्ण हो गया।

अनंतवज्र चकित हो उठा। निश्चिय ही यह वह स्थान (कक्ष) नहीं। यह तो लताप्रतानाच्छादत मण्डप है। वह और लोलापा बहुविधि सुरभित पुष्पों के मसृणास्तरण पर स्थित थे। पृथ्विगध कुसुम सौरभ से उसके मन-प्राण-मह-मह करने लगे। मण्डप के बाह्य देश में रसोद्भूत[9] वानस्पत्य और वनस्पति[10] की

उच्च-ऊर्ध्व शिखाओं की शीर्षो सहित समस्त गुल्मों पर जैवात्रिक की चपल-चन्द्रिका अपने अधरामृत से उन्हें सिक्त कर रही थी, प्रालेय का रोचस्विन द्रीप वृक्ष वदनों को आलिंगत करता आनंद संसृति में चरण संचार कर रहा था।

—"देवी लोला......। आश्चर्य है। यह कौन सा रमण-उद्यान है? हम इस कक्ष से यहाँ अनाहूत कैसे आ गए?" अनंतवज्र जैसे स्वयं को त्रिदश लोक में उपस्थित मान रहा था।

—"प्रिय.....अनंत.....। यह व्यर्थालाप का समय नहीं।" मैं महारानी तिलोत्तमा से दूर...... उसके कठर-अनुशासन से अतीत हो, तुम्हारे काय निर्ग में समाहित होने की वांक्षी हूँ। मैं सुरताकांक्षिणी, कामरस-उत्क्लेदा इन वर्तमानिक क्षणों तक अक्षत योनि कुमारिका हूँ-अनंत.......। जो मीन[11]-केतन के प्रत्यग्र[12] रूप, हे अभीक[13] रत्न मेरा तमस्य समर्पण स्वीकार कर मुझे चरम तुष्टि के उदन्वान्[14] में सकल निमज्जित कर दो।" लोलापा के पुण्डरीक स्फुट नेत्रों में रति का स्मित क्रीड़ित हुआ। उसने अतिरेक भाव से आविष्ट हो अनंतवज्र की ग्रीवा को अपनी मृणाल भुज वल्लरी के सर से सजा दिया।

—"कामिनी इस देश में स्त्रियां विपरीत रति आसक्त हैं। वही तुम्हें भी शुभ है। जो शुभ श्रेयस् है वही करणीय होता है देवी, अतः अपने देश परम्परा का पालन कर मुझे परास्त करो।" अनंतवज्र ने लोलापा की कंचन-कमनीय अनावृत देहयष्टि की मृदुलता को स्वयं में समेट कर उत्फुल्ल स्वर में कहा।

विचित्र पञ्चसर संग्राम का समारम्भ्य हुआ। मिथुन याग के प्रथम चरण में ही लोलापा ने अपनी 'वज्र' माया का अन्तर्मुख खोल दिया। वह विविध रतिबन्धों का उन्मुक्त प्रदर्शन करती अनंतवज्र की अनंगित शुचि सिखा को बहुविधि से विपुल करने लगी।

अनंतवज्र उसकी अभिमर्शन क्षमता पर चकित था। उसने अपना योग बल स्मरण किया। उसने नृतु[15] समय में प्राण को साधित किया और अतिरूक[16] रमणी की बुलि[17] प्राचीर के कृशानु[18] प्रावरित कुण्ड मध्य से प्राण को ऊर्ध्व दिशा में गति देने का प्रयास किया, पर.........ऐसा संभव नहीं हो सका। मुक्त अभिसारिका ने अपनी संकुचित सरणी[19] में-अनंत-इन्द्रिय ही नही अनंतवज्र की योग चेतना को भी जकड़ लिया। अनंतवज्र के वैश्वानर प्राण लोलापा की पद्म सृति स्थित गुहा मन्दिर के अन्तमर्भाग में प्रकर्षित हुए। उसी क्षण कामाचारिणी ने अपनी एकपदी[20] का द्वार-अवरूद्ध किया पर अनंतवज्र की वैश्वानरी ऊर्जा उन रूद्ध

अवरों[21] को अपनी मतिरिश्रम[22] शक्ति से धकेलता ऊर्ध्वगामी हो गया। अनंतवज्र के विजय क्षण प्रारम्भ हो गए और लोलापा.........?

वह.........अनंतवज्र के देह पर आरूढ, कामप्रवर्द्धनी लोलापा का श्वसन प्रवाह तीव्र होने लगा, उसे पराभव की प्रतीति होने लगी। लोलापा का किञ्जल्क[23] रस से लेपित आनन्[24] मिदिरप्राचूर्य[25] से प्रोक्त हो उठा। अनंतवज्र की प्राण गति निरन्तर ऊर्ध्व चक्रों की दिशा में चेतना की निःश्रेणी सरणी आश्रय से सत्वरता को प्राप्त हो दौड़ रही थी।

लोलापा की 'पद्मा[26]' क्षिति में वज्र वर्म्न् का बीज स्फुरित हुआ-वही वज्र निर्घोष उसके कण्ठ द्वार से 'हुं'कार रूप में अनुगूंज उत्पन्न करता वाह्य क्षेत्र में ही नही अनंतवज्र के अन्तर्देह में भी आघात करता विचरने लगा। उसी आघात से आहत हो अनंतवज्र के प्राण अपनी स्वभाविक गति का विस्मरण कर मार्ग भ्रष्ट हो गए।

सुखाश्रयी 'प्रज्ञा[27]' ने अपनी साधन युति से स्वयं में सन्निहत 'ललना[28]' और 'रसना[29]' का संवर्द्धन किया फिर रसना को पूर्ण पोषित कर, स्वयं ललना पर आरूढ़ हो रसना का सारभूत तेजस अपने 'उपाय[30]' क्षेत्र में आयत्त कर दिया जिसके परिणाम स्वरूप उपाय (नर) में भीषण ऊष्मा का चक्रवाल उत्पन्न हो गया। अनंतवज्र के देह का तारल्य लोलापा अपने पद्म[31] नगर की अधोदिशा में बलात् कर्षित करने लगी। उसकी रदस्पक्तियां दृढ़ता से एक-द्वितीय पर जमी हुई थी। अनंतवज्र का प्राण मरुत अधोलोक में क्षिप्त गति से उतरा। शुभ्र वज्रोदक को नाडियों से खींचकर वज्र नालिका के द्वार पर ला ठेल दिया। शोणित का सार रूप धवल शुक्र हरहरा कर 'पद्म पुरी' के पाटल कुण्ड में जा गिरा। अनंतवज्र के कण्ठ से हाहाकारी चीत्कार उठा और वह निर्जीव शव के समान पाण्डुरप्रभा से निःस्तेज हो पर्यंक पर शिथिल गात्र से गिर गया।

लोलापा की मुखच्छवि पर विजयोल्लास की स्फूर्ज्यजन्य शम्पा राजि चंचल-आलोक दीप्त हुआ। उसके सिक्त शोणाधरों पर स्मित की चारु राजि चपला की भांति चमक उठी।

-"'उपाय' के स्वयंवृत स्वरूप अनंतवज्र......। तेरी कामकला स्तुत्य है, श्लाघ्य है। तुझ सा पुरूष प्राप्त कर कोई भी प्रज्ञा अपनी 'कैवल्य' साधना के लक्ष्य को प्राप्त कर सकती है। तू धन्य है, तू धन्यपात्र है, तू धन्यगात्र है। तेरे पौरूष को मेरा शत-शत प्रणाम। मेरी समवस्यका, इस देश की केन्द्र, मेरी

स्वामिनी महाराज्ञी के वचन पालन में मैंने विवशतावश तेरा वज्रोदक पात किया।" लोलापा का गुह्य गम्भीर स्वर गूंजा।

अनंतवज्र निर्वाक था, उसके अक्षिगोलक स्थिर थे और दृष्टि सून्य सत्ता के विस्तीर्णाभ्र बिन्दु पर टंगी थी। लोलापा उसे देखती रही, कुछ क्षणों तक मौन का एकक्षत्र्य रहा। लोलापा का अन्तर्मन उसकी पीड़ा से विधने लगा। क्या उसने ऐसा कर अशोभन किया? मन ने उत्तर दिया–"नहीं यह अशोभन नहीं, राज्यहित में सुकृत्य सम्पादन हुआ है, अनंतवज्र का गर्व मोचन हुआ है, राष्ट्र गौरव की रक्षा हुई है। अनंतवज्र–कुविचारक है, वह जगत से मातृसत्तात्मक समाज का विनाश वांक्षी है, कामाख्या अर्चन को विश्वनैखिल्य से समाप्त करने हेतु संकल्पित है। वह राज्य में परस्पर वैचार–वैमनस्य उत्पन्न कर विद्रोह का हेतु बनने, छल–छद्म से राज्य में प्रविष्ट हुआ है। वह अपराधी है इसलिए दण्ड पात्र है जिसे दण्ड पात्र का दम्भ भंग कर उसने पुण्य कृत कार्य किया है, साथ ही राजाज्ञा का पूर्ण पालन कर अपना धर्म और कर्त्तव्य का निर्वहन किया है।

लोलापा ने अपने वस्त्र धारण किए फिर गमनोद्यत हुई। गमन के पूर्व उसने चित्रलिखे अनंतवज्र को पुनः सम्बोधित किया–

–"प्रिय वज्र......(शुभ रात्रि, मैं गमनातुरी हूँ। मुझे खेद है.......।"

लोलापा के वाक्य पूर्ण होने के पूर्व ही अनंतवज्र व्यथित स्वर में बोला–

–"देवी, शून्य की प्रतिनिधि प्रज्ञा! उस संपरिष्वक्त[32]–अवस्था में मेरी अवधूती[33] सुखाश्रयी का उन्मेषित जागरण क्यों नहीं किया? 'ए[34]' और 'वं[35]' दोनों का युगनद्ध रूप ही तो मुक्ति का आधार है देवी। मुझे वज्रसत्व की सिद्धि से क्यों हीन किया?"

–"वज्र.......तूने स्वयं इस मार्ग का परित्याग किया है, तू व्यथित न हो। महामुद्रा अवश्य मुझ पर करूणा का पीयूष वर्षण करेगी। एतर्हि[35] काल में यही उचित था।" लोलापा ने अत्यन्त स्नेह से आर्द्र होकर अनंतवज्र का सिर अपने वक्ष पर रख उसके मेचक केशों पर हस्त चालन किया।

–"देवी.....! मेरी संकलित तपर्स्या खण्डित हो गई।" अनंतवज्र के वाष्पित कण्ठ से सआर्द्र स्वर निकला। उसने नेत्रों से अश्रुवारि पंक्तिबद्ध हो स्त्रिवत हुई। लोलापा की स्तन अधिपत्यका[36] उसकी अश्रु झरण से आप्त–सार्द्र हो उठी!

–"धैर्य वज्र......धैर्य.......।" लोलापा का कण्ठ भी वाष्पित हुआ। इसके पूर्व

कि अनंतवज्र का पीडा अब्धि[37] उसे स्वयं में आत्मसात करे वह अनंतवज्र से पृथक हो कक्ष से द्रुत गति से निकल गई।

अनंतवज्र पर स्पष्ट हो गया था–वह मदन–मनोहर पुष्प–उद्यान, वह पुष्पाच्छादित मण्डप सब लोलापा की माया संरचना थी। सत्य है तो यह कक्ष, जिसमें वह अभी भी अपनी वेदना की सप्तार्चिस[38] ज्वाला मे दग्ध हो रहा है। वह यह भी जान गया कि लोलापा का रतिपूर्व समर्पण, महाराज्ञी तिलोत्तमा के प्रति उसके कटु वाक्य भी इसी माया के धनुर्सर थे।

वह शिथिल गात्र और निःसंग मन से निष्चेष्ट–अवस्था में लेटा रहा। अतीत के क्षण उसकी स्मृति धरा पर उदय होने लगे। उसके कौलाचारी श्री गुरुदेव का ज्ञानालोकी स्वरूप उसके नेत्रों के समक्ष उद्‌भाषित हो उठा। ज्ञान के स्वयं संवृत और पुण्योरपस् श्रीमतुरोवर्य उससे कह रहे थे–

–"वत्स अनंतवज्र क्षुब्ध न हो। यह अवस्था तेरे दुराग्रह का कारणभूत ही है। और अब............।" जैसे वह उसके भविष्य का दर्शन करा रहे थे। वह सुनता रहा, गुनता रहा। जैसे भविष्य उसकी चेतना में मूर्त हो गया।

–"अब अधिक समय शेष नहीं रहा। वह कान्तिहीन आनन से अपने गुरुदेव के सम्मुख नहीं उपस्थित नहीं हो सकेगा। जैसे उसने निर्णय लिया। वह तत्क्षण पर्यंक परित्याग कर उठा और द्वार पर उपस्थित सजग प्रहरी को सम्बोधित कर स्वरोचार किया।

–"देवी! एतर्हि काल में महाराज्ञी की सेवा में उपस्थिति का प्रार्थी हूँ।"

–"ऐसा निशा काल में संभव नही बन्धक।" उससे द्वार स्थित प्रहरी स्त्री ने स्पष्ट कहा।

–"तो फिर कामाचार्या लोलापा की सेवा में ही मुझे उपस्थित कर दें। मैं अद्य रात्रि के शेष काल में तुम्हारी मनोइच्छा को पूर्ण करने का प्रयास करूंगा।" अनंतवज्र ने युक्ति का आश्रय लिया।

क्षिपण्यपूर्णा सुन्दरी युवती को जैसे वरदान मिला हो। अनंतवज्र का आमंत्रण स्वर श्रवण कर अन्य प्रहरी युवती भी प्रथम प्रहरी युवती के समीप आकर शनैः स्वर में मंत्रणा करती बोलो–"जा आचार्या को सन्देश दे, उनकी निवृति के पश्चात् हम दोनों इसके पौरूष नद्य में स्नात होकर धन्य होगी।"

कुछ समय पश्चात ही वह प्रहरी लोलापा के कक्ष में उपस्थित होकर

विनय करती हुई कह रही थी।

—"आचार्या, बन्दी एतर्हि काल में ही आपसे मिलने का प्रार्थी है।"

—"प्रार्थना स्वीकृत है, उसे तत्क्षण इसी कक्ष में प्रस्तुत कर।" लोलापा अपनी अन्तर्व्यथा को अन्तर्धा कर बोली।

युवती प्रहरी तत्क्षण चली गई। शीघ्र ही वह अनंतवज्र के पुनः उपस्थित हुई और लोलापा के संकेत से निग्मन हो अपने स्थान पर चली गई।

—"देवी लोलापा, मैं चित्रकर्म का आकांक्षी हूँ, कृपया चित्रपट्ट और रंगो सहित तूलिकाओं का संग्रह प्रदान करें। मैं प्रातः पूर्व तक अपने इष्ट का चित्रांकन करना चाहता हूँ।"

"क्या वह पुण्य चित्रांकन सवित्[39] काल की प्रत्यूष बेला में संभव नहीं है तापस योगी।" लोलापा ने अनंतवज्र के मुख पर गाम्भीर्य प्रायस[40] को गवेषण दृष्टि से देखा।

—"नहीं देवी, मैं उस आपन्नसत्वा[41] के समान हूँ जिसकी कुक्षि से प्रसव होने में समय शेष नहीं। अब मैं इस पंकिल देह के अशौच को अधिक समय तक धारण नहीं करना चाहता। मैं इस कलुषित देह के तमिस्त्र बन्धन से मुक्त हो त्विषाम्पति[42] में तिरोहन का इच्छुक हूँ।"

अनंतवज्र के दृढ़ स्वर-संकल्प को श्रवण का लोलापा का विक्षुब्ध मन अकव भय से कम्पित हो उठा। उसने धौतांशुल वस्त्र पट्ट, रंग, तूलिकाएं अनंतवज्र को सौंप दी! "देवी लोलापा यह निश्चय सत्य है कि संसार से योनि उपासन कर्म्य समाप्त नहीं होगा, पर इसे सुव्यवस्थित अवश्य करना होगा। मैं इस हेतु कृत्य में विफल रहा। यह सुकृत अब मेरे शिव रूप अर्चिस गुरुदेव श्री मत्स्येन्द्र नाथ ही सम्पन्न करेंगें। मैंने उनके कार्य का सूत्रपात-आरम्भ कर दिया।"

—"अनंतवज्र ऽ......।" लोलापा चकित स्वर में लगभग चीखी। उसके चारूलोचन आश्चर्य से विस्तारित हो उठे।

—"कौलाचारी नाथ......मत्स्येन्द्र! तुम्हारे तारक गुरु हैं वज्र? आश्चर्य! महाश्चर्य!! क्या उनके द्वारा प्रेरित होकर ही तुमने इस नगर-निकाय में सव्रीड़ा को माध्यम बनाकर प्रवेश किया?" लोलापा के स्वर में घन-सघन आश्चर्य था।

—"नहीं, देवी, उनके निषेध-पश्चात् भी, मैं अपने दम्भ के वशीभूत हो यहां चला आया। गुरु आज्ञा भंग के दोष से उत्पन्न पातकवह्नि शिखा मुझे अवश्य

दण्ड देगी। और प्राश्यचित रूप में मैं इस पातक से मुक्ति हेतु अदितिनन्दन के इस आवास भवन को महादित्य के अष्टापद मण्डल में भस्म कर पुनर्जन्म ग्रहण करूंगा। यह मेरा भीष्म घोष है।"

अनंतवज्र अपने कक्ष में चला गया और चित्रकर्म में लय होने लगा-द्वार पर उपस्थित प्रहरी युवतियां उसके चित्र कर्म के समाप्त होने की प्रतीक्षा में आकुल होती रही।

लोलापा की सकल रात्रि चिंतन में ही व्यतीत हुई। चिंतन के मध्य उसके प्रकुल गात्र में अनंतवज्र के अभिमर्शाचार[43] से उत्पन्न आनन्द-उर्मिलाएं उसके गात्रपत्र छदों में उरु[44] उत्सव मनाती, वह अनंतवज्र के तपनीय तेजसजन्य ऊष्मा से आर्द्र हो उठती। उसके मसृण ककुन्दर[45] अंग, पौरूष के भृशालिंगन[46] का स्मरण कर भूरि स्पंदन से स्पंदित हो उठते। उसके मनोहर देहनिर्ग में स्थापित सृष्टि कर्ता शुभ्रि[47] देव की कर्म क्षौणि[48] में परिप्लावित[49] का प्राचूर्य पुनः पुनः संविरित[50] होने लगता। वह आनंदातिरेकी अपाम्पति[51] के अर्णस्[52] में डूबने लगती।

ब्रह्म मुहूर्त की सुषीम बेला में लोलापा अनंतवज्र के कक्ष में पहुंची। उसकी दृष्टि चित्रपट पर और हाथ में तूलिका उस समय भी थी। उसका मुख गाम्भीर्य के प्रभुत्व से मण्डित था।

-"क्या चित्र पूर्ण-आकार को प्राप्त हो गया मनस्विन् वज्र?" लोलापा बने प्रवेश करते हुए कहा।

-"अनंतवज्र ने चौककर दृष्टि उठाई। लोलापा को समीप पा अभिवादन करते हुए बोला-

-"स्वागत स्मेरमुखी जन्ममोहिनी लापा। चित्र सम्पूर्णता को प्राप्त है, पर इसे सर्वप्रथम निजारूण प्रभापूरिणी, नवविद्रुम की बिम्ब थी, चिदग्निकुण्ड सम्भूता देवी कुमारी कामांक्षी ही प्रथम दर्शन की पात्र हैं। मैं उस सुधा सागर-मध्यस्था कामाक्षी से वीकाश[53] परिचर्चा का इच्छुक हूँ देवी लापा। मुझे उस संवित संवृता के पुण्य दर्शन कराएं, मैं कातर प्राथी हूँ।" कहते हुए अनंतवज्र ने चित्रपट पर चीनांकुश आवरित कर दिया।

"अवश्य....अवश्य तरस्विन् वज्र है। मैं स्नानादि से निवृत हो संसृति[54], उद्भूता, नीलचिकुरा देवी कामाख्या के मन्दिर में ही जा रही हूँ, तुम भी चलो।

महाराज्ञी की अनुमति से" देवी कुमारी से वही वीकाशी चर्चा भी संभव होगी। लास्यप्रिया लोलापा नित्यकर्म्य निवृतन् हित चली गई।

प्रत्यूष की पूर्व बेला में, नवयौवन से सम्पन्न सेविका अनंतवज्र को मन्दिर में ले गई। मन्दिर में पुजारिन, महाराज्ञी तिलोत्तमा, लोलापा और कुमारी कामाक्षी उपस्थित थी। माँ कामाख्या का प्रातः स्तवन गान हो रहा था। क्षराक्षरात्मिका सर्वलोकेश प्रसूता देवी कुसुमप्रिया कामाख्या के शोण[55] सुषिमत चिन्ह विग्रह को अनंतवज्र ने श्रद्धा से प्रणाम किया और करबद्ध मुद्रा में खड़ा होकर स्तवन समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगा।

स्तोत्र स्तवन समाप्ति के उपरांत महाराज्ञी ने अपांग-वीक्षण दृष्टि से अनंतवज्र को देखा। उनकी निष्वृजिन[56] दृष्टि में ममत्व का स्नेहादभ्र[57] था। उन्होंने स्निग्ध वात्सल्य को मधुर गिरा ध्वनि से व्यक्त किया।

—"अतिरमस-अनुचान पुत्र! तू प्रसन्न तो है न? इस देश की प्रत्यक्ष परिस्रुता लोलापा पराजित हुई या विजित?"

अनतवज्र के अक्षिकोटरों में नीरमही प्रकट हुई। अवरुद्ध से वह तिलोत्तमा के अलक्तक रचित पाद् पद्मों में शरण होते हुए बोला–

—"माँ विनिर्मुक्ता, इस देह कुञ्ज में वसित घोर प्रशान्त नायक का अचिद्रूप ही नहीं, चिद्रूप भी अर्कनन्दिनी के आकाराकाश में लीन हो गया है। माँ कनकप्रभा, महाकेलि कुञ्जा वासिनी, मेरी अहंकार ग्रन्थि खुल गई है।" अनंतवज्र अपने अधुना जवीन में सम्भवतः प्रथम अवसर में अपनी आयु से 2-4 वर्ष ज्येष्ठ स्त्री को माता के महिमामण्डित संबोधन से पुकार रहा था।

—"अक्षोम्य, अक्षोभ्य बन पुत्र। प्रज्ञा और उपाय का सामरस्य ही वज्र योग है, यह सम्भोगकाय[58] (देह) में मंत्रयोग के साधन से सुसम्पन्न होता है।" अबुधावस्था से बुधावस्था, पश्चात् बुध्यामानावस्था तत्पश्चात् प्रबुद्धावस्था और अन्ततः श्रेयशः हितसाधिनी सुप्रबुद्धावस्था के परम व्योम मे जीवात्मा का प्रवेश निरात्मा[59] के रूप में परिश्रत होकर जगतात्मा में लय होता है। यही ध्येय है, यही परावस्था, यही नैर्विकल्प।"

—"माँ प्रज्ञापारमिता स्वरूपिणी। अब इस प्रणव दर्शन और प्रज्ञा भूमि के कामसरोवर में काय सिद्धि हितार्थ पुनः देह धारण करूंगा, अब यह देह तो इसका पात्र नहीं..........।" अनंतवज्र की अश्रुधारा के सम्पात से उसका वक्ष स्थल

उत्क्लेदित हो उठा।

–"पुरूष रूप में स्थित होकर अश्रुपात? रे बावले, ऐसा अधीर गुण पुरूष को उचित नहीं।" कहते हुए तिलोत्तमा ने उसके अश्रु अपने आंचल से पोंछे।

–"माँ कुमारी को यह चित्र देता चाहता हूँ। मेरी प्रार्थना है, वे इसे अवश्य स्वीकार करें।" कहते हुए अनंतवज्र ने अपना हस्त चित्रित चित्र कामाक्षी को प्रदान किया। चित्र का आवरण हटाया गया, जैसे ही चित्र का दर्शन हुआ, कामाक्षी चकित हो चीख उठी– "यह वही है......वही है........वही है.....।"

–"ये मेरे पूज्य श्री गुरुदेव मत्स्येन्द्र नाथ है।" अनंतवज्र कह रहा था। महाराज्ञी और लोलापा भी चित्रलिखी सी कभी चित्र को तो कभी कामाक्षी की भावमय अवस्था को देखती स्तब्ध थी।

प्राची दिक् तस्मिस्त्रारि[60] सहस्त्रांशु[61] की पूषन्[62] प्रभा से विभावती हो उठी। प्रत्यूष की पुण्यारुणी आभा प्रातः समीर को आलिंगत कर जग–जंगम में, शर्म्म संदेश प्रसारित करती प्रसन्न विभोर होने लगी। मनसिज रसाभिस्त्रावणी[63] नायिकाएं निशा जागरण से उत्खिन्न नेत्रों को मलती उठ चुकी थी। आज उनके पिधान[64] वस्त्र अनंगवारि[65] सम्पात से उत्क्लिद्[66] नहीं थे, उनके कामकृशान[67]–कुण्ड कामाभिहोम वंचित रहे थे–कारण, क्योंकि उनका कामस्त्रुवाधारी[68] निर्भर[69] पुरूष सव्रीड़ा के पञ्चश[70]–निकेतन में उपस्थित नहीं था। स्मरवांक्षिणी नायिकाओं की शुच्चिमुखच्छवियों पर म्लान का लेपन था।

वे सब मकरध्वज[71] की निदिध्यासित[72] साधिकाएं सव्रीड़ा के हाटक गेह में सायंकाल से एकत्रित हो गई थी। राजप्रासाद से पुरूषहीन होकर हतप्रभा सव्रीड़ा के पुनः आगमन के पश्चात् उच्छ्रितांगी[73] नायिकाएं मध्य रात्रि के पश्चात तक आभाषण[74]–अनुलाप करती रहीं। सभी सुधांशु छवि संवृताओं में अक्रोश–अमर्ष था। इस प्रकार सुरुपाओं का यह शतक संखयी दल राज विद्रोही हो गया। योजनानुसार महाराज्ञी तिलोत्तमा को सर्वप्रथम ज्ञापन देकर न्याय विरुद्ध हुए इस कृत्य का विरोध किए जाने का कार्यक्रम निश्चित हुआ।

अहर्मुख[75] प्रहर की द्वितीय संचार बेला मे राजगुप्तचरी ने इस विद्रोह का पुष्ट समाचार तिलोत्तमा को प्रेषित कर दिया। कामाचार्या लोलापा और महाराज्ञी ने इसे राष्ट्र अवमानना मानकर विद्रोही नागरिकाओं को दण्ड प्रदान करने का मन बना लिया। दोनों ने अपनी नूतन[76] योजना को भी अंतिम रूप दे दिया।

अद्य[77] दिवस की द्वितीय प्रहरिका में विद्रोही दल का राजसभा में आगमन हुआ। दल के साथ शताधिक नारी बल था। नेत्री के रूप में सव्रीड़ा उन पर अनुशासन प्रकट करती सभा में उपस्थित हुई। सव्रीड़ा ने अपने आरोप का मंत्री परिषद् के समक्ष कथन किया। निर्पेक्ष भाव से महाराज्ञी ने प्रधान न्यायकर्त्री के रूप में आरोप श्रवण किया। मूलतः आरोप आचार्या लोलापा पर आरोपित था। लोलापा भी सभा में उपस्थित थी, वह श्रवण कर स्मित हुई। लोलापा पर आरोप था–कि उसने कमिता[78] सव्रीड़ा के सोम पूरित गात्र के पांशु[79]–अंग मर्दन और गम्भीर स्मर[80] मन्दिर में मन्थन से समुत्पन्न नरतोय[81] सिंचन हेतु बन्धक बनाए गए पुरूष को धूर्त, छद्म के माध्यम से आहरण कर राजप्रसाद में कहीं गोप्य कर दिया। उसे उसका बन्धक पुरूष प्रदान करा कर लोलापा को दण्डित किया जाए।

राजाज्ञा से बन्दी अनंतवज्र को न्याय मण्डप में उपस्थित किया गया। जैसे युवावस्था के द्यो विस्तार में अहर्पति, क्षितिज के प्रच्छन्न द्वार से उदित हुए हों अथवा स्वयं दर्पकराज ही शम्भुशाप का विमोचन कर इस नूतन रूप में उपस्थित हुए हो अथवा जगत्सृजक देव, परमेष्ठिन की सृजिना का विभाकर रूप है। सभा दृगचकित थी, इस पुष्टाकार कुसुमेषुमण्डित पुरूष के दिव्य यौवन का अनघ दर्शन कर।

अनंतवज्र के ओजस्विन मुख पर गाम्भीर्य का संवरण था। उसने न्यायमूर्ति, सभासद आदि का करबद्ध नमन किया। न्यायाधिवक्ता ने उसे अभियोग सुनाया। अनंत वज्र पर आरोप था कि उसने स्त्री राज्य में सव्रीड़ा के माध्यम से छलयुति से नगर प्रवेश कर प्रथम अपराध किया है। उस द्वितीय आरोप था कि नगर की लावण्यमयी योषिताओं में राज्य विद्रोह का सूत्रपात किया। तृतीय गम्भीर अपराध यह कि अनंतवज्र ने देश की परम्परागत उपासना की केन्द्र कामाख्या के पूजन–पर्युषण के स्थान पर ब्राह्मण धर्म की प्रतिष्ठा करनी चाही।

अनंतवज्र के अभियोग श्रवण कर सव्रीड़ा और उसकी मतानुयायी नागरिकाएं चकित हो गई। उन्हें स्वप्न में भी ऐसे अभियोग की कल्पना नही थी। आरोपों की सिद्ध–अवस्था में अनंतवज्र के साथ ही वे सब भी दण्ड की अधिकारी होगी। सभी की दृष्टि अनंतवज्र की ओर थी। अनंतवज्र ने अपना कथन प्रारम्भ किया–

–"शासन द्वारा निर्दिष्ट–अधिवक्ता ने जो आरोप मुझ पर आरोपित किए हैं, वे पूर्णतः सत्य हैं। मैं निःसंकोच स्वीकार करता हूँ। मैं योगी हूँ और लक्ष्य सिद्धि

से हीन योगी का जन्म-जीवन निरर्थक है। मेरा पराभाव हुआ, मैं कामाचार्या लोलापा का हृदय से आभारी हूँ और माँ महाराज्ञी श्रीमती कौलामृत-रसिका, सुधासारभिवर्षिणी, समाह्लादिनी तिलोत्तमा का चिर ऋणी हूँ जिन्होंने कृपा कर मुझ पर अपना वात्सल्य पर्जन्य वर्षित किया और पुत्र माना।" अनंतवज्र श्वसन क्रिया के लिए एक निमिष रुका।

—"पुत्र.........पुत्र.........ऽ.......।" अनेक नारी कण्ठों से मद्धिम पर चकित स्वर उभरे! अनंतवज्र पुनः मुखर हुआ।

—"मैंने स्वयं को दण्डित किया है-उस दण्ड के फलस्वरूप अभी इसी क्षण मैं इस पराजित देह का योग साधन से परित्याग कर अनंत व्योम की दिशा में गमन कर रहा हूँ। सभी जन मेरी त्रुटियों को क्षमा करें।" कहते हुए अनंत वज्र योगासन में स्थित हुआ और अपने प्राण समुच्चय को ऊर्ध्व किया। उसके चेतन प्राण महानिर्वाण की प्रकाशित सत्ता के आलोक पथ पर गमन करने लगे। प्राचीर में विजडित पाषाण शकलों के समान समस्त सभा-सांसद स्तंभित हो गए।

प्रमुख राज्य चिकित्सा स्त्री अधिकारी सहित लोलापा ने भी अनंतवज्र की नाड़ी परीक्षा ली और निर्णय लिया कि अनंतवज्र की प्राणवायु देह में नहीं। सव्रीड़ा और उसकी सखियां राज्य विद्रोह के अपराध में बन्दी बना ली गई।

पुष्पधन्वन् देव की प्रसंग क्रीडाधरा देवि रति की भांति संकर्षाणाकारवती लोलापा यौवनकान्ति जैसे मन्द-मीलित हो गई थी, पर उसने अपने मनोभावों को अप्रकट ही रखा। अनंतवज्र के देह परित्याग के तत्क्षण पश्चात् उसने उचित करणीय का निर्णण ले लिया। इस विषय में महाराज्ञी भी उससे सहमत होगीं, उसे विश्वास था।

महाराज्ञी का मन भी अशान्त हो गया था। वह स्वयं एकान्ताभिलाषिणी थी अतः न्यायासन से उठकर एकान्त कक्ष में चली गई। उनके साथ ही लोलापा थी!

—"जो अमुद्घटित हुआ वह क्लेशकारी है लोपा।" महाराज्ञी का क्लान्त स्वर मुखनिर्गत हुआ।

—"आप अनुमति प्रदान करें तो इस अशोमन को प्रमुद के भास्वत रूप में परिवर्तित किया जा सकता है देवी।" लोलापा के स्वर में गाम्भीर्य का एकातिरेकोदघोष था।

—"वह किस प्रकार संभव है?" तिलोत्तमा के स्वर में यत्किंचित चिंता का

समिश्रण था। मैं अपने गुरु बल से, असम्भव को संभव में परिवर्तित कर दूंगी महाराज्ञी। लोलापा के स्वर में अप्रतिम संकल्प का भेदी नाद था।

"तो जो शुभ हो, श्रेयस: हो, वही सम्पन्न करो।" तिलोत्तमा ने अपनी सहमति प्रदान की। लोलापा उसी क्षण कक्ष से प्रस्थान कर गई।

वह माघ मध्याह्न की बेला थी। मारीचि[82] मालि निरन्तर व्योमाध्व[83] गमन करते अस्ताचल की ओर प्रस्थान कर रह थे। अनेक नागरिकाएं उस चत्वाल-श्मशान में एकत्रित थी। वे सभी अनंतवज्र के अन्येष्टि संस्कार सम्पन्न हेतु एकत्रित हुई थी। महाराज्ञी, लोलापा भी वहीं उपस्थित थी।

देशकाल विधानानुसार चिताकाष्ठ में अनंतवज्र का शव प्रतिष्ठित कर दिया गया। चिताकाष्ठ पर शुद्ध परिसिचिंत कर भगवान कव्यवाहन[84] को अनंतवज्र का शव समर्पित किया गया।

सप्तार्चिस[85] का हिरण्यतेजस[86] जाग्रत हुआ, वायुसखा[87] की पीन शिखाएं घृत सिंच काष्ठ की नि:श्रेणी[88] पर अधिरोहण करती अन्नतोन्नत को आतुर हुई, कडार[89] धूम के वर्तुल कुण्डल नभस् दिक् देव के विस्तारित नील पट्टाम्बर को रंगने लगे।

अचानक यमदिक्[90] का प्रान्ताकाश पिंगल[91], लोहित और घनमेचक[92] रंगों से संयुक्त हो कर्बुर[93]वर्णी हो उठा, प्राणानिल[94] का दिकृन्त व्यापी विस्तार संचार भी मन्द हो गया, वानस्पत्य के पत्र-पुष्प आशुगाभाव[95] में निष्कम्प हुए। दाक्षिण्य दिशा से मेघ स्तनित[96] भूधर श्रृखलाएं क्षिप्रवेग से आ-आकर नभो मण्डल में संचरित मयूखपति[97] के प्रज्वलित पिण्ड पर अमित[98] छादन करने लगी।

सर्वतोभद्रमय श्मशान के उसी यमांग से मरूत का फुत्कारी प्रभंज घूर्मित होता हुआ आंतरिक्ष की ओर उठा। इस फुत्कारी निर्धात के बर्तुल घूर्मण से श्मशान में यत्र-तत्र उपेक्षित फैली प्रेत भस्म, वनस्पत पर टंगे प्रेतवस्त्र और दग्धार्द्धदग्ध अस्थियाँ अदृश्य वाययानारूढ़ हो चित्याक्षेत्र के आंतरिक्ष मण्डप पर आच्छादित हो गए।

उपस्थित जनी समुदाय में भय-व्याप्त हो गया, उनके कर्बुर अन्शुकान्त[99], छादित वक्षों पर सज्जित पीन कलशों की शोभा को अनावृत करते प्रबल प्रभंज वेग के वशीभूत होकर फर्रर फर्रर....शब्द-उत्पन्न करते उड़ने लगे, रोहित[100]

शाटिका वस्त्र से निर्मित, स्त्रियों के कल्लोलायित[101] वस्त्र जो उनके कटि देश से पाद प्रान्त तक प्रावरित थे, वायु प्रवाह में प्रबद्ध हो, सघन जघन क्षेत्र को अनावृत करते उदरभाग तक आरोहन करने लगे। उनकी सुचिक्कन मेचक केश वेणियाँ भी ब्याल प्रियाओं के समान वायुवेग में तीव्र हिल्लोलित हो उठी। वे सब काञ्चिपद[102] के अधोप्रान्त मे निहित"कञ्जनकायी[103] वाटिका की बीथी" पर बलात हस्त छादन कर वात-निर्धात चक्र से रक्षित वाह्य क्षेत्र की ओर भागी।

नभोमण्डल वारिद मेघ मालाओं से परिच्छादित हो श्यामल हो उठा। आरम्भ में मेघ वारि की पुष्ट बूदों का सम्पात हुआ, दमनकयष्टि की तडित शम्पाराजि व्योम वक्ष पर तडकी फिर मेघमाला से धारासम्पात मेह वर्षण प्रारम्भ हो गया।

देखते ही देखते घनचिक्क[104] तामिस्त्र के अन्धवर्मन से नरहोम[105] क्षेत्र परिच्छादित हो उठा, महानीर सम्पात से चित्या[106] पावक बुझ गई। अचानक अभ्रमण्डल से तडित सौदामिनी की शाम्पेय द्युति से पूरित एक तीव्रोदीपी वलय अर्चिस पिण्ड नृहोमकुण्ड[107] के ऊर्ध्व अंतरिक्ष पर स्थित हुआ। बलय मण्डल सुलम्बित हुआ, उपस्थित योषित सम्मर्द ने चकित दृगों से देखा, वह द्रीप्त वलय पिण्ड नारी आकार में क्षण-क्षण परिवर्तित होता जा रहा है।

वह शतहृदा रोचिस्, उत्तमांगी, सुषमा की खान, यौवन की तीर्थ, सौन्दर्य की उत्स, प्रभा की स्वयंवृत्ता नारी, वह्निवर्मन[108] में लिपटी, प्राशान्त चिता के आंतरिक्ष में स्थिर टंगी हुई थी। उसकी सुलम्बिमुक्त केश राशि का प्रत्येक कच जैसे मर्म्मन[109] निर्मित था, अतः समस्त केश संभार हेमन् द्युति से द्रीप्त था। उसकी क्षीण कटि में खट्वांग सहित हड्डियों की किंकणी, परस्पर सटे हुए उतुंग हेमवर्णी कुच कलशों पर नृचर्म्म निर्मित कंचुकी जिसके पीन वलय पर झूलते हुए ग्रीवामालि के नरमुण्ड, ललाट पर प्रेतभस्म-सिन्दूर मिश्रित टीका, कपोल देश पर लटकती हुई बराटक[110]। वह कराल वेषा होते हुए भी रूप-सौन्दर्य का ललामादित्य थी।

—"कापालिकी........!" अनेक कण्ठों से चकित स्वर ध्वनन हुआ।

लोलापा की लोम राशि प्रहर्षण से प्रोक्त हो उठी। उसने मन ही मन सिद्धि की विकट स्वरूपा अपनी ज्येष्ठा गुरु भगिनी को प्रणाम निवेदित किया फिर तिलोत्तमा से शनैः स्वर में कहा–

—"महाराज्ञी यह मेरे रम्य कपर्दन महापूज्य साक्षात शम्भो रूप कापालिक

कृष्णपाद (कण्हपा) की शिष्या मेखलापा[11] है। मेरे आह्वान पर अपनी कृपा सहित उपस्थित हुई है।"

—"मुझे ज्ञात है सखि। मेरा मेखलापा और कनखलापा दोनों भगनियों से आत्मीय परिचय है। यही नहीं पूज्यपाद कापालिक कृष्णपाद भी मेरे परिचय क्षेत्र में हैं!

—"आश्चर्य, महाराज्ञी, अधुना काल तक मैं इस रहस्य से परिचित नहीं थी।" लोलापा का चकित स्वर था।

नृहोम वेदी के ऊपर शून्य वातायन में स्थिर महा सिद्धा मेखलापा के हेममण्डित कायनिर्ग में स्फुरण हुआ। सुलम्बि उत्तान लेटी देह सीधी हुई और वारिद नीर में संतार करती हुई महाराज्ञी तिलोत्तमा के सम्मुख आ उतरी!

—"काम निर्ग की अधिष्ठात्री, साक्षात योनि रूपिणी देवी, महाराज्ञी तिलोत्तमा मैं आपके बन्धक पुरूष के शव को ले जाने की अनुमति चाहती हूँ, प्रदान करें।" मेखलापा का सम्मानीय स्वर नाद नाभि क्षेत्र से उठकर कण्ठ देश को पार करते हुए उसके मुख से निर्गत हुआ!

"अवश्य, अवश्य महायोगिनी। तुम्हें अनुमति की क्या आवश्यकता है।" कहो आचार्य कपालपाणि कृष्णपाद, सहोदरि कनखलापा प्रसन्न तो है न?"

"हाँ, वे सब शुभकामी परम प्रसन्न हैं।" महासिद्ध योगिनी लोलापा की ओर उन्मुख हुई और बोली–

—"प्रिय लोपा तुम्हारा क्या शुभ करूं?" कहते हुए मेखलापा ने अत्यन्त स्नेह से लोलापा से सम्मिलन किया फिर तिलोत्तमा से अनुमति ले अन्तरिक्ष में उछली। क्षण भर में वह चिता के ऊपर जा पहुंची, उसके चितारूढ होते ही चिता चुनित काष्ठ का चयन भंग हुआ और अनंतव्रज का शव ऊपर उठा। मेखलापा उछलकर शव वक्षस्थल पर आरूढ़ हुई और चिता का घूर्मण करता करता, वातावरण को सायं......सायं.....सन्नन्.....सननन्....के स्वर संघात से गुंजित करता शव, अंतरिक्ष के उच्चतम आनंती विस्तार से क्षिप्र संतार गति से संचरित होता दृष्टि से परे हो गया।

काश्यपी में प्रशान्त छा गया। मेह का धारावार सम्पात थम गया, निर्धात समाप्त हो गया। नभोमण्डल मे अदितिनन्दन पुनः प्रकट हो गए।

* किरण, उस्त्र, मयूख, अंशु, गर्भास्त, घृणि, घृष्णि, भानु, कर मारीचि, दीधिति। ये सूर्य की एकादश रश्मियां हैं।

1. प्रलंयकारी
2. परस्पर सटे हुए स्तन
3. तेज से परिपूर्ण लोक (स्वर्ग)
4. स्वर्ग
5. बूंद-बूंद कर टपकना
6. रक्त कमल के समान जिसकी शोभा हो व 'शोण' है (यहां आशय ऐसी ही शोभा के नम या भीगे हुए स्वरूप से है।)
7. सूर्यजनित (अग्नि)
8. अनंतवज्र में कामोद्दीपन के लिए यह लोलापा की ऐन्द्रिजालिक माया की संरचना थी। काम की 64 कलाओं में ऐन्द्रजाल की क्रियाएं भी सम्मिलित हैं।
9. जिन वृक्षों में फूल लग कर फल लगते हैं-वे वानस्पत्य है।
10. जिन वृक्षों में बिना फूल के ही फल लगते है-वे वनस्पति है-जैसे गूलर का पेड़।
11. कामदेव
12. नवीन(नया)
13. कामी
14. समुद्र
15. उचित
16. अत्यन्त रूपवती
17. भग
18. अग्नि
19. मार्ग
20. संकीर्ण मार्ग (पगडन्डी)
21. किवाड
22. वायु (प्राणवायु)
23. कमलकेशर
24. मुख
25. लालिमा का आधिक्य
26. बौद्ध तन्त्र में 'पदम' स्त्रीन्द्रिय (योनि) को तथा 'वज्र' पुरूषेन्द्रिय को माना गया है। यथा-"स्त्रीन्द्रियं च यथा पदमं वज्रं पुंसेन्द्रियं तथा।"
27. 'प्रज्ञा' नारी का प्रतीक शब्द है। इसका प्रयोग साधिका नारी के रूप में किया जाता है।
28. एक नाडी जो हिन्दु तन्त्रों में इड़ा (चन्द्रनाड़ी) के समान है।
29. यह नाड़ी हिन्दु तन्त्र ग्रन्थों में वर्णित पिंगला (सूर्यनाड़ी) के समानवर्ती है।
30. 'उपाय' नर का प्रतीक शब्द है।
31. पद्म नगर, पद्मपुरी से आशय योनि क्षेत्र से समझें।
32. युगनद्ध अवस्था
33 हिन्दु तन्त्रों में वर्णित सुषम्ना के समान नाडी
34. प्रज्ञा (नारी)
35. उपाय (नर)
36. इस समय
37. पीड़ा का समुद्र
38. अग्नि की सात ज्वालाओं के सकलीकृत रूप से निर्मित ज्वाला।
39. सूर्योदय काल
40. अधिकता
41. गर्भवती
42. जगतात्मा का बालारूण रूप
43. संसर्ग (मैथुन) आचार
44. विशाल

45. नितम्ब स्थित कूप (गद्ढे), जघनकूप
46. कठोर आलिंगन
47. ब्रह्मा
48. भूमि
49. चांचल्य
50. आच्छादन
51. समुद्र
52. पानी
53. एकान्त
54. संसार को उत्पन्न करने वाली
55. अरूण-आभा से शोभामान
56. निष्पाप
57. अतिशय स्नेह
58 अधुना मत्स्येन्द्र म.म.पं. गोपीनाथ कवि राज जी के साहित्य में निम्न कायों का वर्णन मिलाता है-1. सहजकाय, 2. धर्मकाय, 3. सम्भोगकाय, 4. निर्माणकाय, 5. महासुखकाय, 5. बुद्धत्वकाय, 7. त्रैन्दवकाय, 8. शाक्तकाय।
59 जब आत्मा स्थूल, सूक्ष्म भूतों से, बुद्धि, धर्म आदि भावों से, आणवमल, संकोच, स्वभाव, पुरूष रूप कलात्मक कंचुक आदि छूट जाते हैं तब आत्मा 'निरात्मा' की रूपिणी कहलाती है।
60. अन्धकार का शत्रु
61. सूर्य
62. लाल
63. ऐसे यंत्र की धारी (नायिकाएं) जो कामदेव के रस को अर्करूप में खीच कर बूंद-बूंद कर टपकाए।
64. अन्दर पहनने वाले वस्त्र
65. कामरूपी जल की वर्षा
66. गीला-भीगा हुआ
67. कामाग्नि का कुण्ड
68. लिंगधारी
69. सख्त
70. कामभवन
71. कामदेव
72. लगातार
73. उन्नत (ऊंचे) अंगो वाली
74 सामान्य बातचीत को आभाषण और वारंवार किए गए वार्तालाप को अनुलाप कहा जाता है।
75. प्रातःकाल का समय
76. नया/नवीन
77. आज
78. कामी
79. उन्नत
80. योनि
81. वीर्य (मनुष्य का नीर)
82. सूर्य
83. आकाश मार्ग
84. अग्नि देव
85. आग्नेय तेज
86. अग्नि
87. सीढ़ी
88. भूरा (रंग)
89. भूरा (रंग)
90. दक्षिण की दिशा
91. भूरा (रंग)
92. घनाकाला

93. चितकबरा
94. प्राणवायु
95. वायु-अभाव
96. बादलों की घटा
97. सूर्य
98. श्याम (रंग)
99. आंचल
100. लाल
101. तरंगायित
102. कमर (कटि)
103. कामदेव की काया (स्त्रीलिंग)
104. घना अन्धकार
105. श्मशान क्षेत्र
106. चिता की अग्नि
107. चिता स्थान
108. अग्नि कवच
109. सुवर्ण (सोना)
110. कहा जाता है कि मेखलापा और कनखलापा दोनो बहनें थी, जिनमे मेखलापा ज्येष्ठा थी। दोनों ने अपने मस्तक काट कर अपने गुरुदेव श्री कृष्णपाद जी को अर्पित किए थे, ऐसी प्रसिद्धि है।

प्रालेयांशु वदना मेखला और भास्वरी पताका दोनों सखियों ने कामाक्षी को सकल वर्णन सुनाया। धवल नवनीती शकल खण्ड विनिर्मिता कामाक्षी अनंतवज्र प्रसंगों को सुनती रही, उसे खेद था कि वह अनंतवज्र से प्रत्यक्ष चर्चा कर चित्रित पुरूष के विषय में अपनी जिज्ञासाओं को पूर्ण नहीं कर सकी। सम्भवतः इस विषय में आचार्या ही उसकी कुछ सहायता कर सकेंगी।

मदिरायतनयना लोलापा की मेदुर मुखच्छवि पर म्लान की स्पष्ट परत का लेपन था। उसकी मृणालिनी काया में जैसे निःसंगता लीन हो गई थी, उसकी लोमराजि में मदनांकुशोत्सव के अतीत क्षण पुनः पुनः प्रकट होते फलतः मदन कंटकों का महासम्मर्द एकत्रित हो जाता। मदयिन्तु अनंतवज्र का मकरध्वज रूप उसके मन्दिर नेत्रों में जैसे पूर्णतः लीन हो गया था। धरा अम्बर में, कहीं भी उसका दृष्टि निक्षेप होता, आत्मभू अनंतवज्र की मूर्ति ही मूर्त हो उठती।

अन्मन्स्मन और शिथिलकाय गात्र को वहन करती लोलापा कामाक्षी के सायं शिक्षण हेतु पुष्प वाटिका स्थित ज्ञान मण्डप में पहुंची। कामाक्षी सखियों सहित मण्डप में प्रतीक्षारत थी। लोलापा का सुआगमन देख उसके सम्मानार्थ तीनों सखियां उठ खड़ी हुई और अपनी आचार्या को सविनय प्रणाम निवेदित किया।

सायंकालीन शिक्षा का क्रम कभी ज्ञानमण्डप में स्थिरता से बैठकर तो कभी पुष्प-सुरभित द्रुम-पादपों की सुवासित वीथियों में परिभ्रमण करते हुए, हास्य-लास्य वार्ताओं के माध्यम से लोलापा पूर्ण करती थी। कुमारी के मनोविज्ञान से तदात्म्य स्थापित कर वह किसी भी सामान्य परिचर्चा से ज्ञप्ति गंगा का आह्वान करती फिर शनैः शनैः अपने मूल बिन्दु की ओर गमन करती हुई सिन्धु गम्भीर हो जाती। यह उसका नित्य क्रम था।

लोलापा आचार्यासन पर आसनानीन हुई। कामाक्षी अपने स्वप्न पुरूष के चित्र विषयक चर्चा का समारम्भ किस प्रकार करे, वह सोच रही थी कि लोलापा ने गम्भीर स्वर में कहा।

—"गत वासर का शेष प्रश्न कहो कुमारी।" कामाक्षी ने एक क्षण सोचा, गत दिवस का प्रसंग स्मरण किया। ज्ञात नही क्यों उसे वह शुष्क प्रसंग नहीं भाया। वह तो उस पुरूष के विषय में ज्ञानोत्सुका थी, फिर भी उसने कहा—

"सनातन क्या है? यही गत दिवस का शेष प्रश्न था!"

–"योग ही सनातन है और योगी सनातनी।" लोलापा के मुख से हटात् निःसृरित हुआ।

"योग क्या है, आदरणीया। योगी को भी पारिभाषित करें।" कामाक्षी ने सविनय जिज्ञासा की।

"ऐक्य सत्ता की द्वय पृथक मान ईकाई प्रकृति और पुरूष की लयात्मक अवस्था से समुत्पन्न रमण ही योग है। इस युगनद्ध रमण की एकात्मिका से जन्य महाआनन्द–आसवरस के अजस्त्र परिस्त्रावित पीयूष का पानकत्री ही योगी है। यह पीयूषवारि महोच्च हिम शैलीय नित्य कैलाश की अधिपत्यका में कर्पूरगौर महाघोरेशु और महाअघारेशी के नित्य केलि से उद्भूत होती है, उनकी यह संश्लिष्टि केलि–कलापावस्था ही योगिनी है और योगिनी से क्षरित अमृतोदक के सतत् पानकर्ता को भी योगी ही मानो। महाअघोरेशी ही कामाख्या है और कामाख्या का संपरिष्वक्त स्वरूप ही सनातन है, सनातन इसलिए कि कामाख्या ही उस कथित सनातन की आधारभूता है, वही सनातन की प्रज्ञा है वही प्रसूता और वही रमणी। इसी रम्य राजि से स्वयंभु कुसुम प्रक्षारित होता है, इसी प्रध ार को धारण कर वह अपना मायसर्जु रचती है, उसका यह मायसर्जु ही जगत है जो जगत्प्रसूः है उसी को सनातनी जान।"

"हमारे मन्दिर की मदिर गुहा में माँ जगत्प्रसूता का वज्रासन स्थित है, यह माननीय है पर उस वंज्रासन पर वह महाअघोर का चिन्मय रूप दृष्टि देश में कहीं दर्शन नहीं देता। जब वह उपस्थित ही नहीं तो संपरिष्वक्त अवस्था कैसे संभव है?" कामाक्षी ने विचारते हुए तर्क किया।

लोलापा मनान्तर में चौंकी। उस योगी अनंतवज्र के वज्रोत्सव स्मरण के प्रवाह में उसने योग, योगी और सनातनी को कौन से शब्दों में प्रबद्ध कर पारिभाषित कर दिया? क्या उसके चिंतन में अनंगवज्र के कामाभिमर्षण के कारण उसी की भाव सरिता उमड़ पडी है? लोलापा की निर्निमेष नेत्रावलि शून्य गगन के प्रस्तर वक्ष संचारित मेघ शकल की धूम्राकृति पर स्थिर हो गई।

लोलापा को चिन्तन–रत्नाकार में डूबते देख कामाक्षी मौन हो गई किन्तु चांचल्यी पताका के चित्तपटक कर कल्पित कालपुरूष का संपरिष्वक्त रूप उदित हो उठां वह अपने चंचल स्वर को गाम्भीर्य के आच्छादन से प्रावरित कर सहज स्मिता से बोली–

–"संपरिष्वक्त या युगनद्ध अथवा युग्मावस्था का आधार हेतु, उस महा अघोर का प्रकटीकरण कब और कैसे होता है आचार्या। उसके प्रत्यक्षीकरण का कोई साधना–सेतु अवश्य होगा। कृपा कर अपनी श्रेयसः गिरा से उस 'सेतु' का वर्णन कर हमे धन्य करें गुरोवर्या।

चंचल पताका का स्वर ध्वनन श्रवण कर लोलापा का चिंतन भंग हुआ। "तूने क्या प्रश्न किया पुत्री?" लोलापा ने पताका के अन्तर्मनः भाव को उसके मुखश्री पर पढ़ने का आयास करते हुए प्रश्न किया।

पताका की दृष्टि भूस्पर्शी हो गई। लोलापा के प्रश्न का उत्तर कामाक्षी ने दिया।

–"वही.....वही मात्, जो जिज्ञासा मैंने प्रस्तुत की थी, उसी का सार रूप पताका द्वारा मुखरित हुआ है।"

–"महाअघोर प्रकटीकरण बिन्दु साधन से होता है। बिन्दु का ऊर्ध्व गमन कौशल कायसिद्धि प्रदान करता है और अधोगमन मृत्यु। कहा भी जाता है–

–"मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्"

बिन्दु में मल की उपस्थिति अधःस्ख्लन की कारक है। बिन्दु की यह पात अवस्था भी आनन्दप्रदात्री है, इस स्खलन से कामकाय निर्मित होता है और ऊर्ध्व गमन से दिव्यकाय। दिव्य काय प्राप्ति के हितार्थ बिन्दु के अतःपात निषेध के हित, शोधन शक्ति, निरोध शक्ति अत्यावश्यक है। पश्चात कर्ममुद्रा से ऊर्ध्व स्त्रोत स्फुट होते हैं और अमरत्व का पथ प्रशस्त होता है। इस प्रकार बुद्धत्वकाय की उत्पत्ति होती है और मूल बोधि चित का स्फुरण भी। बोधिचित्त अवधूती मार्गालम्बन से निरन्तर ऊर्ध्व लोकों में उठता जाता है और अधिकाधिक उत्कर्ष प्राप्त कर सम्भोग चक्र मे विरमानन्द प्राप्त करता है। इसी चक्र में 'महामुद्रा' विराजती है। लोलापा ने अपने सिद्धान्तों से कुछ पृथक होकर व्याख्या की। वह विज्ञेय थी–ज्ञानमार्गी व्याख्या ही एतर्हि काल मे इन किशोरी बालाओं को श्रेयसःप्रद है, वाममार्ग को प्रमाणित करने वह इस काल में किस प्रकार व्याख्यित करे? अतः उसने युक्ति पूर्वक इस वर्णन को व्याख्यायित किया।

"बिन्दु क्या है? किस तत्व से निर्मित है? इसकी आवास अट्टालिका के अभिज्ञान का किस प्रकार संधान हो। बिना बिन्दु संधान के साधन कैसा? कामाक्षी ने प्रश्न किया।

"मेरे विचार से 'कामकला' ही बिन्दु है। प्रकाश शुक्ल बिन्दु और विमर्श रक्त बिन्दु का पारस्परिक अनुप्रवेशात्मक साम्य मिश्रबिन्दु है, यही 'काम' है, यही परम आत्मा है। इन तीनों बिन्दुओं का समष्टिभूत महात्रिकोण ही आद्या शक्ति का रूप है। यह आद्या शक्ति ही कामाख्या है, इसी का साधन बिन्दु साधन है।"

लेखक के मत में–(इस महात्रिकोण के मध्य भाग में रवि का काम बिन्दु तथा स्तन द्वय में अग्नि और सोम बिन्दु कल्पित हैं। विमर्श की अर्द्ध या हार्द्ध कला योनि रूप में कल्पित है। विमर्श=रक्त बिन्दु, प्रकाश=शुक्ल बिन्दु। विमर्श शक्ति का और प्रकाश शुक्ल शिव का प्रतीक है)

कामाक्षी सहित दोनो किशोरियां भी इसे हृदयंगम नहीं कर सकी। अगर कामाख्या साधन से ही महाअघोर का संधान होता है तो वे तो साधनरत हैं। कहाँ है वह महाअघोर? तीनों के अन्तर्मन में यही प्रश्न अनुगुंजित हुआ।

–"तुम्हारे हृत्पद्मों से प्रस्फुटित भाव-विभा मुझ पर अप्रकट नही है। अधुना काल तक तुमने कामाख्या सपर्या रहस्य का गोपन जाना नही है। यह रहस्य समयानुसार प्रकट होगें ही। संप्रति काल में तुम्हें महाअघोर की अविर्यीण सत्ता प्राप्ति हमारे देश के लोक देव हरि रूप विभु वज्रांग देव का द्वादश वर्षीय साधन ही अपेक्षित है। तुम तो विज्ञ हो कि श्री हरि की कृपावसात ही यहां की स्त्रियां गर्भ धारण करती हैं।" लोलापा ने उन्हें ज्ञान प्रदान किया।

–"इस विषयक मेरी जिज्ञासा का शमन करें आचार्या। भूतकाल से ही मन में यह प्रश्न है कि विभु वजांग किस प्रकार प्रजनन सहायक होते हैं? पताका ने अपनी किसी ज्येष्ठा जो गर्भिणी थी, से यह ज्ञान प्राप्त कर मुझसे कथन किया था। उस कथनानुसार नारी और पुरूष परस्पर अभिमुख हो मिथुनयाग संपादित करते हैं, स्मरकुण्ड में शुभ्र हविष्य को आहूत किया जाता है। क्या मात्र अभिहोम से ही गर्भ धारणा होती है। मैंने अनेक सुअवसरों पर शुभ्र चरू का अग्निहोत्र किया है पर मैं निर्गर्भा ही रही। एकावसर में मेरी जननी ने कथन किया था कि सृष्टि का प्रसवन कामाख्या ही करती हैं और कामाख्या मृदुल-मृशण रूप धारण कर नारी के भग निर्ग में निवास करती है। इस विषय में विजिज्ञा सुत् होने पर उस काल मेरी जन्मदात्री ने आपका नाम कथन कर कहा कि, ये सभी जिज्ञासाएं आपके माध्यम से ही शमनित होगी। भग निर्ग में कहाँ है कामाख्या का स्नैग्ध्य रूप? कैसे सृष्टि का सृजन कर्म्य संपादित करती है वह आद्या माँ? कामाक्षी ने

अपने अन्तर्मन में घूर्मिणा कर रहे अनेक प्रश्नों को सहज और निःसंकोच प्रकट कर दिया।

"तुम्हारी निश्छलता, सरलता और बाल सौलभ्य पर आश्चर्य है कुमारी। इन प्रश्नों के समुचित उत्तर मेरे पास हैं। सामान्यतः इन प्रश्नों के उत्तर स्त्री को कालानुसार स्वयं ज्ञात हो जाते है फिर भी अंश रूप में मैं अवश्य तुम पर प्रत्यक्ष करूंगी। इन प्रश्न सिद्धि हेतु तुम श्वस् दिवस के निशीथ काल तक प्रतीक्षा करो।" लोलापा ने कुछ निर्णय लेते हुए कहा।

कामाक्षी के मुख पर प्रसन्नता का सूर्योदय हुआ, हत्चेतन ज्ञात सुख से परिपूर्ण हो उठा। पताका और मेखला सोच रहीं थी कि क्या इस ज्ञान-विज्ञान की अधिकारिणी मात्र कामाक्षी ही है। उन्हें चिन्तासुर देख लोलापा सस्मित बोली-

—"कुमारी मेरे द्वारा प्रदत्त ज्ञान को तुम पर भी प्रकट करेगी, निश्चिंत रहो।" कहती हुई वह आज की शिक्षा वार्ता को समाप्त कर उठ खड़ी हुई।

पाटल कान्ति से संपूरित मृदुलास्तरण पर लेटी हुई कामाक्षी की शुच्यावरित मुखच्छवि पर विभिन्न चिंतन भंगिमाओं का प्राचूर्य सम्मर्द एकत्रित था। निशीथ बेला आ गई पर निद्रा नहीं। कुमारी अपने संविदाकाश में कभी कामाख्या के पाषाण विग्रह की दीप्ति का दर्शन करती तो कभी कभी चिदाकाश के प्रस्तारित वक्ष पर स्वप्न पुरूष की मेघभूति छवि का ज्योतिस् दर्शन।

उसका उत्सक मन अनंतवज्र द्वारा लिखित-रचित चित्र दर्शन को आतुर हुआ। शयनकक्ष के सुरक्षित स्थान पर वह चित्रपट्ट रखा था। वह आस्तरण से उठी और चित्रपट्ट उठाया, वस्त्रावरित पट्ट को अनाकृत किया। स्वप्नपुरूष की रोचिस् दीप्ति से उसका अक्षि देश धन्य हो उठा। कर्णेन्द्रियों में अनंतवज्र का स्वर नाद अनुगूंजित होने लगा-

—"ये मेरे पूज्य श्री गुरुदेव मत्स्येन्द्र नाथ हैं।"

—"मत्स्येन्द्र नाथ" हटात् उसके अधर स्फुटित हुए और ध्वनि का मन्द उद्ध्वनन् हुआ। वह अभिनिविष्ट दृष्टि और उद्गाढ़ भाव से तन्मय होकर उस चैत्रिक सुषमा से मण्डित पौरूष सर्ग को निहारने लगी।

चित्र स्वामिन् उसके स्वः श्रेयस मन और प्रमदा शेमुषी पिधानपटल पर अनिस्तीण रूप से अंकित होने लगा। शनैः शनैः उसकी प्रज्ञप्ति ध्यान शुभ्रा

शुक्लालोक में स्थित होती जा रही थी, देह चेतन की समग्र रस चेतना प्राण के साथ संगति कर ऊर्ध्व हुई। यह पादनख क्षेत्र से आरम्भ होकर अन्य आधारों का वेधन करती हृत्दल तक सुआगत हुई। आनन्द के आसार वर्षण से कामाक्षी के पद्म पलासित सुषमा को लज्जित करने वाले चारू लोचन मुंदने लगे! निमुंदता के उस पार भी वही कौलेन्द्र मत्स्येन्द्र का सौदामिनालोकी रूप सर्वशस् दिक् क्षेत्रों में समाविष्ट था।

विभावती कुमारी कामाक्षी के हृत्पद्म मे विभ्राज् प्राण, घी देवी की दिव्यता की संयुति से उत्फुल्ल हो और अधिक ऊर्ध्व हुआ। चेतन बद्धः ज्ञानचक्षु के प्रदेश भ्रूमध्य भवन में विश्राम करने लगा। कामाक्षी का चक्षु क्षेत्र विस्तारित होता गया। अक्षि के भूरीय विलोकन में वह उत्तुंग तुषार पति की तुहिन पूर्ण पार्वत्य प्रभा के उच्छ्रंक-उत्थान का भव्य दर्शन कर रही थी।

शुभ्र कैलाशी हिमोज्स्व की अधिपत्यका से प्रत्यन्त पर्वत उपपत्यका की ओर सत्वर गति को मूर्त रूप प्रदान करता विशालकाय धवलवर्णी महावृषभ अपने पद नखों की तीक्ष्णता से हिमकणों को उछालता, उतर रहा था। इस प्रकार की वलक्षाभा से शोभित वृषभ उसने इसके पूर्व कभी नही देखा था। दीर्घ पूंच्छ और तीक्ष्ण शृंगों को गगन दिक् में उठाए वह अर्जुन वृषभ एक हिम स्तूप के समीप आकर स्तूणच्छादित हिमावरण को अपने श्रृंगों से हटाने लगा।

नीरजनक के आवरण से प्रमुक्त होते ही वह स्तूप, अर्चिस पिण्ड के समान अपनी अरूण-छुरणाभा से चमक उठा। कञ्चन वैश्वनारी पिण्ड की तीव्र द्युति मन्द होने पर कामाक्षी ने उत्तम पुरूष के निर्णेकित स्वरूप के दर्शन किए। उसके विजिज्ञासु मन ने विस्मयभूत हो स्वयं से ही प्रशन किया-

-"रे कौन है यह? कोई प्रत्यन्त पार्वत्य का नर रूप अथवा तुषार्द्रि का ही अनिभृत, अयोनिज पुरूष?"

अर्चिस पुरूष उठा, उसने कर बद्ध मुद्रा से महावृषभ का स्तवन किया और अम्बरी उन्नत्ति की ओर दृष्टि उठाई। निमिष काल में नेत्र बन्द हुए-जैसे वह अपने सिद्धिजनित बल का स्मरण-आह्वान कर रहा था। अकस्मात् वह हिमपूरणी जगती के हिम-आंगन से, गगन की उच्चत्तम वातायनी में उछला और विद्युल्लेखा के समान चमकता नभायन में सतंरित हुआ! कामाक्षी के नेत्र खुल गए। ओह! कैसा अद्भुत स्वप्न था।

अचानक उसका शयन कक्ष दिवाकर की उद्रीप्ता से भास्वर हो उठा। जैसे अर्कपति का स्वयं अवतरण हुआ हो, विद्युदुन्मेषी विद्युज्ज्वाला की ही समग्रता का प्रकटीकरण हुआ हो अथवा महायोनि की लेखराजि में वसित महाविद्युल्लता के प्रकाश की सकल दीप्ति छटा ही कक्ष में संवृत हुई हो।

वह प्रकाश-संश्लिष्ट पुरूष जो हिमाच्छादित उपपत्यका में उसके नेत्र सुख का कारक बना था, उसके कक्ष में सदेह उपस्थित था। कामाक्षी के सुकुमार नेत्र उसके महातेज को नहीं सह सके, उसने अपनी लोचन राशि को पलक-कपाटों से छादित कर लिया।

आगन्तुक प्रकाश पुरूष ने कामाक्षी के मृदुल-मनोहर, स्निग्ध गात्र को अपने अजानुबद्ध बाहों में उठा कर उसके स्वर्णिम् ललाट पर दीर्घ चुम्बन लिया और अपनी पवित्रता को मुखर करता हुआ वात्सल्य स्वर से बोला।

-"मेरी आत्मरूपा पुत्री, मेरी पुनीतता से सृजित सुता, मेरे संमोह की विभाल्लता। मैं ही तेरा जनक हूँ। मेरे परमेष्ठिन के आज्ञा से अपने मोह संवेग का स्मरण कर मैं तेरे आत्मोत्थान और अपने वात्सल्य कर्म से मुक्ति के हितार्थ उपस्थित हुआ हूँ।" अपने नेत्र पटल खोल कन्याकुमारी।"

उसके जनक, उसके पिता! कामाक्षी ने नेत्र खोले। उसने अपने पिता का अतीत में कभी दर्शन नहीं किया था। जब वह गर्भ वासिनी थी तभी उसके पति अपनी ईष्टाज्ञा से हिमालयीन आश्रम में उच्चसाधना हेतु गमन कर गए थे।" यह बात उसे उनकी जन्म जननि माता ने कही थी! कामाक्षी को गहन-सघनानुभूति हो रही थी जैसे वह ग्रीष्मातप से संतृस्त हो सघनपाती आम्र कुंज की छाँव में आ बैठी हो। उसका समस्त पुत्रित्व तरल होकर पिता की सुखसर्गनी उत्संग धरा की वात्साल्यी गंगा की पुण्य वारि में एकरस होने अत्यातुर हो उठा।

-"प्राण का स्थिर साधन कर पुत्री। प्राण ही ऋभु है, निर्जर है, त्रिदश है। प्राण, वायु देव के दिव्य संसर्ग से दीर्घ होता है, दीप्त होता है।" प्रकाश पुरूष का उल्लासित स्वर नाद रूप में कण्ठ से निकला!

-"प्राण क्या है पितृ देव। वह वायु त्रिदिवेश से किस प्रकार संश्लेषित होकर श्रेयशःप्रद होता है? कृपया सदुपदेशित करे।" कामाक्षी ने की चेतना में संवृद्धन हुआ।

प्राण अदृश्य, संस्कृत सत्ता हैं, जगत्संसृति का सचेता है। वही शिव है और

'वायु' उसकी एकमेव शक्ति। दोनों की संयुति संसारमार्गी अंगों का आलम्बन पा अधोपात से सृष्टि रचती है, और ऊर्ध्वालम्बन से मुक्ति। इस आराधन के लिए मुझे वायुदेव के स्थूल विग्रह को तुष्ट करना आवश्यक है, उनकी संतुष्टि के हित पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का साधन प्रथम पद है। ब्रह्मचर्य से ही कामाख्या प्रसन्न होती है इसलिए ब्रह्मचारी की कामरूपं है। इस कामरूपम् का प्रत्यक्ष स्वरूप है विबुध वज्रांगदेव। वज्रांगदेव वायपुत्र से अभिहित हैं अतः वे सर्वत्र व्याप्त हैं, वे सर्वत्र व्यापी है इसी कारण रुद्रावतारी, क्योंकि शिव भी सर्वत्र व्याप्त हैं। उनका कपि रूप चांचल्य का प्रतिनिधित्व करता है, वह इसीलिए कि सभी योनियों में कपियोनि ही सर्वाधिक चंचल है। अतः पुत्री तू उस सर्वचरिष्णु का साधन कर। तू महद्दिव्य है, साक्षात कामाख्या ही है, विश्व शर्म्मण के हेतु तेरा अवतरण हुआ है। मैं तेरे काय निर्माण का माध्यम मात्र हूँ, तेरा मूल जनक तो वज्रांग विभु ही है " प्रकाश पुरूष ने अपनी तनुजा को श्रेयश मार्ग का निर्देश दिया!

"मैं किस प्रकार ऊर्ध्वचेता, महोर्जस्विन भगवान वज्रांग-देव का आराधन करूं? उनकी पुण्य संवेदनाओं की प्राप्ति हेतु क्या उद्योग हो? कृपया मुझे उपदेशित कर कृतार्थ करें।" कामाक्षी ने विनयवद्ध हो निवेदन किया।

"इस हेतु मैं तुम्हे संवेदोपदेश प्रदान करूंगा। उस पुण्यचर्या का सविधि पालन कर तू अपने मूलातीत से साक्षात कर सकने में सामर्थ होगी। दस वर्ष तक नियमित साधन-सम्पन्न करने के उपरांत लक्ष्य प्राप्ति होगी। उस मूल मंत्र का उपदेश वैसाख पूर्णिमा को प्रदान करूंगा। अद्य काल से पूर्णिमा के अभ्यन्तर काल में, मैं मूल मंत्र की पात्रता को अर्जित करने हेतु सेतु मंत्र का उपदेश कर रहा हूँ। तू सावधान चित्त और स्थिर मती से उसको श्रवण कर स्वीकार कर।" कामाक्षी जनक ने कहते हुए अपनी स्वजाता को उत्तराभिमुख से पद्मासन में स्थित होने का निर्देश दिया। उसके आसनस्थ होते ही कामाक्षी के कर्ण में उसने मंत्र की स्वर दीक्षा को अपनी बैखरी वृत्ति से उपदेशित किया। त्र्याक्षरी मंत्र (हीं हं हीं) की ध्वनि घोषणा से कामाक्षी का प्रकुल गात्र हर्ष समृद्धित हो उठा।

"इस साधन को गोप्य रखना। अपनी आचार्या और जननी पर भी यह अप्रकट रहे। तेरे द्वारा इस साधन के सम्पन्न होने पर मैं उपस्थित होकर शेषतः पूर्ण करूंगा।"

-"पूज्य पितृदेव। आज कुछ क्षण यहीं उपस्थित रहें, मैं माता को आपके आगमन की सूचना दे दूं। वह अपने सुभद्रतीर्थ का पुण्यदर्शन कर महानन्दित

होगी।" कहती हुई कामाक्षी सत्वर उठी और क्षिप्र गति से अपनी माता के शयनकक्ष की ओर दौड़ी!

द्वार पर नियुक्त प्रहरी सेविकाएं निद्राकल्पाब्धि में डूबी थी, अन्तर्द्वारी कपाट भी अवरूद्ध मुक्त थे। कामाक्षी ने प्रहरी सेविकाओं को नहीं देखा। उसने वायुगति से कक्ष में प्रवेश किया और द्वार से ही हर्षितोच्चार किया!

–"माता.......माता..........।" महाराज्ञी अगाध निद्रा निगम के गुहा भवन में थी, अपनी तनया के कण्ठ से उच्चारित हर्षोल्लसित स्वर को किस भांति श्रवण करती?

कक्ष में मन्दालोकी दीप की क्षीण विभांशु प्रभा का साम्य संचार था पर कामाक्षी......वह संभ्रमित मृगी के स्फारित नेत्रों से उस अकल्पित दृश्य का अभिरम्य दर्शन कर हत्प्रद थी। उसने अपनी 'जननी' के इस विभाज्रकारी[1] रूप भद्र का अपने जीवन मे प्रथमतः भूरि दर्शन किया था।

कामाक्षी के उत्पली नेत्रों में स्फूर्जन्यालोक उदित हुआ। शयन की संवर्तावस्था में तिलोत्तमा का चण्डातक[2] वस्त्र श्रोणि[3] देश तक उठा हुआ था। वह उत्कुट–अवस्था में निद्रित थी।

अचानक.....जैसे, तिलोत्तमा का शम्बारि[4] निलयागन अतिभी[5] की महोज्जवद आभा से दमक उठा हो, जैसे मेचकमणी[6] ही इन्द्रवज्र के ह्रादिन्[7]–आलोक से स्नात हो परमद्रीप्तिन को प्राप्त हो गयी हो। नवविद्रुम के बिम्व के समान निःश्रेयसदात्री जगत्जननी के पाटल[8] पल्लव द्वय और उसके मध्य शम्पालोक से पूरित स्निग्ध कामरेखा की सृति–सुषमा को निर्निमेष अक्षों से कामाक्षी देखती रह गई। इसी सरणी लेखा में समाहित है निःसीम व्योम, वह व्योम जिसमें जीव कायाम्बर को धारण कर, कामराजि पर छादित मृदु पल्लवों का महाविस्फारण कर जगतागमित होता है। यही वह 'एकपदी' है जिससे उसकी मसृण देह का निस्तरण हुआ है। घनमेचक, लोमराशि के गुच्छ मध्य जन्म मोहिनी के जर्तु[9] दर्शन–पर्व में कामाक्षी अपने हेतु आगमन को भी भूल गई।

कामाक्षी को क्षण–प्रति–क्षण गहनानुभूति हो रही थी कि शम्पित[10], मेदुर[11], घनरस सुगन्ध सरित स्त्रावणी, भगाधिष्ठात्री दैव्या के शतह्रदीय तेजस से उसकी समग्र संचेतना एक बिन्दु पर एकत्रित होती जा रही है, मदिरानन्दी सार्थवाह उसकी चिक्कण चिति को बाध कर नूत्राभिमद[12] नद्य में निमज्जित करता जा रहा

है, उसके प्राण उस अभिमद नद्य में समाहित होकर तादृश्य बन गए हैं। वह उसी स्थान पर जहाँ वह खड़ी थी, बैठ गई। उसके नेत्र मुंद गए। कामाक्षी को इन्हीं क्षणों में प्रबल-अनुभूति हुई कि कोई अदृश्य सत्ता ने उसे भूतल से उठा कर आंतरिक्ष में आसनासीन कर दिया है। उसकी चेतना 'महाविविर' में रमने लगी। उस महाविविर में उसके अलोकमय पिता थे, उनकी पुनीत स्मिता थी, उसे प्रदान किए गए मंत्र के बीजाक्षरों का वज्र निर्घोष था और उस निर्घोष से उद्भूत नाद था।

(यह जस का तस अनुभव सुदूर प्रान्त में रह रही, मुझ पर कृपालु 'पूर्वा' दीदी ने प्रदान किया। उनके स्वानुभूत अनुभव दान के लिए मैं उनका आभारी हूँ, और उनके साधिका स्वरूप को नमन करता हूँ। –लेखक)

निशान्त चरण में तिलोत्तमा की निद्रा भंग हुई। कक्ष-गवाक्ष पथ से अनाहूत प्रवेशित सुषीम पवन के तुहिन संचार से वातावरण शीतल हो गया। नित्य के समान अपने ईष्ट का पुण्य स्मरण करते हुए उसने शैया त्याग किया।

निशा का अंधकार अभी भी शेष था, अतः कक्ष में दीप अभी भी प्रज्वलित थे। भूया देवी की मानसानुमति ले, जैसे ही तिलोत्तमा ने भूमि पर अपने चरण रखे, उसकी दृष्टि राजपुत्री स्वतनया कामाक्षी पर पड़ी। यह सत्य है अथवा स्वप्न? पर वह सत्य ही था। कामाक्षी समाधिस्थ अवस्था में स्थिर चित्त से बैठी थी। एकानिर्वचनीय आलोक की ललाम छटा ने उसके मुख वलय को घेर रखा था।

"कुमारी इस कक्ष में? क्यों, किस हेतु सिद्धि के हितार्थ उपस्थित होकर किस प्रकार समाधिस्थ हो गई? अवश्य ही कोई अलौकिक कौतुक घटित हुआ है। तिलोत्तमा ने अति समीप पहुंच कर उसके ललाट का स्पर्श किया। जैसे स्पर्श मात्र से ही उसकी चेतना समाधि कूप से निर्गत हुई हो। कामाक्षी के बन्द पक्ष्म पद्म के समान स्फुटित हुए।

–"माता ऽ.....।" श्रद्धा का अतिवेग स्वर के रूप में उसके (कामाक्षी) कण्ठ से फूट पड़ा। उसके नेत्रों से आनन्दाश्रु वारि स्रिवत हो हो कर उसके आरूणि कपोलों की स्निग्धता को आर्द्र करने लगे। माता ने अतिशय स्नेह से अपनी पुष्पभारित पुत्री की देहरूपी कोमलता को अपने चरणों से उठा कर कण्ठ से लगा लिया।

–"मेरी सुकुमारि लता। बता पुत्री, इस अतिरेक भाव का चित्ताकाश पर, किस प्रकार उदयन हुआ? इस अलौकित वृतान्त को जानने के लिए उत्सुक हूँ।" तिलोत्तमा ने स्नेह से कामाक्षी की अश्रुसिक्त कपोलपाली को अपने आंचल से पोंछा!

क्या वह रात्रि घटित कामाख्या-उद्दीपन के प्रत्यक्ष प्रसंग को सुना दे? कामाक्षी के मन में आडोलन हुआ। हटात उसकी स्मृति में पिता की पुनीत छवि स्मृत हुई। वह हार्द विह्वल से बोली।

–"मात् रात्रि में पूज्यचरण पिता का सदेह सुआगमन हुआ था। उनकी सकल निःश्रेयसी काया प्रकाश का पूर पिण्ड थी। उन्होंने ने ही मुझे स्वयं का परिचय दिया और मैं पितृ वात्सल्य के वारिद स्राव से आप्लावित भी हुई। मैं उनके सरित स्नेह से कृतार्थ हो उनके आगमन की सूचना देने आपके कक्ष में आई। आप निद्रोत्संग में थी, मैंने आपकी जागृति हेतु उद्योग किया ही था कि अज्ञाततः, अनायास ही ध्यानस्थ हो गई।"

"तू धन्य है पुनीता, सकल ग्रह तेरे अनुरूप हुए, अन्तर्यामी प्रमुग्ध हुए। मेरे हृद्पट्ट के आदित्य तेरे पिता का स्मरण ही शर्म्मणकारी है और उनसे साक्षात. ...?....उनसे प्रत्यक्ष साक्षात् तो परमेष्ठिन-परिणयन है।" तिलोत्तमा का हृत्पद्म अपने स्वामिन्-आगमन के समाचार से गद्-गद् हो उठा।

–"क्या वे अधुनाकाल में भी, तेरे कक्ष में उपस्थित हैं?" तिलोत्तमा ने अपनी तनया ने प्रश्न किया।

–"यह अज्ञात है माता।" कामाक्षी ने उत्तर दिया।

दोनों मां-पुत्री सत्वर गति से चलती उस कक्ष में पहुंची जहाँ कामाक्षी के पिता उपस्थित हुए थे, पर अब कक्ष में रिक्तता थी। प्रत्यक्ष था कि वे अपने स्थान को प्रस्थान कर चुके थे। कामाक्षी की दृष्टि स्वर्ण फलक पर पड़ी जिस पर कुछ आभूषण और योष श्रृंगार की वस्तुएं क्रमशः सज्जित थी।

फलक पर पुष्पार्ककोषिणी[13], कज्जल, अबीर, सिन्दूर, रत्नखंचित चूलिकाए[14], हेमहार[15], अंगुलीयक[16] इत्यादि सामग्री उपस्थित थी। ये सर्व सामग्री इसके पूर्व इस कक्ष में नहीं थी, अतः स्वतः सिद्ध हुआ कि ये मुग्धाओं की सज्जा सामग्री कामाक्षी के पिता ने ही प्रदान की थी। तिलोत्तमा ने अपने प्रिय प्रदत्त वस्तुओं को श्रद्धा और प्रसन्नता से ग्रहण किया।

–"देख तो पुत्री हम महिमामयी, सुभगधारिण्यी[17], सलिलस्त्रावणी[18] वनिताओं के सांवृत्तिका[19] कर्षण का प्रभाव। संन्यास धार्य्य जीव और सहोर[6] पुरूष भी हमें बहुविध रूप से उपकृत कर हमारी शोणिती माया में संलिप्त होना, सौभाग्य मानते हैं।" तिलोत्तमा वातावरण में छा गई गम्भीरता को हास्य-परिहास से क्षीण करना चाहती थी, इसलिए स्मित वदन से बोली। कामाक्षी के अधर पल्लव भी स्मित से स्फुरित हुए।

प्रत्यूष की विभामयी पुण्य बेला के लगभग दो घड़ी पश्चात्। मयूख पति की लोहिताश्व रश्मियों में वैश्वानरी ऊष्मा तीव्र होने लगी थी, पर वह ऊष्मा भी देहभावन थी क्योंकि उसमें दाहक गुण नहीं था। लोलापा का रन-मन पूर्णतः स्वस्थ्य नहीं था, सो उस दिन विद्या अध्ययन कार्य स्थगित था, अतः तीनों सखियां ध्यान, पूजादि सुकृत्यों से निवृत हो पुष्पवेश्यन्[21] में आ गई।

कामाक्षी का प्रमुद गात्र शात गम्भीर था। कुसुम[22] सद्मन की सौरभ वाहिनी वात सुख का आनन्द लेती तीनों कुमारिकाएं प्रसून[23] पुरी में भ्रमण कर रहीं थी। कामाक्षी का मौन और गाम्भीर्य पताका को असह था, वह सदैव उत्फुल्ल पद्म की भांति प्रफुल्लित रूप की ही वांक्षिणी थी।

–"सखि, पताका क्या तूने कभी प्रकृति की तद्रूपा नारी का रजस्त्रावी[24] उत्तमांग के हार्द दर्शन का सुखानुभव किया है।" अन्ततः कामाक्षी का मौन विशीर्ण हुआ।

पताका और मेखला दोनों की लावण्यपूरित मुखच्छबि पर प्रमोदावतरण हुआ। उन दोनों में सहजोल्लास के अरूण देव उदित हुए। पताका ने मुग्ध गिरा से रसोच्चार किया।

–"हाँ, कुमारी मैने उस मसृण[25] वीथी का प्रसन्न दर्शन किया है। विगत मध्याह्न काल में मैंने सप्तवर्षीय बालिका की रोचिस आवलि[26] को प्रत्यक्ष देखा था।"

–"अरी, निःसंज्ञेय, बुद्धिहीना पताका, कुमारी का आशय ऐसे दर्शन से कदापि नहीं। क्या तूने स्वयं के सृष्टि-उद्भूत अंग का दर्शन किया है?" मेखला ने अपना बुद्धि चातुर्य प्रदर्शित किया।

–"हाँ.....हाँ.....पर....उस पुटभेदन की लोक[27] सृति-समग्रता पर दृष्टि ही

नहीं जाती मैंने वीकाश क्षणों में बहुविध दर्शन प्रयास किए। पताका का निश्छल, सरल स्वर श्रवण कर कामाक्षी हँस उठी। उसकी धौत शाम्येयी दन्त पक्तियां हास्य कारण से दमकी। पताका के भोले-भाले सुख पर क्षणाश्चर्य मण्डित हुआ। अचानक उसकी मुखच्छवि पर प्रसन्नता का द्वीपन हुआ, जैसे विषम समस्या से मुक्ति प्राप्त हुई हो। उसने प्रसन्न वरण स्वर से कहा-

-"इस समस्या का समाधान सहजतम है। चलो सघन गुल्म वीथी में, वहाँ पूर्ण एकान्तिका है। इस परस्पर एक द्वितीय के श्लक्ष्ण[28]-श्वभ्र की सुचारूमयी कमनीयता का दर्शन कर अपनी-अपनी अभिलाएं सम्पूर्ण करें और परम सुखदायी अनुभूति भी।" पताका के विचित्र प्रस्ताव पर मेखला का मेदुर[29] मुख व्रीड़ा से अरूण हो गया वही कामाक्षी का हृद्‌पद्म तीव्र गति से स्पंदित हो उठा।

तीनों वामोरु किशोरियां सघन पाताच्छादित गुल्म वीथी के अन्तर्भाग में पहुंची। यहाँ वानस्पत अंशुकान्त[30] के निरिंगिण[31] से वह सुरक्षित निर्ग, वाह्य क्षेत्र से दृष्टिगोचर नहीं होता था। सघन कुंज की शीतल छाँव में एक-द्वितीय को निहारती तीनों कुमारियों के भाल पटलों पर श्वेद बिन्दुओं की शुभ्र रेखाएं उभर आई।

"चलो, अद्य काल मे यह निरीक्षण स्थिगत कर कभी भविष्य में.........।" कामाक्षी के शोणाधरों से सकम्प स्वर निकला।

"नही राज्ञकुमारी यही यथेष्ट-अवसर है, जिसमें हमें दार्शनिक तृप्ति सहज ही प्राप्त हो सकती है।" पताका की वाणी में अधृति[32] का प्राचुर्यभाव था। "सर्व प्रथम मैं ही अपने कुसुमस्त्रावी[33] अनंग[34]-क्रीड़ांगन को अनावरित करती हूँ।" कहते हुए पताका ने कटितट से पाद पर्यन्त निभृत[35] वस्त्रावरण को पृथक कर दिया।

कामाक्षी ने कपिलवर्णी केशांकुरों के मध्य मन्दारुणीबुलिप्रभा को अत्यन्त गम्भीर और सन्धानक दृष्टि से देखा। पताका ने अपने हस्तांगुष्ठों की सहायता से अपनी प्रसीदिका[36] के स्मरन्ध्राच्छादित[37] पाटल पत्रों को विजृम्भित[38] किया, निगूढ़[39] मदिर[40] गुहा का हत्‌निर्धाती[41], निर्णेक[42] रूप प्रकट हुआ। कामाक्षी ने पुनः पुनः उस गोप्य[43] पुरी को देखा पर जिस स्वरूप का दर्शन उसने अपनी जननी तिलोत्तमा के कक्ष में प्राप्त किया था, वह पुनः दृष्टि पथ में नहीं आया।

द्वितीय क्रम में उसने मेखला केन्द्र को भी देखा पर वह भी सामान्य ही था। और अब तृतीय क्रम कामाक्षी के मदन-स्फीत अंग दर्शन का था। महाव्रीड़ा

के अरूणोदय से उसका सकल गात्र अरूणाभा से ओत-प्रोक्त हो उठा। उसने अपने सुकोमल करतलों में मुख सुषमा को छिपा लिया और अंगुली छिद्रों से पताका तथा मेखला की क्रियाओं को देखने लगी।

कामाक्षी के दक्षिणावर्त नाभि मण्डल के अधोप्रान्त में हिरण्यवर्णी, अतिस्निग्ध, लोमराशि की आंशिक उपस्थित थी। प्रथम द्रष्टयः वह निर्ग[44] निर्लोमस की प्रतीति कराता था। अश्वत्थ[45] पत्राकार के समान, रूचिरावरित[46] परिमृष्ट[47] योनि मण्डल का अद्‌भुत दर्शन कर मेखला और पताका स्तब्ध, चित्र लिखिता के समान स्थिर रह गई।

अचानक जैसे ऐरावती का तडित-आलोक कुंज में प्रकट हुआ हो उस महा-आलोक स्फार को स्वयं कामाक्षी ने भी देखा और अपने करतल-आच्छादन को पृथक किया।

उधर उस 'आलोकरात्रि' में पताका और मेखला दिव्य दर्शन हो रहा था। प्रथम उन्होंने वृत्ताकार अष्टदल पद्‌म देखा फिर आग्नेय आदि कोणवर्ती दलों में ललिता, सुभगा, गौरी और क्षोभणी शक्तियों का दर्शन किया फिर पूर्वादि दलों में वामा, ज्येष्ठा, क्रिया और ज्ञाना को देखा।

पद्‌म सत्ता के अभ्यन्तर कक्ष में लावण्य और दिव्य यौवन कान्ति से पूर्ण अष्टादश भुजधारिणी महादैव्या को शुद्ध रूप शंकर सहित स्थित देखा। यद्यपि दोनों कुमारियां शंकर की संज्ञा से अपरिचित थी फिर भी उनके अन्तर्यामी संवेश देव को शंकर का अभिज्ञान था!

सिहारूढ़ दैव्या की अष्टादश भुजाओं के नव दक्षिण भुजाओं में स्त्रक् (हन्), अक्ष, सूत्र (पाश), कालिका, मुण्ड, उत्पल, पिण्डिका बाण और धनुष थे। वाम नव भुजाओं में पुस्तक, ताम्बूल, दण्ड, अभय, कमण्डलु, गणेशजी, दर्पण, बाण और धनुष अस्त्र-शस्त्र शोभित थे। त्रिनेत्रा महादैव्या के दिव्य अंगों से उद्‌भाषित आलोक से समस्त कुंज तीव्रोष्मा से दाहित हो उठा। कुमारियाँ द्वय की प्राणवायु अवरुद्ध होने लगी, उनका लावण्य निर्गी देह दैव्यातप से दग्ध होने लगा जबकि कामाक्षी स्वयं को तुषारार्द्रि कैलाश की तुहिन रम्यता में आत्म रमण कर रही थी।

पताका और मेखला के मुखों पर पाण्डु छादन होने लगा पद्‌म नेत्रों में भय विजडित होने लगा। वे मद्‌पायी के समान कम्पन को प्राप्त हो गई। दोनों ने भयाक्रान्त हो चीखना चाहा पर स्वर कण्ठ से निर्गत नहीं हो सका।

–"क्या हुआ सखियों। तुम्हारे मुखों पर भय का राक्षसी आतंक क्यों नृत्य कर रहा है?" कामाक्षी उनकी अवस्था देख कुछ विकल हुई। उसका वाक् ध्वनन होते ही शुभ्रालोकी माया ऐन्द्रजालिक कृत्य की भांति विलुप्त हो गई। जैसे ही वह महा–आलोकी सत्ता लुप्त हुई, वातावरण सामान्य हो गया। पताका और मेखला धरातल पर बैठी गहन श्वसोच्छ्वास ले रही थी, उनके नेत्रों में अभी भी आतंक की छाया थी।

"क्या कारण है मेखला? ऐसा क्या घटित हुआ जो तुम्हारे गात्र भय से पाण्डुर हो गए?" कामाक्षी ने पुनः अपना प्रश्न दुहराया!

–"ओह! कैसा विचित्र! कैसा अभूतपूर्व दर्शन!! कैसी अत्युद्भुत आलोकमय दैव्या की सृष्टि!!! हम उसी अष्टादश भुजधारिणी के तेजातप से भयभीत हो गई थी कुमारी। क्या तुम्हें उस महादेवी का दिव्य दर्शन नहीं हुआ? पताका ने साश्चर्य दृष्टि से कामाक्षी को देखते हुए कहा और उसके चण्डातक वस्त्र को यथास्थान सजा दिया।

"पताका हमारी सखि सामान्य मानवी नही साक्षात शक्ति का द्युति–रूप है। मैं इसके पाद पद्मों में स्वयं का उत्सर्ग करती हूँ!" श्रद्धा के महाभाव से आवेशित हो मेखला लकुटिवत कामाक्षी के चरण युगलों में गिर पड़ी।

–"तू गौरी है, तू ही कल्याणी, तू शिवा है, तू ही नारायणी। इस देश की अधिष्ठात्री महादेवी जगत्प्रसूः कामाख्या का तू ही स्वच्छालय है। मैं तेरी शरण हूँ।" मेखला ने अपनी भांवभिव्यक्ति स्तवन रूप से प्रस्तुत की।

–"तू धन्य है, मेखला, अद्भुत है तेरा अभिज्ञान। मैं भूरि प्रसन्नता से परिमुग्ध हूँ, पुत्री।" कहते हुए लोलापा ने पुष्प निकुंज में प्रवेश किया।

–"आप!? आचार्या! आप तो अस्वस्थ्य थी।" कामाक्षी ने चकित होते हुए कहा और अपने चरण देश में पड़ी मेखला को उठाया।

–"मैं आचार्या हूँ देवी कुमारी। अपनी शिष्याओं पर ज्ञान दृष्टि रखना मेरा अनिवार्य और नैतिक दायित्व है। यह सत्य है कि मैं कुछ अस्वस्थ्य हूँ। मैंने यहाँ उपस्थित होकर तुम्हारी विजिज्ञासाओं के शमनोपक्रम को स्पष्ट देखा, परीक्षण किया और जाना कि अब तुम्हें अन्य शास्त्रों के समान ही कामशास्त्र भी अपेक्षणीय है। मैंने तुम्हारा कोटवी[48] स्वरूप देखा और कुमारी कामाक्षी की निर्चिुकुर[49] मनोज्ञमणी[50] का कृत्स्न[51] पर ईषत[52] दर्शन कर स्वयं को अहोभाग्या

माना, मेरी स्पृहा[53] उस कुसुमस्त्रावी[54]-विभूति[55] का दर्शन कर धन्य हो गई।" आचार्या लोलापा ने अपना मनः वक्तव्य कथन करने में संकोच नहीं किया। तीनों कुमारियां अपने गोप्य रहस्य इस प्रकार उद्घाटित होते देख लज्जा से भर उठी। वे तीनों लोलापा का अनुगमन करती उसके पीछे-पीछे चल पड़ीं!

ईरण[56] निशा के एकान्त-अवसर में कामाक्षी ने अपना मनोभिलाष अपनी माता पर प्रकट किया। अशेष दिवस वह अपने पितृ के उपदेशों पर मनन-चिन्तन करती रही थी। माता से हर्षानुमति प्राप्त कर घनसार[57]-असृग्धरा धरित्री कामाक्षी ने प्रश्न किया।

—"पुण्यमूर्ति माता वज्रांग देव, का मनोज्ञ कलेवर क्या है? वे किस तत्व के प्रतिनिधि है?"

अपनी स्वजात् पुत्री के प्रश्न पर तिलोत्तमा चौंकी फिर बोली-

—"निष्वृजिन[58] तनुजा, यह प्रश्न दीप तेरे चिताकाश के विस्तार में क्यों-कैसे उदय हुआ। संभवतः जनक सम्मिलन के कारण ही तेरी श्रेयसीः चिति ने इसे ग्राह्य क्रिया है? अस्तु जो भी हो, मैं यथामति-अनुसार इस तत्व विषयक आलोच्य कथन करती हूँ, श्रवण कर।" तिलोत्तमा ने अपनी पुत्री के सुमनस्[59] वपुस को शोभन दृष्टि से देखते हुए अपना दर्शन व्यक्त किया।

"वज्रांग तत्व वीरासन[60] से जाग्रत शिव का सैष्ठ्रेय स्वरूप है। वह निर्भय, निष्कलुष और निःशेष सत्ता का असृज्[61] जात स्फटिक से शुभ्र रेतस् का पुण्य भण्डारण है। यह शुभ्र रेतस, वायु की समीचक[62] क्रिया से अकल्काकल[63] रूप को धार्य कर ब्रह्मयोनि का भेदन करता है। वहाँ उसके अभिहोम[64] से समुत्पन्न शक्ति को प्राप्त कर प्राण विभाज्ञ राज्य में निवासित महा अधोरेश और महा अधोरेशी के अभिमर्शानन्द[65] में विलय हो जाता है। यही वज्रांग-कलेवर है। अब उस तत्व का वर्णन सुन जिसका प्रतिनिधित्व वज्रांग देव करते हैं।" तिलोत्तमा एक क्षण रुकी फिर पुनः मुखर हुई-

—"वायुतत्व का प्रतिनिधित्व करते हुए वज्रांग का स्वरूप आकाशमय है। कामाख्या भी आकाश तत्व की प्रतिनिधि सत्ता है। अतः वज्रांग और कामाख्या तत्वतः अभिन्न हुए।"

लेखकीय टिप्पणी–आकाश में अपरिमित विस्तार होता है और हनुमान का 'हँ' बीज उनकी आकाश तत्व से अभिन्नता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। जिस प्रकार आकाश महाविस्तारी होता है वैसा ही महाविस्तार योनि देवी (कामाख्या) में भी है। अतः हनुमान और कामाख्या समान (गुणधर्मा) हुए। देह में जहाँ-जहाँ रन्ध्र हैं वे सब आकाश तत्व से पूरित हैं। योनिरन्ध्र महारन्ध्र है अतः वह स्थान पूर्णतः आकाश तत्व से वेष्ठित है। योनि से शोणकुसुम स्राव होता है उसके पश्चात् ही नारी गर्भ धारण की पात्र बनती है। इसी प्रकार अध्यात्म का राजस (आरक्त) उत्पन्न होने पर हनुमत तत्व उत्पन्न होता है। वह राजस तत्व श्री राम भगवान का साम्य रूप है। राम के अवतरण के पश्चात ही हनुमद्-आगमन होता है और फिर इसके बाद सकल ज्ञान सृजन। योनि से रज का स्राव 'अग्नि' का तेजीय तत्व है जो लोहित वर्ण (रंग) से सिद्ध है और प्रभु रामचन्द्र भी सविता वंशज है जो जातवेद का महाभण्डार है। अतः राम की शक्ति का तरलीय स्राव कामाख्या से होता है और राम की शक्ति का एक अभिन्न रूप हनुमान भी हैं। हनुमान का रंग भी लालिमा प्रधान है। यहाँ राम की शक्ति (हनुमान) वज्र रूप में ऊर्ध्वगामी होकर (अमोघ वीर्य के रूप में) अध्यात्म ज्ञान का सृजन करती है और राम की ही अन्य राजस सत्ता तरल रूप में योनि प्रक्षरित होकर सृष्टि सृजन कर्म।

कामाख्या और हनुमान दोनों में महाविस्तार का समय गुण है, दोनों ही सवर्ण हैं, महाव्योम है, दोनों ही सृजन कर्मा है। योनि देवी वीर्यवान से परम प्रसन्न होती है तो महावीर हनुमान वज्रांग भी (अनुभव में आया है कि मुक्ति हेतु महादेवी योनि की आराधना ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर ही सफल होती है। योनि में वीर्यपात अधःगति और अतीव स्तंभन सायुज्य लाभ। सायुज्य लाभ ही मुक्ति किंवा मोक्ष का अब्ध है।

वज्रयान में 'वज्र' को लिंग और योनि को पद्म कहा गया है। हनुमान के लिए प्रयक्त वज्रांग-शब्द भी कुछ यही इंगित करता है। लिंग की वास्तविक संज्ञा "सम्पूर्ण प्रहर्षण से युक्त" है और सम्पूर्ण प्रहर्षण वीर्यवात की अवस्था में असंभव है। कुणपावस्था युक्त लिंग (शव के समान) योनि देवी को प्रयोजनहीन है।

वजांग-तत्व निष्खण्डता का आलम्बन कर वात्यारूढ़ हो ऊर्ध्वगमन करता है और कामाख्या, बिन्दु में सिन्धु को प्रकट कर विशीर्णगुणी होकर जगतावतरित होती है! इस भांति अपनी अनेक तद्रुपाओं का सृजन महोदवी है। बिन्दु की विशीर्णता ही कामाख्या है और बिन्दु की कृत्स्नता वज्रांग। अतः बिन्दु की महोपासना ही वज्रांगोपासना है और वज्रांगोपासना में ही कामाख्या की सुकृपा।"

अपनी माता के द्वारा प्रदत्त तत्वोपदेश से कामाक्षी का अन्तर्मन मुग्ध हो उठा। पूर्व से वह यह श्रुति रूप में सुनती आई थी कि महाकपीश के गर्जन मात्र से त्रिया निर्ग की स्त्रियां आपन्नसत्वा के रूप को धारण करती हैं। प्रतिदिन मध्य रात्रि बेला में परम वीर महासुभट हनुमान् आकाश पथ से कामरूप नगरी के ऊर्ध्व आंतरिक का उल्लंघन कर निकलते हैं। उनकी पौरूष श्वसन शक्ति से सृजन और हुंकार शक्ति से नर मात्र का हनन होता है। श्रुति रूप मे इस मिथक का रहस्य कामाक्षी ने तत्वतः अपनी माता से प्राप्त कर हर्षोत्सव मनाया।

उसे ज्ञात हो चुका था, वीर्यवान पुरूष ही कामरूपणियों की सहवास संगति में जीवित रह सकता है, निर्वीय पुरूष तो स्वयं स्त्री के समान है अथवा त्यक्तप्राणी के समान। उसे हनुमत श्वसन का रहस्य भी ज्ञात हो गया-स्पष्ट था कि वीर्य ऊर्जा को श्वास (वायु) बलात प्रक्षेपित कर योनि नलिका से कुक्षि क्षेत्र में स्थापित कर संसार सृजन के कर्म सम्पादन में सहायक होता है।

कामाक्षी ने दृढ़ निश्चिय से संकल्प किया कि आज अर्द्ध रात्रि से ही अपने पिता-प्रदत्त विधानानुसार मंत्र जपश्चर्या का क्रम-प्रारम्भ कर देगी। अपनी माता से अनुमति ले कामाक्षी अपने कक्ष की ओर प्रस्थित हुई, उसी समय आचार्या लोलापा ने वहाँ प्रवेश किया।

अभिवादन-आदि की औपचारिकता का उत्सर्ग कर लोलापा ने प्रसीदिका घटित सकल वृतान्त सुनाते हुए कहा-

-"महादेवी आज कुमारी के भवप्रसूः, कुसुमेषु प्रांगण पीठ की परम गोप्य गुहा से जिस महालोकी ऊर्जा का उदभ्रवीकरण देखा वह अपूर्व है, अकथ्य है। कामाक्षी के पुण्य वपुस् में राजेश्वरी कामाख्या का ही अवतरण हुआ है।"

"तू सत्य सत्य है सखि। मै सहमत हूँ।" तिलोत्तमा ने उत्तर दिया। फिर वह दोनो मन्द स्वरों में परिचर्चा करती रही। चर्चा का केन्द्र कामाक्षी ही थी। कामाक्षी चर्चा के पटाक्षेप के पश्चात् तिलोत्तमा ने स्वयं संसाधनों से एकत्रित "अनंतवज्र की महत्वपूर्ण सूचनाएं लोलापा पर प्रकट की। इन संसाधनों के मूल में थी

तिलोत्तमा की चेतना, उसकी साधनाजनिक शक्ति पूर सिद्धियां। सिद्धि नेत्रों के साक्ष्य में जो अनंतवज्र वर्णन दृष्ट हुआ वह................।"

शार्वर निशा के घनतमिस्र परिवेश मे निमज्जित महाकाल वन का नित्य चित्याक्षेत्र![3] स्थान-स्थान पर बृहद्भानु की वैश्वानरी असृग्धाराधारिणी चिताओं की गगनगामी शिखाओं के ज्वलन से महा श्मशान दह-दह कर रहा था। कहीं-कहीं श्मशानी भूतल से धन कद्रुवर्णी धूम, अर्द्धदग्ध चिताओं से कुण्डल वलयों के रूप में उठ-उठ कर ऊर्ध्व अंतरिक्ष को घनघूरार कर रहा था। मानव अस्थियों के लिए लड़ते-संघर्ष करते श्वान-श्रृंगालों का चीत्कार और निशाचर वायसारातियों के धूत्कार से महिमण्डल फटा जा रहा था। श्मशानी संचारी वात्या दग्ध चिताओं से, अर्द्ध दग्ध शवों से अभिमर्षण करता, उनसे क्रूर-कराल कुवास को आहरित करता भूतल ही नहीं नभोमण्डल को भी दुर्गन्धि से परिपूर्ण कर रहा था।

एक चिता से कुछ श्मशानी भस्मास्तरण पर एक कापालिक और श्यामा लावण्य से संपूरित श्मशान भैरवी मिथुनयाग में डूबे थे! भस्म मण्डल में ही मदिरा घट, कपाल-पात्र, महाभास के शकल तथा अन्य उपकरण फैले हुए थे। श्मशान भैरवी अपनी ललितकाय के विकट अंग विन्यास को विभिन्न मुद्राओं में प्रस्तुत करती, वह पुनः पुनः अपने उत्तम्भित कुटिल कुन्तल संभार को सकौतुक व्यवस्थित करती, भस्मलिप्त पीनोत्तुंग स्तनों के प्रकृष्टाभिमर्दन के लिए कापालिक के कठर करों को बलपूर्वक थाम कर स्तनों पर स्थापित करती फिर उसके महामर्दन से उत्पन्न प्रौढ़ राग की काम-ऊषा उसके मनोहर देह को काम कंटकों से आच्छादित कर देती।

कभी वह दिक् वस्त्र धारिणी भैरवी उत्कुटासन में कामदग्ध देह को स्थापित करती, कभी धनुर्रासन में। ऐसे आसन में कारण वारि के मद से अभिमादित कापालिक भैरवी की कामनगरीय लेखा का सुराभिशेष करता, सुराभिसिंचत प्रषत् कणों की जिह्वा से चाटन क्रिया करता, भैरवी इन्द्रियानन्द की प्रागाढ़ तन्मयता से कटाक्ष विक्षेप कर भ्रूचालन करती हुई अपने श्रोणि क्षेत्र को पुनः पुनः ऊपर उठाती जिससे मदोन्मत्त कापालिक की पञ्च शरविद्ध वृत्ति गाढ़तर राग से परिमुग्ध हो उठती, भैरवी के कण्ठ से अनंग सीत्कार उठता और आरक्तायत नेत्र अभिमाद से चटुल चेष्टाएं करते। मध्य-मध्य में वे दोनों कपाल-पात्र से सुरा देवी का अभिपान करते, महामास के भुने हुए लखणस्वादी शकल भक्षण करते और अपने मिथुन याग में पुनः सक्रिय हो जाते।

इसी भांति श्मशानी शिखाओं के आलोक में अनेक कपालधारी साधक अपनी अपनी शक्ति द्वारा साधिकाओं के साथ भैरवी अर्चन सम्पन्न कर रहे थे। कहीं-कहीं कापालिक वेषधारी युवक चिताओं में विविध पदार्थ आहूत कर-कर कर मंत्र सिद्धि रत थे तो कहीं-कहीं साधक शवासनों पर आसनासीन हो शव जागरण, वीर साधन, मंत्र-जागरण इत्यादि तांत्रिक साधनों में रत थे।

इसी महाश्मशान के दाक्षिण्य कोण में भगवती महाकराली का मनमोहक मन्दिर था। मन्दिर की प्रकार भित्तियों और आस-पास उगे वृक्ष अहिर्निश चिता धूम की कालुण्यी स्याही से श्यामल हो गए थे। मन्दिर के प्रांगण में बलीयूप बना था जिसमें पशु बलि से नर बलि तक के बलिकृत्य सम्पन्न किए जाते थे। उसी प्रसत्वर प्रांगण मे विशालकायी न्यग्रोध तरू स्थित था जिसकी घनपात छायाश्रय में कपर्दन प्ररोहों के मध्य पञ्चमुण्डासन निर्मित था! न्यग्रोध जटा प्ररोहों में स्थान-स्थान पर यमघन्ट बन्धे हुए थे। जब कभी फूत्कारणी वात्या का महासंचार होता हो यमघन्टों के परस्पर संघर्षण से घोर ध्वनन् का महागुंजन नादित होता ओर पूर्ण क्षेत्र घन घन, घनन्-घनन् की महाध्वनि से गूंजित हो उठता। उस नाद में साधक-साधिकाएं हर्षोन्माद से उन्नत हो नाच उठते।

मन्दिर के अन्तः गर्भ गृह में महाकराली के रूप में मूल प्रकृति का रौद्र रसस्रावी श्याम विग्रह अपनी सकल भव्यता को संवृत किए स्थापित था। महाकराली चण्डमण्डना दैव्या के घनमेचक विग्रह की सिद्धि देश-देशान्तरों में ख्यात थी, अतः कोई न कोई महासिद्ध और माँ कराली की तद्रूपा सिद्धाचारिणी के हार्द स्तोत्रों के सुमधुर गान से मन्दिर गुंजित होता ही रहता था।

उन दिनों महासिद्ध, ब्रह्मावीर्य अंशज, हस्तिवर्ण से समुत्पन्न, अयोनिज कपालिकों के उष्णीश कण्हपा अपनी उपस्थिति से माँ को रिझा रहे थे। उनका शिष्य संवर्ग भी उनके साथ था जो प्रांगण स्थित साधनालयों में रहता था। प्रभु कण्हपा की सेवा में भगवती महायोगिनी कनखलापा और मेखलापा सदैव तत्पर हो उनके साथ ही जीव और माया के समान उपस्थित रहती थी।

कण्हपाद त्रिकाल दृष्टा थे। अष्ट सिद्धि उनके चरण तल में विश्रामित थी। वे सदैव आत्मानन्द के महाभिभाव में मग्न रहते थे। नित्यमुक्त कण्हपाद की सेवा में नर, देव, दानव, प्रेत पिशाच आदि असंख्य योनियां उपस्थित थीं।

साधक विविध रूपों में कण्हपा का अलौकिक दर्शन करते थे। कभी शिष्यों के भावलोक में नरचर्म, कपाल माला, नर आंतों से संग्रथित मुण्डमाला धारक महासिद्ध कापालिक का रक्त परिपूरित कपाल धारण किए शव के ऊपर

अर्द्धपर्यंकासन से विराजमान, भस्मोद्धलित विग्रह दर्शन देता था तो कभी अपनी कपालवनिता (कापालिकी) महामुद्रा के साथ भगासनस्थ हो सोम साधन में रत स्वरूप का अलौकिक दर्शन होता।

एक समय महाअघोर कपालिक प्रसन्नमुद्रा में, शवोपरि अर्द्ध पर्यंकासन पर आसीन थे। उनके अर्द्ध स्फुरित नेत्र नभोमण्डल के शून्य वातायन में टंगे थे उस तमिस्त्र धन वातायन में विद्युल्लता प्रकाश से भी तीव्र आलोक यष्टि के अभ्यान्तर लोक में भगवद्रूपिणी वज्रवराही से संपरिष्वक्त भगवान हेरुक दर्शन दे रहे थे। भगवान की प्रथम वामभुजा में देवासुरों के गाढ़ रक्त से पूरित नरकपाल, प्रथम दक्षिण भुजा में वज्र और शेष दो भुजाओं से उन्होंने वज्रवराही भगवद्रूपिणी प्रज्ञा का गाढ़ालिंगन कर रखा था। उन्हीं के युगनद्याकार से विद्युत्रेखा से भी भूरि अलोक उदभाषित था।

भगवती मेखला उनके समीप खड़ी विचारमग्न थी। महाअघोर के हेरूक भाव में विघ्न नहीं किया जा सकता और बिना उनकी हर्षानुमति से वह किसी प्रयोजन सिद्धि के हितार्थ कोई क्रिया संपादित कर नहीं सकती। उनकी प्रिय सखी तिलोत्तमा की आह्वान संवेदनाए निरन्तर ग्राह्य हो रही थी। उसका कारण भी उनके द्वारा सिद्ध दृष्टि पिशाच बता चुका था। लोलापा की सहायता के हेतु रूप में उन्हें (मेखला) को उपस्थित होना अनिवार्य है क्योंकि लोलापा से भी उनके सख्य सम्बन्ध हैं।

अनायास गुरु की ध्यान तन्द्रा विचलित हुई, उनके अधरों पर स्मित ने क्रीडा की। उन्होंने निर्मिषक दृष्टि से मेखला को निहारा और हँस उठे।

—"मेखले, हृदय-आन्दोलन क्यों? महाराज्ञी तिलोत्तमा मुझे भी तो प्रियकर है, वे विश्व वनिताओं के सौन्दर्य अर्क से निर्मित प्रत्यक्ष कामेश्वरी हैं। कामदेव ज्ञान के रूप में उनका अनुचर हैं। वे महिम है मेखला, जिस अल्पकार्य हेतु उन्होंने तुम्हारा चयन किया है वह अति सामान्य है और उन जैसी महायोगिनी, महामयी कामाख्या तद्रूपिणी तिलोत्तमा को बाल्य क्रीड़ा से अधिक नहीं। तुम गगन गमन कर उनके समीप शीघ्र जाओ।" गुरुवर्य ने जैसे मेखला के हृदय में सर्वोदित भावों को जान लिया।

मेखला का स्मित स्रावी मृदुल गात्र प्रसन्नता से प्रोक्त हो उठा। गुरु कृपा को प्राप्त कर मेखलापा ने अपनी आराध्य शक्ति वज्र वैरोचनी का स्मरण किया। प्रस्तर अम्बर मण्डल के महापट्ट पर स्वशोणित पायी छिन्न सिरः अपनी दोनों

सखियों के साथ दिखाई देने लगी। मेखला ने अपने दोनों हस्त ऊर्ध्व किए, योगबल से देहस्थ गुरुभार क्षीण किया फिर इच्छा बल से आंतरिक की उच्चता की ओर उछली। और गगन मार्ग से उल्का की भांति वायुसंचरण करती कामरूप देश की दिशा में उड़ गई।

–"इसके पश्चातवर्ती दृश्यों का तुमने प्रत्यक्ष साक्षात किया है लोलापा। महायोगिनी किस प्रकार अनंतवज्र की चिता-भूमि पर उतरी, हम दोनों से संवादित हुई और अनंतवज्र के शव को तृण की भांति उठा कर गगन-गमन कर गई।" तिलोत्तमा ने लोलापा को स्मरण कराया!

–"उसके पश्चात् क्या घटित हुआ महाराज्ञी? क्या अनंतवज्र के प्राण हीन देह में पुनः जीवन संचार हो सका? अथवा योगिनी मेखला ने उसके शव पर आरूढ़ हो शवसाधन सम्पन्न कर कौलाचार्य श्रीमत्स्येन्द्रनाथ को सौंप दिया? अथवा किसी अन्य जीवात्मा का अनंतवज्र के शव में परकाय प्रवेश कर दिया गया?" लोलापा ने स्पंदित हृदय और अकुलाहट मिश्रित भाव से पूछा।

–"उसके पौरूष से प्रभावित मेरी सखी, लोलापा। ऐसा अधैर्य्य भाव क्यों? ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारा मन ही नही, उसके विकट संघर्षण क्रियाओं की मधुस्मृतियों ने काम भवन भी मधुस्त्राव से अभिस्त्रिवत है।" महाराज्ञी तिलोत्तमा ने नारीजनित परिहास करते हुए कहा–

–"कुछ धैर्य धारण करो अनंत प्रिया, सकल समाचार व्यक्त कर तो रही हूँ।"

लोलापा की मुखच्छवि पर लज्जा का सुकुमार अरूणातप छा गया। उसकी दृष्टि भू-स्पर्शी हो गई और मधुस्त्रावी अधेंरों पर स्मितराका नाचने लगी। महारानी तिलोत्तमा अपनी साधना बल से देखे दृश्यों को पुनः सुनाने लगी।

नित्य श्मशान के कराली मन्दिर प्रांगण में योगी कण्हपा उसी भांति निर्वाक-निश्चल बैठे अभ्रपट्ट पर भगवान हेरूक की पुनीत रूपराशि का दर्शन कर रहे थे। योगिनी कनखलापा उनकी सेवा हितार्थ सजग प्रहरी के समान खड़ी थी!

अचानक नभो मण्डल तीव्र आलोक से भर उठा। धरा स्थित चित्याक्षेत्र भी उस अलौकिक प्रकाशाभा से चमक उठा। प्रतीत होता था, गगन की महोच्चता में स्थित कोई उद्भाषित ग्रह पिण्ड सत्वर गति से पतित होता धरामण्डल की ओर निरन्तर उतरता आ रहा है।

—"महागुरो, भगनि मेखला अनंतवज्र के शव को धारण कर अंतरिक्ष-उच्चता से उतरने को आतुर है। उसे अनुमति प्रदान करें।" कनखलापा ने कर बद्ध हो कण्हपा से विनय की! महागुरु ने प्रज्वलित पिण्ड पर दृष्टि निक्षेप किया। आलोक पूरित प्रखरता के मध्य महाशून्य में संतार करता शव और उसके समीप ही संतरित मेखला को अर्द्ध स्फुटित नेत्रों से देखते हुए महागुरु ने अपने कपाल-पात्र स्थित देव को आदेश दिया।

—"जा.......जा.....रे..... मेखला का सम्मान कर। वह वावली व्यर्थ ही ऐसे चक्रवातों में फँसती है, सुभगा, अकारण ही साधना परित्यक्त कर संसारियों के समान भ्रामरी माया के हाथों मे बद्ध हो नाचती है। निरी वावली है, पगली है. ...पगली.....।" कण्हपा के मुख से स्नेह सिक्त स्वर-निकला!

योगी का कपाल-पात्र विद्युद्द्योताभा से प्रकाशित हुआ और आसन से उठा। अचानक अंतरिक्ष में मेखला और शव के समीप कटपूतनों की स्याही लिप्त दीर्घ देही आकृतियां उभरी। उन्हीं आकृतियों के मध्य घट तुल्य स्तनधारिता कटपूतना नायिका हाहाकार से नभोमण्डल से भरती शव के समीप प्रकट हुई। विराट देही कटपूतना का श्यामल देह विस्तार पर्वत की भांति था, गगन में वात् संयोग से उड़ते-फहराते उनकी कर्पर जटाएं मानो काल सुन्दरी के विकट पाश को जिनमें सकल सृष्टि की जीवात्माओं को बांध कर वह अपनी महाभुक्षा को प्रशान्त करती है।

कटपूतना के मस्तक में स्थित प्रज्ज्वलत नेत्र से नीलालोक वरस रहा था। शेष दो नेत्रों से हीन महाकटपूतना महा अट्टहास्य से धरा-नभ को प्रकम्प से कम्पित करती अपने सुलम्बि हाथों से शव को पकड़ने लपकी। तीक्ष्ण शस्त्रों के समान नखों से वह शीघ्र ही शवविच्छेदन को आतुर महाकटपूतना की रसना महामाँस भक्षण के लिए वार-वार उसके दीर्घ गुहामुख से बाह्य प्रदेश में झूल-झूल कर स्तन देश तक आ जाती थी। वह कराल वदना अपनी सहचरियों के साथ मेखला और अनंतवज्र के शव के चहुंओर उद्दाम भाव से नृत्य करने लगी।

कण्हपा ने उस विकटा को देखा उनके कण्ठ से घोराहुंकार का महागर्जन हुआ। वे अमर्ष वेग से आसन सहित उछले और पक्ष्म काल में ही अंतरिक्ष में पहुंच गए पर इसके पूर्व कि वह कटपूतनाओं की पैशाचिक माया का उच्छेदन करते, एक नूत्र तेज पुंज से मण्डित उद्भाषित पिण्ड प्रकट हुआ। सहस्राधिक विद्युज्जालाओं से निर्मित उस आलोक पिण्ड के महाप्रकाश से सम्पूर्ण श्मशान

क्षेत्र चमक उठा, चिताओं की शिखाओं पर रमण करती अग्नि लज्जित हो मन्द हो गई, धूम्र का धनावरण छँट गया, उसके तीव्रतप से वनस्पत्यों में भगवान वैश्वानर प्रकट होने लगे, अर्द्धदग्ध चिताएं धूं.....धूं कर जलने लगी, नदी-का जल ऊष्मा से उबलने लगा, फलतः जलचरों में प्राणहानि का भय समाने लगा, उपस्थित साधक-साधिकाओं के नेत्र दर्शन गुण खोने लगे।

अर्चिस पिण्ड से सहस्त्रों विद्युत्लेखाओं का प्रादुर्भाव हुआ। वे विद्युत्लताएं कटपूतनाओं के पार्वत्य देहों को भस्म करने लगी, नभोमण्डल मर्मांतक चीत्कारों से भर उठा आकाश से भस्म वर्षण होने लगा। कुछ क्षणों में ही कटपूतनाओं की सृष्टि भस्म हो गई।

शून्यांतरिक्ष में निराधार आसनासीन कण्हपा त्वरा से उठे और आलोक पिण्ड को श्रद्धा, सम्मान से प्रणाम किया। कुछ क्षणों में ही आलोकातप चन्द्रिका के पीयूषी प्रकाश के समान शीतल हो गया, धरा में अतिरेक प्रशान्त छा गया, सृष्टि पूर्ववत हो गई।

—"कापालिक रत्न.......तुम्हारा कल्याण हो।" प्रकाश पुंज से आशीर्वचन प्रकट करती हुई मानवाकृति प्रकटी।

—"महायोगी, सिद्ध कौलाचार्य, परमप्रभु, आपके गुरुभाई प्रातः स्मरणीय योगी श्री जालन्धरपा का शिष्य कण्हपा का प्रणाम श्रीचरणों में निवेदित है।" कण्हपा ने पुनः स्तवन किया।

मेखलापा चित्रोत्कीर्णा के समान स्तंभित थी। अपने ईश तुल्य गुरु को नमन करते देख उसकी तन्द्रा खण्डित हुई। उसने भी आलोक पुरूष के श्रीचरणों में प्रणाम निवेदित किया।

—"भगवती मेखलापा, तुम्हारे सुकृत से मैं आभारी हूँ। तुमने उचित काल में अनंतवज्र को लाकर श्रम-साध्य कार्य किया। अब इसे मुझे सौंपकर निश्चिंत हो जाओ।" आलोक पुरूष ने मेखलापा पर अपनी कृपादृष्टि वर्षन कर कहा।

—"प्रभो, तिलोत्तमा और लोलापा मेरी सखियां है। उन्हीं की संवेदनाओं को प्राप्त कर श्री गुरु कृपा बल से यह कार्य संपादित किया। भगवन मैं प्रशंसा की पात्र कहाँ?" मेखला ने करबद्ध मुद्रा में विनय भाव से कहा।

"भगवन्! कशली प्रांगण में अनेक साधक-साधिकाएं उपस्थित हैं, उन्हें दर्शन प्रदान कर श्रेयसः भागी बनाएं।" कण्हपा ने प्रार्थना की।

"तुम धन्य हो कण्हपा, नरेन्द्र के समान वैभववान होते हुए भी तुम नित्य-मुक्त हो। अश्व, गज और साधक चमूं सदैव तुम्हारी पुण्य संगति से लाभान्वित होकर इहलोक और परलोक सुधार रहे हैं। मैं उचित काल में पुनः उपस्थित होकर तुम्हारे प्रिय भक्त मण्डल का दर्शन करूंगा। अब मैं प्रस्थान करता हूँ।" आलोक पुरूष पुनः आलोकमय वर्तुल मण्डल में स्थित हुए। उसी प्रकाशित मण्डल में अनंतवज्र का शव भी था। कुछ क्षणों वह गगनपथ में दिखाई दिए फिर दृष्टि देश से ओझल हो गए।

कण्हपा और मेखला उज्ज्वल नक्षत्रों के समान धरा पर उतर आए। साधक समुदाय की उत्सुकता जिज्ञासा को शान्त करते हुए योगी नाथ कण्हपा बोले-

-"यह कौलाचार्य, सिद्धियों के स्वयंवृत स्वरूप श्री मत्स्येन्द्र नाथ थे।" समुदाय चकित-हर्षित हुआ।

तिलोत्तमा ने अपनी बात समाप्त कर लोलापा की ओर देखा। लोलापा मुख पर तुष्टि रेखाओं का अभाव था।

-"अनंतवज्र का क्या हुआ राज्ञी? क्या वह पुनर्जीवित हो सका? अथवा महाकाल की विराटता में समाहित हो गया?" लोलापा का प्रश्न था।

-"महायोगी मत्स्येन्द्र नाथ की सुरक्षित प्राकारा का भेदन नहीं किया जा सकता सखी! इसके पश्चात् अनंतवज्र का क्या हुआ, यह तो कामरूपिणी जाने।" तिलोत्तमा ने अपनी विवशता व्यक्त की। दोनों सखियां अपने-अपने चिन्तन में डूब गई।

---

1. चमकीला, प्रकाशवान
2. पेटीकोट या घांघरा
3. कटि, कमर
4. कामदेव के घर का आंगन (यहां योनि से आशय)
5. आकाशी विद्युत
6. नीलमणी
7. तीव्रतर प्रकाश
8. गुलाबी
9. योनिदर्शन
10. चमक
11. चिकना, स्निग्ध
12. नया नशा
13. इत्र की शीशी
14. चूडियां जिन्हें स्त्रियां कलाइयों में पहनती हैं
15. सोने का हार
16. अंगूठी
17. उत्तम भग को धारण करने वाली
18. नीर (रज) जिनसे स्राव होता है।
19. मायामय आकषर्ण

20. श्रेष्ठ, उत्तम पुल्लिंग रूप में इसका शब्दार्थ ऋषि, मुनि भी होता है।
21. फूलों का घर (बगीचा)
22. पुष्पवाटिका
23. पुष्प वाटिका
24. नारी का वह उत्तम अंग जहा से रज स्राव होता है।
25. स्निग्ध, चिकनी पंक्ति
26. पंक्ति
27. संसार मार्ग (योनि)
28. कोमल, सुकुमार, चिकना, मुलायम, सूक्ष्म छिद्र, सूराख
29. स्निग्ध
30. आंचल
31. पर्दा, कनात
32. अधैर्य
33. रजस्रावी
34. कामदेव का क्रीड़ा स्थल (भग, योनि)
35. ढ़का हुआ
36. पुष्प वाटिका (यहाँ भग से आशय)
37. कामछिद्र पर ढके हुए
38. खोलना, फैलाना, चौडा करना
39. अत्यन्त गुप्त
40. योनि से आशय
41. हृदय में कंम्पन उत्पन्न कर देने वाला
42. स्वच्छ, धुला हुआ
43. योनि
44. स्थान
45. पीपल वृक्ष के पत्ते के आकार के समान
46. चमक से परिपूर्ण
47. स्वच्छ, पवित्र
48. नग्न स्त्री
49. निर्लोम (वाल हीन)
50. भग
51. अखण्ड
52. किंचित, थोड़ा
53. इच्छा
54. योनि
55. ऐश्वर्य
56. शून्य
57. कर्पूर के सामान त्वचा को धारण करने वाली
58. निष्पाप
59. पुष्प के समान (कोमल) देह

60 तंत्र मे वीरासन 'शवासन' से साम्य रखता है। मेरे मातुल स्वनाम नाम धन्य शिवलोक वासी ठाकुर श्री रामसिंह तोमर ने शवासन (वीरासन) से हनुमत मंत्र का साधन कर वीर सिद्धि प्राप्त की थी। उनके अनुसार हनुमत तत्व का जागरण पूर्ण ब्रह्मचर्यावस्था से शव पीठ पर शीघ्र होता है।

61. रक्त (खून) से उत्पन्न
62. संयोग या संभोग
63. पाप शून्य जो अखण्ड हो
64. होम
65. संभोगानन्द

प्रकोष्ठ के गवाक्षपट्ट खुले थे। चटुल पवन पुष्पोद्यान से अपने अदृश्य मलयानिज वस्त्रों में पुष्पों के सम्मानित सौरभ को भर-भर कर प्रकोष्ठ में निशंक ला-ला कर बिखेर रहा था। वह अमावस्या की तमिस्त्रनिशा का निशीथ काल था। जगत में तामसी प्रशान्ति थी। नगर निद्रा महादेवी के चरण तलों से स्त्रिवत श्यामारज के पंकिल-उत्संग में सुख से सोया हुआ था।

कामाक्षी ने सविधि स्नान कर आरक्त-उत्तरीय धारण किया और रजाधीश्वरी को अपना अश्रुधौत प्रणाम निवेदित कर आसनासीन हो गई। अपने पिता के उपदेशानुसार उसने वज्रांगाचार प्रारम्भ किया। वह अपने ईष्टाचार की तल्लीनता में देख नहीं सकी कि उसकी पर्युषण क्रियाओं के सम्यक-आचार को उसकी आचार्या और जननी दोनों ही गोप्य रूप से देख रही हैं।

"महाराज्ञी, पुत्री के यौवन सत्व में प्रज्ञा का आर्विभाव प्रकट हो रहा है। इसमें चतुर्रानन्द[1] का आधार त्रिकोण[2] और उसमें स्थित षड्[3] धातुओं के प्रत्यक्ष गुण भी सहज प्रकट हो रहे हैं।"

तिलोत्तमा स्पष्ट देख रही थी। विसर्गरूप पराशक्ति आनन्दोदय के माध्यम से इच्छा और ज्ञान की व्यवस्था का भेदन कर क्रिया शक्ति का रूप धारण कर रही है। पुत्री का समग्र गात्र त्रिकोण वेष्ठित हो गया है-और इसमें नित्योदिता, परमानन्दमयी पर कुटिल रूपा कुण्डली, भग की क्रिया शक्ति का उल्लास लिए दमनयष्टि की भांति द्रीप्त हो उठी है। उसे मुद्रा[4] के चार प्रकार भी अपनी पुत्री में दर्शन दे रहे थे, यही नहीं कामाक्षी की भावी दीप्ति में वह षड्ग[5] योग भी देख रही थी।

उसे आश्चर्य था पुत्री में ब्राह्मण धर्म, बौद्धों की सम्यक सम्वोधि की योग पद्धति, कौलाचार और वज्रयात की अतिरेक युति एक साथ ही दृष्टिगोचर होती थी। उसे पूर्णतः विश्वास हो गया, कामाक्षी वंशगत परम्पराओं को निर्मूल कर एक अभिनवी नूत्रता की स्थापना करेगी। सम्भवतः अनंतवज्र मान्यता ही स्थापित हो जाए और नारी-निर्ग भविष्य में मात्र कल्पित राज्य के रूप में मान्य हो।

कामाक्षी का महारत्नरूपी प्राणवायु कुछ क्षण स्थिर रहा फिर नाभि क्षेत्र से कुण्डलनी की चाण्डाली शक्ति को उठा कर वज्रपथ-आलम्बन कर ऊर्ध्व हुआ। उसका लक्ष्य या गंतव्य उष्णीष-कमल-कर्णिका था। वज्रमार्ग से मध्यधाराबलम्वी

प्राण की चाण्डाली शक्ति के साथ कायादि स्वभाव चतुर्थ बिन्दुओं को वह गुरुनिर्दिष्ट स्थान पर ले पहुंची, इस कारण धारणा सहज ही सिद्ध को प्राप्त हुई, जिस कारण चाण्डाली शक्ति सौदामिनी कांति की भांति समुज्ज्वल हो उठी और बोधिसत्व, वज्रसत्व-अवस्था में स्थिर हुआ, तब वज्रसत्व शून्यता बिम्बरूप ग्राह्य में समाविष्ट हुई। इस प्रकार कामाक्षी की चेतना, मन, परमेकाग्र अवस्था में सुस्थिर हो गए। उसके अन्तः कर्ण कर्णिकाओं के सुषिरालय में जहाँ नाद का परमदेव उपस्थित था, अपने ही चक्रों से उद्भूत दिव्य नाद में श्रवण शुद्धि की विषयातीत अवस्था में मग्न होने लगा। शंख निनाद, मृदंग, भेरी, पटह, काहल आदि के नादों से नादनाथ प्रहर्षित हो उठा।

सर्व नादों से श्रवणातीत हो जीवात्मा 'अनुस्मृति' में स्थित हुआ। इसके फलरूप विमल प्रभामण्डल का आर्विभाव हुआ और चित्त सम्यक रूप से विकल्प शून्य हो गया। कामाक्षी के लोमरन्ध्रों से महारश्मियां फूट पड़ी। प्रकोष्ठ में दिव्य आलोकाच्छादन से कण-कण प्रकाशित हो उठा।

—"महाराज्ञी! वज्रयोग की यह सिद्धि कर अवस्था विना योग दीक्षा के संभव नही। निरन्तर अभ्यास और साधना से जन्य इस 'अवस्था' के मूल में किस वज्र गुरु का अशीर्वचन प्राप्त है कुमारी को? यह विचित्र रहस्य है।" लोलापा आश्चर्य के चरम-उष्णीष का स्पर्श करती हुई चकित स्वर में, नेत्र विस्फारित करती हुई बोली!

तिलोत्तमा का इषत सन्देह पूर्ण विश्वास में परिवर्तित हो गया। उसे सन्देह था कि उसके स्वामिन् ने कामाक्षी का मार्गदर्शन किया होगा पर अब निश्चित हो गया कि स्वामिन् ने ही उसे दिक्-बोध हेतु अपनी 'उपाय' सृजना की स्थापना कामाक्षी के चिति बिन्दु पर की है। तिलोत्तमा ने लोलापा को उत्तर नहीं दिया। वह कुछ क्षण और मौन रही फिर लोलापा को चलने का संकेत किया! दोनों सखियां कामाक्षी को उसी अवस्था मे छोड़ चल पड़ी!

बसंत उत्सवीय ऋतु के धरा-आगमन पर कौन सा प्राणी कामदेव के पंचसरों से बिद्ध नही होता? भूचर तो क्या खेचर और अमरत्व धारक देव गण भी धरित्री पर आच्छादित बसंत सुषमा के आमोद दर्शन कर शम्बारी के कन्दर्पी पाशों में बंध कर परवत् हो जाते हैं। देवियों का संघन समुदाय 'मार' तुष्टि हेतु कभी प्रफुल्लित पुष्प पत्रों में तो कभी आम्रमंजरियों की गौर-हरित कांति में,

कभी शुभ्र चन्द्रिका के कुमुद रस में तो कभी सुचारूरिक मुग्धांगानाओं के आत्रेयस्त्रावी अंगों के पाटल अधरों की उत्त प्रभा के रूप में जगती में आकर बंसतोत्सव का हार्द्र दर्शन कर अपनी रूप-असि को अति शोभन करने का उपक्रम रचती है जिससे देवों की काम-कांक्षा कामाभिविहार के बिना ही उस तीक्ष्ण असि से छिन्न हो जाती है।

बसंत ऋतु मांगल्यिका में द्यो लोक की, अभिसार-ईहा से तृषित अप्सराएं (सम्भवतः) भूलोक की रमणी सौन्दर्य दामनियों के शातकारी परिमुग्ध-अंगों में आ आ कर अवतीर्ण होती है-इसी कारण तो उन सौदामिन कान्ताओं की अंगयष्टियों से लोल लावण्य की सुधा का अहिर्निश स्राव होता है, उनके पांशु पयोधरों की अधिपत्यका के उन्नतासन पर स्वयं स्मरदेव की सहचरि आसीन होती है, संभवतः उसके शोणित अंगराग की प्रभा संगत से कामनियों के स्तनाग्र का रंग पाटल हो जाता है अथवा रति के मत्त-नृत्य संचार के निर्घट घूर्मण से उसके पद्मपादों में रचित अलक्तक रस ही चरणों से छूट-छूट कर। स्तन वलयों की उच्चशीर्षा को रंग देता हो, इस कारण से वे अंशारक्त हो जाते हैं। अथवा घनसार की सुरभि से सुवासित देवी रति के संकीर्ण कामसृति से स्त्रिवत असृज्-उदक का सार ही स्तन सुमेरुओं पर फैल-बिखर कर उन्हें ईषत लोहित कर गया है।

बसंत समागम में मुग्धा नायिकाओं के रोचिष्णु वपुस् यौवन-विभूति के ललाम प्राचूर्य से लसित हो उठते हैं। उनके निर्व्रीड़ चटुल चक्षुओं के ईषत कटाक्ष से पुष्पधन्वन् के विकट सहज ही छूटते है, तो कामित्रों के हृदय देवपर्युषण काल की पुण्य बेला में भी बिद्ध हो जाते हैं। ललनाओं के कामनगरी की सुरक्षा करती मेखलाओं की दीप्ति में शम्पा-स्वर्ग से उतर कर कैसे मोह में जकड़ती है, यह बसंत संचार में ही देखा जा सकता है। उन्नत पयोधरों से अलंकृत अभुक्त यौवनाओं की सघन जघनों पर आरोहित कामदेव बंसत बेला में ही क्षण-प्रति क्षण ऊर्ध्व पथ पर चलता हुआ उनके रति मन्दिरों में निःसंज्ञ पड़े संवेश देव को ससंज्ञ कर जाग्रत करता है तो प्रकृति के पिधानक पत्र स्वमेव स्फुटित होने को तत्पर हो उठते हैं। संवेश देव की तपिश ऊष्मा जैसे अक्षत कामराजि के संकीर्ण वित्सल से स्त्रिवत होकर पिपाषुत कामदेव की तृषा शान्ति के हेतु ही स्रोतस्वती के रूप में प्रकट होती है। धन्य हैं बसंतकायी वे मुग्धागनाएं जिनके आतप-अर्क में शिवारि स्नान कर निष्पंक हो उठता है।

स्त्री राज्य की राजधानी शृंगमुरड' के आपण स्थल, पण्यवीथिकाएं, प्रतोली राजपथ, उच्च अट्टानिकाएं और भवन आलियों में जैसे बसंत प्रत्यक्ष प्रकट हो गया था। उन्तोदार राजमार्ग पर अभिजात्य रमणियां अपने परिष्कृत यौवन और मत्त-आनन्द को बहुमूल्य शिविकाओं पर प्रसन्नारूढ़ कर प्रमदवन की ओर वसंतोत्सव मनाने जा रही थी। साथ-साथ चल रही रंग विरंगे परिधानों से सज्जित उनकी परिचारिकाएं जिनके प्रसन्न मुखों पर सूर्य की प्रत्यूषी अरूणा प्रत्यक्ष नृत्य कर रही थी। उनके चरण विघट्टनजात नूपुरों की क्वणन ध्वनि गुंजन से पथ शब्दायमान था। परिचारिकाओं के अलक्तक रचित पद्म पादों से छूटे हुए श्वेद रस जो निरन्तर पद संचार और नृत्य डोलन के कारण पाद्तलों से निःसृरित हो रहा था, के मृदु स्पर्श से धरित्री धन्य हो उठी थी।

भारी सम्मर्द में नृत्य रागबद्ध हो चल रही प्रमत्त सुन्दरियों के मृणाल गुणी देहों से सुवासित अंगराग, श्वेद वारि से घुल-घुल कर उनके चीनांशु को रंग रहा था। निरन्तर गुलाल-अबीर के उड़ते रहने के कारण उनके कुन्तल पिंग-पिंग हो उठे थे और पीत परिधानों पर किर्मीर वर्णी स्वयंम्भु चित्र उभर आए थे, उनके समुन्नत पीन पयोधरों पर झूलती सुमन मालिकाओं पर अबीर, गुलाल सस्मित भाव से बैठा गर्व से उत्कन्धर हो कामिनी समूह को देखता पर उसका गर्व जैसे क्षणिक था, उन्मत्त नृत्य वेग से हलिप्रिया से मत्त यौवनांगनाएं जब एक-द्वितीय से टकरा जाती तो वह देर्वोक्त सपुष्प उनके सघर्षण से पिसकर मालिका से टूट भूमि पर जा गिरता। वहाँ भी उसकी पीड़ा उस काल सुखानन्द में वर्तित हो जाती जब कोई सघन जघना, वेग से घूर्मण करती हुई अपने चण्डातक से उसे आच्छेद कर देती। वह खण्डित पुष्प उन क्षणों में स्वयं को धन्य मानता। जिन क्षणों में वह कदली स्तम्भ सी सुचिक्कन, गजतुण्डाकारी जंघाओं और उनके ऊर्ध्व देश मे जड़ित यौवन मणी का मुक्त रूप से दर्शन करता कृत कृत्य हो, लाक्षारस रचित उनके सुकोमल पाद्तलों से पिस कर उत्सर्गित हो जाता। उसे जैसे योगियों को भी अलभ्य मोक्ष प्राप्त हो जाता।

तरूणियों के मृदु स्वरी कण्ठों से अनंगराग का महास्त्रोत फूट पड़ा, नृत्य का आमोद लब्धि उनके चरण पखारने लगा, भेरी मृदंग, पटह, काहल, शंखों के निनाद से धरित्री डोलने लगी, नगरी नादमयी होकर नृत्यांगना बन गई, सुन्दरियों के स्फुटित अधर पल्लवों से भावमत्ता रति के रागलिप्त गीत मुखर होने लगे, उनकी अंगप्रभाओं में आलोक रश्मियां उत्सव मनाने लगी, सुकुमारियों के

उज्ज्वल गात्रों में पुष्पाच्छादित प्रमुद बन ही साक्षात प्रकट हो गए, उनके विहँसित वदनों में प्रस्फुटित कुमुद जगत ही साकर हो उठा, उनकी शुभ्र रदस्लेखाओं में शतह्रदा की मसृण कांति ही प्रकट हो गई। किसी-किसी का अंगराग सुरभित देह स्त्रावी श्वेद से घुल गया, किसी की कंचुकी के बन्ध टूट गए, किसी के चीनांकुश सुन्दरी सम्मर्द संघर्षण के कारण देह पृथक हो गए, तो किसी-किसी के सुकोमल करों में पहनी हुई मणि विजडित चूडियां खण्ड-विखण्ड हो-हो कर राजपथ पर गिर पड़ी।

अन्तःपुर की रसिक परिचारिकाएं भी यौवन के उस मनोरम सम्मर्द में आमोद व्यस्त थी। उनके सुकोमल करों में आम्रमंजरियां अशेष हो चुकी थी। कामरस से क्लेद किसी भुजिप्या[7] ने मेदक[8] किसी ने प्रसन्ना[9], किसी ने आसव[10], अरिष्ट[11], मैरेय[12] तो कोई कोई मधु[13] के मत्तपान से मत्त हो मर्यादा को तिलांजली दे डाली थी। उन्हें अपने आवेध्य[14], निबन्धनीय[15], प्रेक्षप्य[16], आरोप्यादि[17] वस्त्र अलंकारों की स्मृति भी नही थी। उनके यौवन मण्डित अंगो पर लेपित मण्डन[18] द्रव्य उनके श्वेद तोय से घुल-घुल कर उनके अन्तर्वाह्य वस्त्रों को रंग-रंग कर नारित्व की कमनीय सुरभि से उन्हें सुरभित कर रहा था।

प्रमद वन में पञ्च[19] सामूहिक विनोदों में से प्रथम घटानिबन्धन[20] का आयोजन था, वहीं कामदेव की सपर्या भी सम्पन्न होगी, वहाँ रमणियां गोष्ठी समवाय[21] रंजन भी सम्पन्न करेंगी और समापाक[22], उद्यानगमन[23] और मनोविनोदी[24] समस्या क्रीड़ाएं कामनियों में अवतार लेगीं।

कामज्वर से विदग्ध चारू अंगो की भूरिशः सुषमाओं का विभूति-विपुल दल प्रमद वन पहुंचा। बहुविधि शातकारी आमादों के प्रारम्भ पूर्व, आयोनिज कामदेव और भूतियोनि धरित्री कामदेवी की सविधि सपर्या महाराज्ञी तिलोत्तमा ने हर्ष चित्त और प्रसन्न-प्रफुल्लित गात्र से सम्पूर्ण की।[25]

कामाक्षी की सखियां, लोलापा फिर राजपरिवार की परिचारिकाएं, भृत्याएं दासिकाएं एवं अन्य राजसी स्त्रियों ने भी पर्युषण पूर्ण कर राग मद का अर्चन किया। उद्यान की सुरभित धरा के पूर्व कोण में स्थित कामदेवालय में कामाक्षी अपनी समवयस्काओं के संगठन सहित पहुंची और कुमारियों के अन्तराल क्रीडा करने लगी।

कामाक्षी प्रथम अवसर पर इस उत्सव में सम्मिलित हुई थी। उसके पूर्व उसने प्रेष्ठा[26] नितम्बिनियों[27] का ऐसा निर्व्रीड़, हार्द्रकारी समुदाय नहीं देखा था।

क्षण-क्षण उसके आस्वनित[28]-सौध में ओजस्विन्[29] पुरूष का भाव-उल्वण[30] होता, श्याम शिलीमुख[31] को पुष्प कलिका के स्फुट-अधरों पर आसीन हो पुष्परस का प्रसन्नपान करते देख उसके अपांग[32] मुग्ध हो उठते। और उस काल तो उसके श्रोत[33] विस्तारित नयन नव यौवनधु[34] से विकसित मनोहर वदन उत्कट[35] लज्जा के प्राचुर्य से प्रेय-प्रेय हो उठा जब एक अभिसार, प्रवीणा, रूपसी दारिका[36] ने राधा और कृष्ण के चोद्यजनित[37] मैथुन का निष्वृजिन[38], पुण्यप्रसंग का निःस्वन[39] गान किया। उसकी कृतिन[40], मधुर वाणी जैसे नाभि कूप से निःसृरित हो रही थी। उस विस्मयभूति रति प्रसंग को कर्णगोचर कर अनेक भुक्ताभक्त यौवन ललनाएं सीत्कार करने लगी।

कामाक्षी स्पष्ट देख रही थी, मान रही थी, इस उत्सव का भित्ताधार पुरूष ही है, पुरूषहीन यह उत्सव निष्प्रयोजनीय है और पुरूष..........? पुरूष का इस राज्य में प्रवेश ही निषेध है, वह एक दुर्लभ्य है इस राज्य में। शासिकानुमति से ही पुरूष यहाँ लाए जाते हैं और वे अभिजात्याओं के वास स्थानों में ही बन्दी के समान अपने-जीवन यापन को विवश हो भोगते हैं। उसे आचार्या ने बताया था कि अन्य देशों में पुरूष ही प्रधान है और नारी उसकी वशवर्तिनी।

पुरूषों की दयनीय अवस्था के विषय में उसे कुछ दिनो पूर्व ही कुछ तथ्य प्राप्त हुए थे। तथ्यानुसार एक पुरूष को अनेक कामुकी सीमान्तिनियां[41] बलात भोग से भोग कर उसके यौवन रस को अपनी स्मर लिप्सा[42] के कुण्ड में महाहूत करती थी। इस प्रकार जगत्प्रसूः योनि दैव्या के दिव्यतर भगमण्डल को इन स्वैरिणियों[43] ने पुनीता को भग राक्षसी के रूप में लोक-कुख्यात कर उसे निन्दनीय, जुगप्सित बना दिया।

कामाक्षी की पुण्य विशिख[44] भूमि के प्राच्य निर्ग में एक उग्र निश्चय का आदित्य उदय हुआ। परमानन्द, हर्ष और सुकान्त के उत्स पुरूष को वह इस संत्राश से मुक्त करेगी। उसके राज्यारोहन काल में पुरूष प्रतिबंधित नहीं होगा, देश में नारी ही नहीं पुरूष भी जन्म लेंगें। वह इस निष्ठ परम्परा को विछिन्न कर एक नूत्र समाज का सर्ज रचेगी जिसमें बुलि[45] का प्रमत्त प्रेमिन् पुरूष स्वसमान गुणी सखाओं के साथ प्रत्येक कामिनी[46], कुल्या[47], पुरन्ध्री[48], प्रणयिनी[49], मनस्विनी[50], सफली[51] और सर्वबल्लभा[52] योषिताओं के यौवन यज्ञ का याज्ञिक वन उनकी मनोज्ञयष्टि[53] लेखा में युगल-गोप्य[54] का यूति[55] कृत्य सम्पन्न करे।

सौन्दर्य द्युति से शोभित कामाक्षी के कान्तानन[56] पर चिन्तन की रेखाएं उभर

रही थी। वह अपनी आली[57]-सहचरियों से पृथक हो उद्यान के एकान्त कुंज में आ गई थी। कुछ समय पश्चात ही पताका और मेखला ने अपनी प्रिय सखी और राज्ञकुमारी को अपने केलि समूह में उपस्थित नहीं देखा तो अन्य वयस्याओं सहित उसका सन्धान करते वीकाश कुंज में आ गई।

जैसे सखी-समूह कामाक्षी के समीप पहुंचा, समवस्याए[58] विस्मय भूत हो उठी। कुंज में सिताभ्र[59] की भूरि सुवास मह-मह कर रही थी। कामाक्षी के आनन्दानन पर भी विचित्र भाव-भंग की रेखाएं उपस्थित थी। वह कठोर धरातल पर अपने हाथ से वस्त्रावरित स्मर मन्दिर[60] सर्गनी को आच्छादित किए बैठी थी!

—"क्या हुआ कुमारी।" पताका ने प्रश्न किया।

"पताका, आचार्या अथवा मातश्री को तत्क्षण बुला ला।" कामाक्षी ने मन्द स्वर में कहा-

"पताका ने तत्क्षण दौड़ कर महाराज्ञी तिलोत्तमा को कामाक्षी की स्थिति और सन्देश निवेदित किया। आचार्या लोलापा भी वहीं उपस्थित थी। दोनों ही समझ गई कि कामाक्षी के कामसुषिर[61] से रज का अभिस्राव-आरम्भ हुआ है, पर यह न समझ सकी कि पूर्ण निकुंज में चन्द्रसंज्ञ[62] की तीव्र सुवास क्यों सुरभित हो रही है? दोनों ही आमोद-कृत्य निःशेष-अवस्था में छोड़कर कामाक्षी कुंज में प्रविष्ट हुई!

कुंज में सध्रीची[63]-निस्ताल[64] के अभ्यन्तर कामाक्षी बैठी थी। उसके हीरक नयन भूतल स्पश्र करते हुए स्थिर थे। महाराज्ञी और लोलापा का आगमन जान वयस्याओं का वर्तुल-मण्डल भंग हुआ, वे दोनों का मार्ग प्रशस्थ करती अनुशासित आवलि[65] में ससम्मान खड़ी हो गई।

कुंज में घनसार की तीव्र सुरभि मन्द होती जा रही थी। इस सुवास में कभी कुरण्टक पुष्प गन्ध का समावेश प्रतीत होता तो कभी पद्म गन्ध का। कभी उस सुवास के मिश्रण में जूही, बेला, नागचम्पा तो कभी अरिष्ट, शिरीष, कुरबक, चम्पक का भान होता। जैसे कुंज के अन्तःभाग में महोन्मत्त सुगन्ध की महावात्या[66] ही संचारित हो, आकूत[67]-आमोद का शौण्डरि[68] कौतुक रच रही थी अथवा हलप्रिया[69] की मत्त अवतारणी सीमान्तनियों[70] के इस आनन्दकेलि पर्व के अधिष्ठात्र कामदेव अपने बसंत साम्राज्य और उसमें वसित विविध पुष्पों की सुरभित बीथियों और उनमें रमित रम्य रामा के मधुकोष सहित आ उपस्थित हुआ

था अथवा ब्रह्माण्य श्रेष्ट सर्वाभिसारिकाओं के मृदुल मोहक-मृणल अंगों के अंगराज से निचोडा गया रस और कामनियों के प्रमुग्ध-अंगो पर आरोप्य पुष्प मल्लिकाओं का सुरभि अर्क ही बसंत वारित इस प्रमुद कुंज की मंजुला[71] में प्रत्यक्ष प्रकट हो गया था।

यह अद्भुत सुषम[72] सुवास कामाक्षी की शातकारी[73] देहयष्टि के श्रोणी देश के अधोप्रान्त से सततरूप से निःसृरित हो रही थी। पुत्री के नित-नूत्र रहस्य प्रकट होते जा रहे हैं। लोलापा भी इस सुगन्धाभिस्रावण पर चकित थी।

तत्क्षण स्वच्छ-धवल कार्पास वस्त्र मंगाया गया। सखी मण्डल को हटा कर लोलापा ने एकान्त काल में कामाक्षी कली गुह्य रेखा पर कार्पास छादित कर बन्धन किया और विशिष्ट शिविका में कुमारी को राजप्रासाद भेजा गया। उसके साथ ही लोलापा भी थी।

उस दिन के पश्चात कामाक्षी मदस्रावी देहयष्टि सुरभि स्राविणी भी बन गई। प्रतिक्षण उसके दिव्य-अंगों से सुगन्ध के सागर की तरंगे उठने लगी।

---

1. बौद्ध तान्त्रिक दृष्टि के अनुसार आनन्द के 4 प्रकार इस प्रकार हैं-1. आनन्द, 2. परमानन्द, 3. विरमानन्द, 4. सहजानन्द।
2. क्लेश मार आदि का भंजक त्रिकोण में, इच्छा, ज्ञान और क्रिया (त्रिकोण रूप में) परिणत है-यथा-
"त्रिकोणं भगमित्युक्तं वियत्स्थं गुप्तमण्डलम्।
इच्छाज्ञानक्रियाकोणं तन्मध्ये चिंचिनीक्रमम्।।"
3. बौद्ध तान्त्रिक दृष्टि से त्रिकोणस्थ षड् धातुए-1. समग्र ऐश्वर्य, 2. रूप, 3. यश, 4. श्री, 5. ज्ञान, 6. अर्थवत्ता।
4. मुद्रा के 4 प्रकार-1. कर्ममुद्रा, 2. धर्ममुद्रा, 3. महामुद्रा, 4. समयमुद्रा
5. बौद्ध षडंग योग-1.प्रत्याहार, 2. ध्यान, 3. प्राणायाम, 4. धारणा, 5. अनुस्मृति, 6. समाधि
6. अधिकांश विद्वानों ने नारी राज्य की राजधानी 'शृंगमुरड' नामक नगर को ही माना है। लेखक भी इसी विचार का समर्थक है।
7. परिचारिका
8. मदिरा का एक प्रकार
9. मरारफली, पलाश, छोह, मारक, मेडासिंगी, करंजा, क्षीर वृक्ष, के क्वाथ (काढ़े) में शक्कर चूर्ण, लोध, चीता, वायविडंग, परग, मोथा, जौ, दारुहल्दी, कमल, सौंफ, चिचिडा, सतपर्ण, अर्कपुष्प से निर्मित प्रसन्नता प्रदान करने वाली मदिरा
10. मदिरा का ही एक प्रकार
11. मदिरा का एक प्रकार

12. मेढासिंगी के छाल का क्वाथ जो गुड़, पीपल, कालीमिर्च से निर्मित हो मदिरा का रूप लेता है।
13. दाक्षा रस के निर्मित सुरा
14. अंगो को छेदकर पहने जाने वाले अलंकार जैसे नथ, कर्णफूल (कानों में पहनने के अलंकार)
15. अंगो में बाँधकर पहने जाने वाले वस्त्रालंकार जैसे साड़ी, उष्णीश, अंगद, वेणी, श्रोणीसूत्र (करधनी), चूडामणि।
16. अंग में डालकर पहने जाने वाले वस्त्रालंकार जैसे-चोलक, चोली, उर्मिका, वलय (चूड़ियां) मंजीर।
17. देहांगो में आरोपित किए जाने वाले वस्त्रालंकार-जैसे-उत्तरीय, चादर, हार, नक्षत्रमालिका।
18. कस्तूरी, कुंकुम, चन्दन, कर्पूर, अगरु, कुलक, पटवास, तैल, अलक्तक (महावर), अंजन, गौरोचन आदि पदार्थ।
19. विशेष अवसरों पर सम्पन्न होने वाले मनोविनोद, मनोरंजनों के प्रकार
20. यह विनोद रंजन विशेष रूप से बसन्त ऋतु में कामदेव पूजन, मदनोत्सव पर सम्पन्न होता था। इस रंजन में गोष्ठियां होती। मदनोत्सव के प्रसन्न कलेवर में कामिनियां मधुपान कर मतवाली हो जाती और निर्लज्ज हो भांति-भांति के अश्लील गीत, काव्य, दुर्वचन बोलती थी।
21. कामकलाओं में प्रवीण वारवधुएं, गणिकाएं विशेप रूप से इसमें सहभागी होती थी। इससे काव्य समस्याएं पुस्तक वाचन, दुर्वाचक योग, छन्द, नाट्य, नृत्य, गीत, रसालाप आदि प्रमुख थे!
22. सामूहिक रूप में मदिरापान कर मदानन्द में डूबना इस रंजन का प्रमुख अंग था।
23. यह एक प्रकार से सामूहिक मनोरंजन का प्रकार था, जिसमें नागरिक गण मध्याह्न पूर्व अपने आवास स्थल से आकर सायंकाल तक लौटते थे। सुमन सुरभित उद्यानों में नागर गण हिन्दोल लीला, आख्यायिकाएं, समस्यापूर्ति, विन्दुमती आदि पहेलियां वूझाया करते थे।
24. प्रतिमाला (अन्ताक्षरी) दुर्वाचन योग, मानसी कला, अक्षर मुष्ठि आदि काव्य कलाएं सम्बन्धी क्रीड़ाए होती थी।
25. पुस्तक का कलेवर अधिक वृद्धि को प्राप्त न हो इसलिए कामदेव-पूजन नहीं दिया जा रहा। सुधि पाठक किसी अन्य ग्रन्थ का अवलोकन कर रसानन्द लें।
26. प्यारी
27. स्त्रियां
28. मनरूपीप्रासाद
29. तेजस्वी
30. तीव्र
31. भ्रमर (भौंरा)
32. आखें
33. कान
34. नवीन यौवन की चमक
35. तीव्र
36. वेश्या की समवर्ती स्त्री
37. कौतुक जनित
38. पापरहित
39. ध्वनन, नादमय

40. कुशल, प्रवीण
41. युवा स्त्रियां
42. कामेच्छा
43. कुलटा
44. मन
45. योनि
46. यौवन कांति से संपूरित, संभोग की इच्छुक युवती कामिनी है।
47. विवाहित स्त्री की संज्ञा कुल्या है।
48. ऐसी स्त्री जो पति और पुत्र से युक्त होती है, पुरन्ध्री है।
49. प्रेमिका प्रणयिनी है।
50. अपने ही पति को मन, वचन, तन, प्राण से समर्पित सुन्दरी 'मनस्विनी' है।
51. संफली कुलटा स्त्री की संज्ञा है।
52. वेश्याओं के आचरण युक्त सुन्दरी सर्व वल्लभा संज्ञेय है।
53. कामदेव की रेखा, कामलता
54. गुप्त
55. सम्मिलन
56. सुन्दर मुख
57. सखी
58. हमउम्र लड़कियां
59. कर्पूर
60. काममन्दिर की रचना (भग)
61. कामछिद्र (योनि)
62. कर्पूर
63. सखी
64. गोल मण्डल
65. पक्ति
66. आंधी
67. मन
68. गर्व
69. मदिरा
70. लावण्य से परिपूरित स्त्रियां जो संभोग सुख से परिचित हो चुकी हों।
71. मनोरमता
72. मनोहर
73. आनन्ददायी

तुहिन सिक्त निशीथ की प्रालेयबेला में महाराज्ञी तिलोत्तमा और उनकी प्रियंकरि सहचरी लोलापा जगत्योनि के परिमृष्ट[1] दैव्यालय में अभी बैठी परिचर्चा रत थी। गवाक्ष से शीतमरुत उपवनी सौरम्भ, कक्ष मे निःशंक प्रवेश कर उन विन्द्रिताओं[2] के मनस् को स्फीत कर रहा था। बाहर वासुकि के विस्तारांचल में औषधेशु की धौत ज्यौत्स्न का रौप्यालोक-प्रसृत्वर रूप से संचारित था।

तिलोत्तमा के दीप्ति भाल पट्ट पर यत्किचिंत चिंतन की विभ्राजित रेखाएं उपस्थित थी। जबकि लोलापा के द्युति मुख पर अनंतवज्र की चिन्ताओं का गहन चिन्तन परिक्षेपण[3] कर रहा था।

"लोलापा तुम अनंतवज्र के मेहन[4]-आकर्षण में पूर्णतः विबद्ध हो चुकी हो। नित्य अनंग का भास् चिन्तन साधक स्वान्त[5] की एकनिष्ठता में विघ्न रूप है। इस पाश से तुम्हारी मुक्ति आवश्यक है, अतः इस हेतु मैं साधनोपक्रम से तुम्हें अनंतवज्र विषयक प्रत्यक्ष सूचनाएं एवं उसकी वर्तमानिक जीवनचर्या का अविकल दर्शन कराने की मेरी स्पृहा[6] है। तुम सावधान हो कामार्द्र भुवनसरणी[7] के रन्ध्र को पाद ऐढ़ी से क्रिया कर वज्रासन मे स्थिर हो। फिर देहस्थ अणु समुच्च को विकीकृत कर कारण देह में स्थित सूक्ष्मदेह को स्थूल से मुक्त करो।" तिलोत्तमा ने अपने रोचिष भाल पर स्वतः झूलित भ्रामरालकों[8] को अपने हाथ से हटाते हुए मन्द्र[9] स्वर में गिरोच्चार किया। फिर स्वयं भी वज्रयोग की क्रियाओं में रत हो गई।

परमांगना[10] तिलोत्तमा के उपदेश को ग्राह्य कर कुसुमेषी लोलापा ने मीनकेतनी[11], कामरसक्लेदी[12] लोकेकपदी[13] के ऊष्म सुषिर[14] में वज्रासन योग स्थापित किया फिर अपनी ज्ञप्ति[15] को प्राणवात[16] में बद्ध कर ऊर्ध्व कमल की ओर कर्षण क्रिया की। उसकी प्रज्ञा कामराग से परांगमुखी हो स्फुरित हुई। कुछ कालायास-अन्तराल में वे दोनों निष्पंक रामाएं[17] अपने अभीष्ट की प्राप्ति में सफल हुई।

द्वय वनितओं के शाम्पेय कांति से सम्पूरित ज्यौक गात्रों की शुभ्रि से कक्ष भास्वर हो उठा। दोनों ही प्रसन्नांगनाओं के भद्रंकर[18] वपुस् हरिन्मणी[19] की द्युति को लज्जित कर रहे थे!

"अब हमारे स्थूलतत्वी देह समाप्य हैं, हम कहीं भी, कभी भी अपने स्थूलतत्वी कलेवर को प्रकट कर सकती हैं। हम यामिनी काल में ही नहीं

दिवाकाल में भी इसी स्वरूप में स्थित रह सकती हैं। कुछ क्षणों के पश्चात् हम स्वामी सुरत के वामाचारी मठ किंवा आश्रम में होगीं।" तिलोत्तमा ने स्मित से कहा। और.....कुछ क्षणों पश्चात वे भास्वतिया[20], यशोवर्मन सुत धग के राज्य में स्थित स्वामी सुरत के आश्रम में उपस्थित थी।

यशोवर्मन सुत धंग द्वारा प्रशासित शासन की पत्तन[21] खजुरावाहक से 20 मील दूर विन्ध्यपर्वत श्री उपपत्या में वसित एक खर्वट ग्राम शिव पुर कान्तार की अटवी स्थली में स्थित एक आश्रम। आश्रम के अधिष्ठाता थे वामाचारी मतानुयायी सुरतानन्द। स्वामी सुरतानन्द का आश्रम पूर्णतः वामाचारी मठ से साम्य रत था। चूने और पत्थर के संयोग से विनिर्मित इस आश्रम में अनेक कक्ष-उपकक्ष थे जिनमें साधना-उपयोगी सभी सामग्री एकत्रित थी।

आश्रम का मुख्य भवन अधो त्रिकोणाकार में निर्मित था, जिसके मध्य में विपरीत रति आसक्त देवी की प्राणवान सी युगनद्ध मुद्रा में स्वच्छ धनसार वर्णी पाषाण से निर्मित प्रतिमा थी। दैव्या प्रतिमा के नीचे आमन्द आनन्दोदधि मे निमज्जित पुरूष की प्रतिमा ऊर्ध्व मुख किए, लेटी थी।

इस मुख्य कक्ष में ही भैरवी चक्र, लता साधन विधान आदि मैथुन प्रधान साधनाएं समय-समय सम्पादित होती थी। इसी कक्ष में चेलहीन, प्रेष्ठा मुग्धांगानाओं के कामोल्वण अंगो के स्वैरिणी चित्रांकन का अद्भुद-विभूत, कक्ष-भित्तियों पर मोहक रंगों की सहायता से चित्रित किया गया था। किसी चित्र में भग मन्दिर की परिक्लेदित[22] दीवारों के विस्तार मध्य में काम दैव्या का तरलीय पराग[23] स्रावित था तो किसी चित्र उत्कीर्णण में मनोहारी भगान्तराल में जगत्प्रसूता के पाटल अधरों का परिभूषण।

स्वामी सुरतानन्द के मुख्य आसन के सम्मुखी दीवार पर एक विचित्र तैल चित्र भास्वत[24] रंगों से लिखा था। यह चित्रांकन स्वयं स्वामी जी ने किया था। भगचण्डी के मध्य प्रदेश में ललना के योनि पल्लव विकसित पद्म की भांति स्फुट है जिन पर सुवर्णाभा का दर्शन शोभित है। कामदृश[25]-पल्लवों पर छादित क्षीण लोम राजि पर भी पारज्[26] वर्णी लेपन है जिन्हें विस्तीर्ण करता अलौकिक उज्जवलता से भास्वत हिमवर्णी कर्पूर स्फट् लिंग का प्रकटीकरण हो रहा है। लिंग की अधिपत्यक्ता से कामजाह्नवी की तारल्यता का अमल नीर-उदभव हो रहा है। इसी पदार्थ से देवी योनि के पारज्मय अधरोष्ठों का मोहाभिशेष सम्पन्न हो रहा है।

हिमलिंग के ऊर्ध्व देश में लिंग शुबि[28] के ऊर्ध्वस्थ शातकुम्भीय[29] आसन स्थिर है। आसन के चक्रवाल[30] में षोडस पद्मों का प्रसृत्वर है। इन सोलह कमल दलों पर अ से अः तक की षोडसी मात्रिकाएं दैव्या रूप में लिखित हैं।

सभी मात्रिकाओं की प्रमुग्ध रूपप्रभा स्मित वदन, स्थिर चित्त और स्नेहा[31] दभ्र दृष्टि से हिमलिंग के श्लक्ष्ण[32] और निर्णेक[33] सर्ग को निहार रहीं थीं। हिमलिंग के श्वभ्र[34]-ऊर्ध्व में, प्रज्जवलित दीपशिखा की प्रभा से सम्पूर्ण सिक्त आसन पर अग्निशिखा के वर्मन[35] में प्रबद्ध महादेवी कमलासन पर अर्द्ध विनिद्रितावस्था में नभ मण्डल के दीर्घतम विस्तार को अर्द्ध निर्लिप्त नेत्रों से देख रही है। महादेवी के ओष्ठ मन्दस्मित से स्फुट-स्फुट है। महादेवी के मृणालमय उत्संग में धौत पुरूष ऊर्ध्व दिक् को निहारता लेटा है। धवलपुरूष की श्वेत देहयष्टि विचित्र- आलोक किरीट से पूरित है! महोदवी के उच्छ्रित[36] श्रृंग व्रत पांशु पयोधरों से अमलक्षीर की द्वय-क्षीण धाराएं वेगवती पयस्विनी की भांति स्तनोद्भव हो पुरूष लिंग के ऊर्ध्व में संयुक्त हो एक रूप धारण कर निष्वृजिन[37] लिंग सुषिर[38] में प्रवेश कर रही थी।[39]

इस विचित्र चित्र के विषय में स्वयं स्वामी जी उनके प्रसन्न मन से कभी-कभी शिष्य संवर्ग को बताते थे-उनका प्रसन्न निनाद वाग्रूप में प्रमद विभोर हो प्रकट होता-

-"देखो.......देखो वामा-उत्संग में ईरण[40] लिप्त पुरूष अब उठेगा......अब उठेगा, क्योंकि इसकी मूलाधारिणी नागिनी क्षीरपान से पूर्ण, तृप्त हो गई है। महादेवी वामा का हास्य ध्वान[41] और उसकी भाविक[42] ईहा[43] पर महारूढ़ हो पुरूष को ऊर्जस्विन[44] बनाएगी। महारूढ़ा इसके कश्मल[45] को क्षार-क्षार कर, अपनी मृणालिक भुज वल्लरी मे अपने कृत्स्न[46] स्नेह में, अपनी निष्पंक मनोरमा में बांधकर महासमाधि की निःशेषता[47] में ले जाएगी। फिर पुरूष-पुरूष नहीं रहेगा, वामा भी नहीं रहेगी, सकल संविद्[48], संसृति[49] और सर्ग समाधि संवर्त[50] मे लीन हो जाएगें। शेष रहेगा निःशेष.....और मात्र निःशेष।" कहते-कहते स्वामी जी के विग्रह[51] मे शातकारी[52] तरंगे आन्दोलित होने लगती-उनके पुण्डरीक नेत्र आकाशी नीलिमा के विहंगम विस्तार में स्थिर हो जाते। उनका गौर वक्त्र[53] उज्ज्वलता के शाम्पेय किरीट से वेष्ठित हो उठता। वे भाव समाधि में डूबे जाते।

जाति भेद से परे स्वामी जी के आश्रम में समाज के सर्व वर्ग नागर जन निःशंक रूप से आते-जाते थे। मुग्धा[54] गेहिनी, पुरन्ध्री[55], प्रेयसीःबल्लभा[56],

साध्वी[57], मुक्ता और स्वैरिणी[58], रूपजीवाएं[59] आदि सभी वामलोचनाओं[60] का आश्रम में विशेष सम्मान होता था। आश्रम के सभी शिष्य वनिता वृन्द का यथोचित सम्मान करते। कभी किसी सुन्दरी को वासनात्मक दृष्टि से देखना दण्डनीय अपराध था। अतः उस आश्रम में मुग्धाएं सुरक्षित थी।

आश्रम से शत बांस परिमाण पर महाश्मशान अवस्थित था जिसमें अहिर्निश भगवान हव्यवाह अनेकानेक स्वरूपों में विभक्त होकर अपनी अर्चिष[61] जिह्वा से आत्मा के काय[62] कंचुको की चाटन क्रिया किया करते थे। कृष्णवर्त्मा[63] की धूम कुण्डलियां अश्रान्त[64] रूप से व्योम वक्ष पर घनमेचक चक्रवाल बनाती पुष्कर[65] मण्डल को कपिल[66] रंग से रंग-रंग देती-कभी-कभी तो जगदात्मा भगवान प्रभाकान्तादित्य[67] भी उसके घन छादन से ढक जाते।

इस महाश्मशान में धूमा, छिन्ना, मतांगी, तारा, काली, भैरव इत्यादि तंत्र सम्मत देवी-देवताओं के मन्दिर बने थे, जिनमें शवसाधक, श्मशान साधक, अघोरपंथी, कापालिक इत्यादि पथ के अनुयायी साधक साधन सम्पन्न रत रहते थे। उनका योगक्षेम भी स्वामी जी के आश्रम से होता था। इस महाश्मशान में अश्वत्थ, न्यग्रोध, श्यामली एवं अन्य वानस्पत्य, वनस्पति भूरि मात्रा में उगे हुए थे।

महाश्मशान और आश्रम के पूर्व दिक् में पुनीत नीरमहि का कल-कल निनादित नीर अपनी नित्य यात्रा सम्पन्न करता अर्णव[68] देव में लीन हेतु अनंत पथ पर अश्रान्त रूप से बहा जा रहा था। इसी जल में शैव कापालिक अपने भस्म मण्डित देह को पखारते थे तो भ्रमरालकों[69] से सुसज्जित मुग्धा[70] और मध्या[71] नायिकाएं नवतारूण्य की हिरण्य तेजसी काया का उत्ताप शीतल जल में स्नान कर मन्द करने का उद्योग करती थी।

लगभग तीन वर्ष पूर्व इसी महाश्मशान में अनंतवज्र के एक ऐसा हृत्विदारक दृश्य देखा था जिससे उसका साधक मन बाणविद्ध मृगी की भांति पीड़ा के पारावार[72] में निमज्ज होकर आहत हो उठा था।

अनंतव्रज ने पूषन्[73] प्रभा से मण्डित, विद्युदुन्मेष से दीप्ति यौवन से सुसज्जित परकीया[74] नायिका को देखा था। उसके कौसमिक गात्र पर शोक-वियोग की परत थी। पदमाक्षुओं से अश्रु वारि बह-बह उदयसवितृवर्णी[75] कपोलों को गीला कर रही थी। निश्चय ही उसके निकटस्थ परिजन ने स्वर्गारोहण किया था। शोकग्रस्त वनिता वृन्द में वह सुकुमारी भार्योढ़[76] ऐसे प्रतीत होती थी मानो

शुभ्र नक्षत्रों में जैवात्रिक[77], कान्तिमयी कामनियों मे जैसे सौदामिनी। उसके दीप्ति वदन से जैसे चन्द्रिका ही स्रिवत थी, सकल सुषमा अर्क की उल्लोलनाएं ही कल्लोलित थी अथवा हर्ष का अमोदलब्धि ही तरंगायित था।

अनंतवज्र अपनी परमाध्या माँ तारा के श्री चरणों में प्रणाम निवेदित कर लौट रहा था। अनंतवज्र परमेष्ठिन्[78] की विद्युदुन्मेषी[79], मंजुल कृति का दर्शन कर चकित हो उठा। यद्यपि वह सुषमा की द्युति माल्यालंकार और मण्डल द्रव्यों से हीन थी, तथापि उसकी सोमस्रावी ज्योतिष छवि में कहीं कोई मालिन्यांश उपस्थित नही था।

अनंतवज्र का साधक मन रूप की धरत्री द्युमणि शोभना के मनोज्ञ दर्शन से समुत्पन्न सहज समाधि के सूर्क्षणीय[80] भाव से स्थापित होने जा ही रहा था कि सहसा उसने देखा.....एक आघौरिक वेषी, भस्ममण्डित कापालिक उसके समीप आ उपस्थित हुआ है।

अनंतवज्र स्पष्ट देख रहा था, भस्मलिप्त मेघवार्णी देहस्वामी कापालिक के कामितृ, कुत्सित और किल्विष[81], विग्रह के चारों ओर अन्धतमस् का घेरा था। उसके अभीकाक्षों[82] में हिंसक वृक[83] पशु का निर्वाद[84] था। अनंतवज्र तत्क्षण जान गया वह कामकीट, कापालिक कपाल सम्मत साधक का छद्म रूपधारी है-जिसका साधना से कोई सम्बन्ध नहीं।

अनंतवज्र सत्वर गति से उन दोनों के समीप पहुंचा। चारू लोचनाओं के वृन्द में अविचल स्थिर रूचिरा, भीतमृगी की भांति अश्रुपूरित लोचनों से कापालिक को देख भयविजडित हो चुकी थी। अनंतवज्र ने सुना-

—"री आविद्धा, विश्वसृज[85] की मोहनकृति, नव्ययौवन की प्रत्यक्षकांति! री लावण्य की विद्युल्लता, जग्नमोहिनी रति की प्रतिमूर्ति!! री साधकार्चित सुन्दरी!!! तेरी रूप ज्योत्स्न् निस्त्रिश[86] को मैं नमसित[87] करने का आकांक्षी हूँ। रे अहोभाग्य है भैरवी। आ.......मेरे पुण्य गात्र से सम्मिलित हो अपना इहजन्म कृतार्थ कर। मेरी साधना सहचरि बन। महाअघोर से प्रत्यक्षीकरण कर। मेरे तिरोधान[88] में तिरोहित हो जा और महासमाधि के सरित्पति में लयलीन हो! आ. .....आ...... रूचिरा..........आ....ऽ........ऽ।" कहते हुए कूट कापालिक ने मंजुला की मृणाल भुज अपने कठर हाथ से पकड़ ली।

—"नही.......नही...........यौनाचार साधना नहीं है। संभोग समाधि नहीं है..... मुझे मुक्त करो....। मुझे मुक्त करो........।" वह रुदन कर उठी।

मदिरापान से उन्मत्त कापालिक अपनी विद्रूप हँसी से हँस उठा।

"यौनाचार! संभोग! नहीं देवी। यह अनैतिक और पापपंकिल चर्या मेरे साधकाचरण नहीं।" कहते हुए उसने अपने आरक्त नेत्रों से सुधांशु रश्मियों से निर्मित सुन्दरी के मृदुल कोमल तन को बलात अपनी ओर कर्षित किया।

"नहीं..........।" वह विलख उठी!

जनसम्मर्द स्तब्ध था। वनिता समुदाय भयत्रीत और अनंतवज्र अमर्षित। पर सकल जन विवश और राजाज्ञा से परवश थे! राजाज्ञानुसार कोई भी सत्पात्र साधक किसी भी ऐसी भार्योढ़ रमणी से जिसमें भैरवी के अन्तर्वाह्य लक्षण प्रकटित हो, साधनार्थ प्रस्ताव कर सकता था।

रुदनरत रमणी को छद्मवेषी कापालिक श्मशान क्षेत्र मे बने एक शून्यालय में ले गया। अनंतवज्र त्यक्त[89] प्राण की भांति निर्वाक-निश्चल गात्र लिए खडा रह गया। उसके अर्न्तयामी ने प्रथम वार इस भांति से कुपात्र कालमुखी[90] कापालिक अवधूत कौल साधकों के प्रति विद्रोह का शंखनाद किया। क्या यह निकृष्टता ही साधना है? साधकों के भेष में वृजिन[91] गुणी अधम नर इस प्रकार कब तक अपनी वासना स्पृहा से सीमान्तिनियों के मदिर प्रांगण को अशौचित करते रहेंगे? इनकी कामोषर्बुध[92] में आत्रेयी[93] मुग्धा भी होम हो जाती है और निर्रावि[94]-नितंम्बिनी भी।

अनंतवज्र जन संसाद[95] से दूर चित्यास्थली में उगे एक सघनपाती वृक्ष के नीचे बैठ गया और उस विवश ससिद्धि[96] कुल्या[97] के विषय में अनुचिंतन करने लगा। जिस स्थान पर वह बैठा था वहाँ से वह शून्यागार स्पष्ट लक्षित होता था जिसमें साधन के नाम पर छद्म-अवधूत उस सुभार्या[98] से बलात्संग कर रहा था। उस शून्यागार से कुछ ही दूरी पर गगनगामिनी ज्वालाओं से परिपूर्ण चिता दहन सम्पन्न हो रहा था।

"भ्राता अनंत किस चिन्तनाब्धि में लीन हो। क्या कपाल मालिन की भांति तुम भी श्मशान सेवन रत हो बन्धु।" अनंतवज्र के समीप ही नरकण्ठी स्वर निनादित हुआ। अनंतवज्र का सकल मनन जैसे पलायित हुआ हो। यह स्वर व्यंजना उसकी चरिपरिचित थी। उसके गुरुकुल के अमल रत्न अनंगवज्र की स्वरध्वनि सर्वशोकहारिणी होती ही है। वह त्वरा से उठा और हर्षातिरेक से प्रमुदित हो अपने गुरुभाई को कण्ठ से लगा कर प्रगाढ़ालिंगन किया!

"मेरे गुरुवर्य के अलौकिक रत्न! बन्धु अनंगवज्र!! तुम्हारा स्वागत है।" वह प्रसन्न गिरा से बोला।

—"अनंगवज्र! यौवन का प्रखर दीप्ति-आदित्य। नर सौन्दर्य का सकल सुषम, तेजस्विता का अंशुवाण[99], अकल्क[100], अकव[101]-वा पुरूष। श्मश्रुहीन गौर सुकान्ति से मण्डित-चान्द्रिक मुखश्री भ्राजक अनंगवज्र के विषय में यह तथ्य माननीय था कि वह 'अयोनिज[102]' है और किसी विशिष्ट कार्य सम्पादन हितार्थ महागुरो मत्स्येन्द्र-द्वारा उसका अवतरण हुआ है। सम्भवतः इसी हेतु उसकी संज्ञा 'अनंग' विभूषित हुई। यद्यपि अनंगव्रज जन्मसिद्ध था, तथापि गुरु-आज्ञा और कृपा प्राप्त कर उसने अनेक दुर्गम्य साधनाओं को प्रत्यक्ष कर अष्ट सिद्धियां प्राप्त कर ली थी, पर अनंगवज्र सिद्ध होने पर निराहंकारी था। उसका चित्त सरल और शिशु वृतिक सा स्वच्छ-निर्दोष थ। उसका जन्म हेतु क्या है? वह अभी तक अनविज्ञ था।

—"अनसूय अनंत, तुम्हारे अन्तरेदधि में अत्यूर्मियों[103] का महावाह हो रहा है! ऐसा प्रतीत होता है। किस चिन्ता की श्यामा ने तुम्हारी चितिधरा को निभृत[104] कर रखा है मित्र।" अनंतवज्र ने अनंगवज्र की औद्धत्य[105] भाव से प्रश्न किया!

उत्तर में अनंतवज्र ने सकल प्रसंग, जो कुछ समय पूर्व ही घटित हुआ था, सुना दिया फिर आर्त स्वर में कहा!

—"इस प्रकार साधक वेष में, चौर, दस्यु, तस्कर, समाज-राष्ट्र विरोधी तत्व धर्म-सम्प्रदाय को रसातल में ले जा रहे हैं। साधना के नाम पर यौन व्यभिचार कर रहे हैं। नरबलियां दी जा रही हैं, निक्षिप्त निधि प्राप्ति के हितार्थ शिशुमेध यज्ञ किए जा रहे हैं। नर रक्त की महा-आहुतियों से व्योमवक्ष विदीर्ण हो रहा है, अबलाओं के चीत्कार से दिक्पाल प्रकम्पित हो डोल उठे हैं। पापाचार से धरित्री थर्रा उठी है मित्र, धर्म विकल हो उठा है। कैसे हो उद्धार? कैसे इस त्राश पाश से जन-जन को मुक्ति मिले? कैसे.....? कैसे......?"

अनंतवज्र का कण्ठ वाष्वित हो उठा। नेत्रों कोरकों में अश्रु पृषत् उभर आए।

—"तुम्हारी चिन्ता अस्वभाविक नहीं है मित्र। पर मेरे स्वान्त स्थल में एक नवीन चिन्ता का उदय हो रहा है। यवन आक्रान्ताओं के आक्रोश, आतंक और आक्रमणों से भारतमाता महार्त चीत्कार कर रही है। निशि-वासर माँ के कण्ठ से उद्धृत कारुणिक चीखों से मेरा अन्तर विंध गया है। वे राक्षस आक्रान्तक मन्दिरों को, मठों को ध्वस्त कर रहे हैं, राजवंशों की प्रदीप पंक्तिया निर्ज्योत कर रहे हैं। अब हमें शास्त्र ही नहीं शस्त्र भी अपनाने होगें। जन जन को एकत्र कर उन्हें सैन्य

प्रशिक्षण के साथ ही 'शास्त्र' प्रशिक्षण भी देना होगा क्योंकि राज्यबल निवीर्य हो चुका है-राजपुरुष परस्पर द्वेष-ईर्ष्या की महाग्नि में दग्ध हो-होकर एक द्वितीय पर प्रहारित हैं, भारत वसुन्धरा का वासुदैव कुटुम्बकम् भाव विछिन्न हो रहा है। इन सबको एक सूत्र में पिरोना होगा.....पर.........पर गुरुदेव मौन हैं? उनकी अनुज्ञा से हीन हम निर्बल हैं-वे हमें सामर्थ्य प्रदान करें और आज्ञा भी।" कहते-कहते अनंगवज्र के मुख पर सूर्य उग आया, नेत्रों मे पूषण द्युति की उर्मिलाएं नृत्य करने लगी! उसके भुज दण्डों में स्फुरण होने लगा और उस अनुचान पुरूष के साधना मण्डित, तपःदेह में वीरत्व का राज सप्रकट हो उठा। अपकारक यवनों के प्रति प्रज्ज्वलित बृहदभानु की जातवेदस ज्वालाओं पुण्य-आलोक में अनंगवज्र का सम्पूर्ण देह पिण्ड प्रकाशित हो उठा!

—"इस हेतु हम सब महाशक्ति का आराधन कर उसे प्रकट करें। वह अपने तीक्ष्ण असि युक्त खड्गों से आततायियों का विध्वंश करेगी-उनके सैन्य बल, बाहुबल को निर्मूल कर धरित्री को निष्पंक करेगी।" अनंतवज्र विचार पूर्ण मुद्रा में व्योमवक्ष को निहारता बोला!

"बस, यही हमारा नपुंष भाव है, हमारे निवीर्यत्व का द्योतक चिंतन है, हमारे उदात्त पौरूष का अभिहास है। हम अपयानिक नहीं, अपशंकित बने! बाह्य शक्ति को नही अन्तर्धाशक्ति को प्रकट कर स्वदेह को उसका वाहन बनाएं। यही श्रेयंकर है, यही अभीष्ट और यही है करणीय कृत्य।" अनंगवज्र का यौवन पुनः उज्ज्वलत हुआ।

महाराज्ञी तिलोत्तमा अनंगवज्र का दिव्य रूप निहार कर चकित थी उसे प्रतीत हो रहा था जैसे उसका स्वजात पुत्र ही उसके सम्मुख हैं। उसके पीन पयोधरों मे एक विचित्र परिस्फुरण हुआ, निमिषमात्र में ही उसकी कंचुकी पय आर्द्रता से उत्क्लेदित हो उठी। वक्षस्थल जैसे फटा जा रहा था। तिलोत्तमा की मुखश्री की मनोरमता में व्याकुलता को परख लोलापा चकित हो चोद्यस्वर में बोली-

—"यह क्या? महाराज्ञी, सामान्य मानवी की भांति आपकी मुखच्छवि पर व्याकौल्य मण्डन क्यों?"

"सखि लोलापा। यही मातृत्व है, यह व्याकुलता नहीं जननी की सुखानुभूति है जो अपने जातस् सुत के वीर्यवान रूप को निहार समुत्पन्न होती है। अब हमें अपना स्थूल रूप प्रकट करना ही होगा। अनंगवज्र को मेरे प्रत्यक्षाशीष की महती

आवश्यकता है। जिस महायज्ञ के सुकृत सम्पादन का घोरतर संकल्प अनंग के आन्तर क्षेत्र में समुदित हुआ है, वह बिना मात्र क्षीर के परिपूर्ण नहीं होगा।" अभी तिलोत्तमा की बात समाप्त ही हुई थी कि उस शून्यागार से (जिसमें कापालिक कालमुख सुलोचनी प्रमदा को बलात्संग के लिए ले गया था) वह परणिता रमणी रुदन करती हुई निकली!

जैसे उसके आर्त रुदन से धरणी डोल उठी, दिक्पाल भी व्यथित हो उठे, प्राणतोषिणी प्रभंज स्तब्ध हो गया, नभोमण्डल ही हाहाकार कर उठा, श्मशान स्थली चीत्कार कर उठी, निखिल ब्रह्माण्य ही प्रकम्प से भर उठा। प्रमदा का वेष खण्डित हो चुका था उसके तनारोहित, विच्छिद्रित वस्त्रावरण से बलात्कीता की गौरवर्णी काय कांति की उज्ज्वला अश्रुमोचन करती बिलख उठी थी। प्रेष्ठा के नितम्ब प्रसारित घन मेचक कुंचित कुन्तल श्मशानी भस्म से लिप्त-सिप्त होकर भस्मभूधर हो चुके थे। वह क्षिप्र वेग से दौड़ती हुई समीपस्थ प्रज्ज्वलित चिता के गगनगामी ज्वालागार में कूद पडी। अग्नि का संयोग पा उसका नवनीती स्निग्ध कोमल देह पिण्ड धूं.....धूं...... कर जल उठा।

–"देखो........देखो.......मित्र.......देखो वह रमणी रत्न उस छद्मवेपी कापालिक की आखेट बनकर चिता-आहुति बन गई।" अनंतवज्र के नेत्रों से अश्रुकण छलक उठे। अनंगवज्र स्तब्ध था!

–"लोलापा, इस जगत का बैषम्य देख.....। स्त्री को माता पुकार कर पुरूष उसे कैसे चिताक्षिप्त करता है। उस नारकीय वासना के कुत्सित कीट को मैं अवश्य दण्ड दूंगी।" तिलोत्तमा का अमर्ष मण्डित तीव्र स्वर मुखर हुआ। इसके पूर्व कि लोलापा-तिलोत्तमा को प्रशान्त करे उसने अपने स्थूल पिण्डस तत्वों को सघन करना प्रारम्भ कर दिया, पर इसके पूर्व कि तिलोत्तमा का कलेवर स्थूल तत्वों मे धारण करे, लोलापा का सूक्ष्म शरीर चिताग्नि के आभ्यान्तर केन्द्र स्थित दग्धिता रमणी के देह में प्रविष्ट हो गया।

उसी क्षण ज्वलंत रमणी का अग्नि वेष्ठित वर्ष्मन् द्रुत वेग से चित्या से उछला। प्रज्ज्वलता काष्ठ छिन्न-विच्छिन्न हो गया, अर्चिस पिण्ड यत्र-कुत्र विखर कर जलने लगे।

उपस्थित जन सम्मर्द चकित, स्तब्ध और भयाक्रान्त हो परिरक्षण हेतु सुरक्षित स्थानों की ओर दौड़े पर अनंग और अनंतवज्र अपने स्थान पर स्थिर हो एक नवलीला देखने लगे।

का संवेग संसिद्धि के परम लक्ष्य की ओर प्रसत्वर गति से संसर्गित हो उठा था।

अकस्मात् उसके मुख में उसने दिव्य मिष्ट का अनुभव किया। एक तरल तरंग के क्षीर सुस्वाद को उसकी रसना स्पष्ट ग्राह्य कर रही थी। उसे प्रत्यक्ष लग रहा था उसके अधरों के मध्य नारी स्तनाग्र का पाटल वलय उपस्थित है और उससे सतत पयवारि निसृरित हो-हो कर उसके मन-प्राण में दिव्य-ऊष्मा का सनात संचार कर रही है।

—"तुझे माता के पयोधर पान का संवेद[126] ज्ञात नहीं था पुत्र, इसलिए तेरा पुत्रत्व अपूर्ण था। मेरे इस क्षीर से तेरे ज्ञानदीप की संवर्तिका[127] निर्वात-निष्कम्पित होगी-साथ ही तेरे संस्कार की सम्पूर्णता भी।" अज्ञात स्वर ने अनंगवज्र के कर्ण पटल का स्पर्श किया। उसे उसी क्षण एक नवबोध गम्य की भी प्रतीति हुई। जैसे तुहिन सिक्त कोमल कर पल्लवों ने उसके सिर को थामा हो फिर किन्हीं अज्ञात, ऊष्मा सहित स्निग्ध-अधरों ने अत्यन्त स्नेह से उसके उन्नत ललाट पर अभिजिघ्रण[128] और ममत्व से परिपूर्ण दीर्घ चुम्बन लिया हो।

अनंगवज्र के नेत्र मुंद गए। वह भाव समाधि में प्रविष्ट हो गया! अनंतवज्र स्थिर मूर्ति की भांति स्तब्ध देख रहा था। तभी उसके कर्ण समीप मधुर ध्वनन् का अनुगुंजन हुआ-

—"रे नारीजयी अनंतवज्र। लोलापा की विस्मृति हो गई क्या? पर मैं तेरे कठर 'पौरूष' का उद्दात्य कैसे भूल सकती हूँ?"

—"लोलापा ऽ....।" अनंतवज्र का हृद्पद्म तीव्रता से सम्पदित हुआ और स्वर-संराव[129] में प्रकम्पन आया।

—"हा रे, तेरे प्रणय और संकर्षण में प्रबद्ध कामाचारिणी लोलापा, तेरे समीप ही है मेरे पुरूष।" लोलापा के हास्य स्वन[130] की मधुरिमा अनंतवज्र के आसपास संतरित हुई। साथ ही रतिक्रिया से समुत्पन्न नारी गंध से अनंतवज्र की घ्राणेन्द्रियां मुग्ध हो उठी।

—"लोलापा तुम यहाँ? क्यों और किस प्रयोजन से तुम्हारा आगमन हुआ है? क्या तुम निखिल ब्रह्माण्य को मैथुन याग में निमज्जित करना चाहती हो। कुछ क्षण पूर्व ही मैंने कामाक्षी की द्युति छवि का भी दर्शन किया है। क्या कारण है?"

"हमारे आगमन के मूल में विश्व श्रेयस ही है पुत्र। निर्भीत बना। तुम्हें तो ज्ञात ही है, लोलापा विनोदप्रिया रमणी है, यहाँ भी वह परिहास करने से नहीं

38. शून्य
40. ध्वनि
41. कल्याण
42. इच्छा
43. प्रतापी
44. मोह-मूर्च्छा
45. अखण्ड
46. अखण्डता
47. चेतना, ज्ञान बोधि
48. आवागमन, भवचक्र
49. प्रलय
50. मुख
51. आनन्ददायी
52. मुख
52. मुग्ध कर देने वाली विवाहित स्त्री
53. पुत्र-पति से युक्त स्त्री
54. प्रेमिका स्त्री
55. पतिव्रता
56. कुलटा स्त्री
57. वेश्याएं
58. सुन्दर, युवतियां
39. कापालिक कपालवज्र से प्राप्त एक ध्यान का वर्णन।
70. नवयौवन प्राप्त ऐसी नायिका जो सरल और भोली हो। वह प्रेमकलाओं से अपरिचित होने के कारण प्रेमक्रीडा (सम्भोग-आदि) से भयभीत हो जाती है। नायक द्वारा ऐसा आचरण करने पर उसका विरोध न करते हुए अश्रुपात करने लगती है-ऐसी नायिका की संज्ञा मुग्धा है।
71. यौवन सम्पन्न 'मध्या' नायिका-मुग्धा के विपरीत होती है। अर्थात् वह कामकलाओं की ज्ञाता होती है और नायक के विपरीत आचरण पर विरोध कर क्रोध उत्पन्न करती है। ऐसी तरुण्यकामा 'मध्या' है।
59. अग्नि देव की एक जिह्वा
60. काया के वस्त्र (यहां आशय मानव देह)
61. अग्नि
62. निरन्तर
63. आकाश
64. भूरा
65. सूर्य
66. समुद्र
67. माथे पर पड़ी हुई लटें (जुल्फें)
68. समुद्र
69. आरक्त कांति (शोभा)
72. विवाहित स्त्री जो सम्भोग सुख से सुपरिचित हो
73. उदयकालीन सूर्य की लालिमा युक्त आभा के समान
74. विवाहित
75. चन्द्रमा
76. ब्रह्मा
77. बिजली (आकाशी) की चमक से युक्त
78. सम्मान
79. कलुष
80. कामुक आँखे
81. भेड़िया
82. कुत्सा
83. संसार को उत्पन्न करने वाला
84. असि (धार)
85. पूजित
86. अन्तर्धि
87. सागर
88. शव
89. कापालिकों के एक उपसम्प्रदाय 'कालमुख' के पंथ मे दीक्षित साधक। कालमुखी नर कपाल में भोजन करते हैं ये चिता भस्म अपने शरीर पर लगाते हैं, सुरापात्र और

का संवेग संसिद्धि के परम लक्ष्य की ओर प्रसत्वर गति से संसर्गित हो उठा था।

अकस्मात् उसके मुख में उसने दिव्य मिष्ट का अनुभव किया। एक तरल तरंग के क्षीर सुस्वाद को उसकी रसना स्पष्ट ग्राह्य कर रही थी। उसे प्रत्यक्ष लग रहा था उसके अधरों के मध्य नारी स्तनाग्र का पाटल वलय उपस्थित है और उससे सतत पयवारि निसृरित हो-हो कर उसके मन-प्राण में दिव्य-ऊष्मा का सनात संचार कर रही है।

–"तुझे माता के पयोधर पान का संवेद[126] ज्ञात नहीं था पुत्र, इसलिए तेरा पुत्रत्व अपूर्ण था। मेरे इस क्षीर से तेरे ज्ञानदीप की संवर्तिका[127] निर्वात-निष्कम्पित होगी-साथ ही तेरे संस्कार की सम्पूर्णता भी।" अज्ञात स्वर ने अनंगवज्र के कर्ण पटल का स्पर्श किया। उसे उसी क्षण एक नवबोध गम्य की भी प्रतीति हुई। जैसे तुहिन सिक्त कोमल कर पल्लवों ने उसके सिर को थामा हो फिर किन्हीं अज्ञात, ऊष्मा सहित स्निग्ध-अधरों ने अत्यन्त स्नेह से उसके उन्नत ललाट पर अभिजिघ्रण[128] और ममत्व से परिपूर्ण दीर्घ चुम्बन लिया हो।

अनंगवज्र के नेत्र मुंद गए। वह भाव समाधि में प्रविष्ट हो गया! अनंतवज्र स्थिर मूर्ति की भांति स्तब्ध देख रहा था। तभी उसके कर्ण समीप मधुर ध्वनन् का अनुगुंजन हुआ–

–"रे नारीजयी अनंतवज्र। लोलापा की विस्मृति हो गई क्या? पर मैं तेरे कठर 'पौरूष' का उद्दात्य कैसे भूल सकती हूँ?"

–"लोलापा ऽ....।" अनंतवज्र का हृद्पद्म तीव्रता से सम्पदित हुआ और स्वर-संराव[129] में प्रकम्पन आया।

–"हा रे, तेरे प्रणय और संकर्षण में प्रबद्ध कामाचारिणी लोलापा, तेरे समीप ही है मेरे पुरूष।" लोलापा के हास्य स्वन[130] की मधुरिमा अनंतवज्र के आसपास संतरित हुई। साथ ही रतिक्रिया से समुत्पन्न नारी गंध से अनंतवज्र की घ्राणेन्द्रियां मुग्ध हो उठी।

–"लोलापा तुम यहाँ? क्यों और किस प्रयोजन से तुम्हारा आगमन हुआ है? क्या तुम निखिल ब्रह्माण्य को मैथुन याग में निमज्जित करना चाहती हो। कुछ क्षण पूर्व ही मैंने कामाक्षी की द्युति छवि का भी दर्शन किया है। क्या कारण है?"

"हमारे आगमन के मूल में विश्व श्रेयस ही है पुत्र। निर्भीत बना। तुम्हें तो ज्ञात ही है, लोलापा विनोदप्रिया रमणी है, यहाँ भी वह परिहास करने से नहीं

चूकी।" अनंतवज्र ने अदृश्य ध्वनि ग्रहण की! वह तत्क्षण स्वर व्यंजना को पहचान गया-साश्चर्य बोला-

—"महाराज्ञी तिलोत्तमा!?"

—"हाँ पुत्र, मैं तिलोत्तमा ही हूँ। कुछ क्षण पूर्व तुमने मेरी कुक्षिजात कन्या कामाक्षी का नहीं मेरे ही स्वरूप को देखा था। मेरे कलेवर में कामाक्षी का रूप क्यों भाषित हुआ? यह रहस्य है, इससे तुम्हें कोई प्रयोजन नहीं। एक क्षण रुककर तिलोत्तमा ने पुनः निःस्वन किया।

—"महात्मा सुरत भी मुझे प्रियंकर हैं। इसलिए मैं कभी-कभी उनके आश्रम में आती हूँ-पर वे मेरे 'महाराज्ञी' स्वरूप से अविज्ञ है। उन पर यह रहस्य अप्रकटित ही रहे-स्मरण रखना। महात्मा सुरत के आश्रम पर अब से कुछ क्षण पूर्व ही तुम्हारे अपमार्जक पुरूष गुरुवर्य श्री मत्स्येन्द्रपा का सुआगमन हुआ है।" सूचना प्रदान कर तिलोत्तमा की वाणी मौन हो गई।

---

1. पवित्र
2. जागती हुई (स्त्रियां)
3. इधर-उधर घूमना, भटकना
4. पुरुष-इन्द्री
5. मन
6. इच्छा
7. जगतमार्ग (स्त्री लिंग)
8. वालों की लटें (जुल्फें)
9. गम्भीर
10. उत्तम अंगो वाली
11. कामदेवी
12. कामरस से भीगी
13. लोक (जगत) की पगडन्डी
14. गर्माहट से युक्त छिद्र
15. प्राणवायु
16. पापहीन (स्वच्छ) स्त्रियां
17. कल्याणकारी
18. मरकत मणि
19. चमक से परिपूर्णाएं
20. राजधानी
21. गीली
22. रज
23. चमकीले
24. काम की अक्षि (योनि)
25. सोना
26. दीप्तिमान, चमकीला
27. छिद्र
28. स्वर्ण
29. गोलाई
30. स्नेह का आधिक्य
31. कोमल, चिकना, चमकदार
32. स्वच्छ
33. छिन्द्र
34. कवच (घेरा)
35. ऊँचे
36. निष्पाप
37. छिद्र

38. शून्य
40. ध्वनि
41. कल्याण
42. इच्छा
43. प्रतापी
44. मोह-मूर्च्छा
45. अखण्ड
46. अखण्डता
47. चेतना, ज्ञान बोधि
48. आवागमन, भवचक्र
49. प्रलय
50. मुख
51. आनन्ददायी
52. मुख
52. मुग्ध कर देने वाली विवाहित स्त्री
53. पुत्र-पति से युक्त स्त्री
54. प्रेमिका स्त्री
55. पतिव्रता
56. कुलटा स्त्री
57. वेश्याएं
58. सुन्दर, युवतियां
39. कापालिक कपालवज्र से प्राप्त एक ध्यान का वर्णन।
70. नवयौवन प्राप्त ऐसी नायिका जो सरल और भोली हो। वह प्रेमकलाओं से अपरिचित होने के कारण प्रेमक्रीडा (सम्भोग-आदि) से भयभीत हो जाती है। नायक द्वारा ऐसा आचरण करने पर उसका विरोध न करते हुए अश्रुपात करने लगती है-ऐसी नायिका की संज्ञा मुग्धा है।
71. यौवन सम्पन्न 'मध्या' नायिका-मुग्धा के विपरीत होती है। अर्थात् वह कामकलाओं की ज्ञाता होती है और नायक के विपरीत आचरण पर विरोध कर क्रोध उत्पन्न करती है। ऐसी तरुण्यकामा 'मध्या' है।
59. अग्नि देव की एक जिह्वा
60. काया के वस्त्र (यहां आशय मानव देह)
61. अग्नि
62. निरन्तर
63. आकाश
64. भूरा
65. सूर्य
66. समुद्र
67. माथे पर पड़ी हुई लटें (जुल्फें)
68. समुद्र
69. आरक्त कांति (शोभा)
72. विवाहित स्त्री जो सम्भोग सुख से सुपरिचित हो
73. उदयकालीन सूर्य की लालिमा युक्त आभा के समान
74. विवाहित
75. चन्द्रमा
76. ब्रह्मा
77. बिजली (आकाशी) की चमक से युक्त
78. सम्मान
79. कलुष
80. कामुक आँखे
81. भेड़िया
82. कुत्सा
83. संसार को उत्पन्न करने वाला
84. असि (धार)
85. पूजित
86. अन्तर्धि
87. सागर
88. शव
89. कापालिकों के एक उपसम्प्रदाय 'कालमुख' के पंथ मे दीक्षित साधक। कालमुखी नर कपाल में भोजन करते हैं ये चिता भस्म अपने शरीर पर लगाते हैं, सुरापात्र और

दण्डधारी भी होते हैं। इनका इष्ट नरमुण्डों की माला से विभूपित नीलकण्ठ शिव का उग्ररूप होता है। कालमुखी अपने इष्ट के सद्रूप रहने का प्रयास करते हैं।

90. कालुष्य गुणी
91. कामाग्नि
92. रजस्वला स्त्री
93. ऐसी स्त्री जो रजस्वला न हो
94. मनुष्यों का जमावडा (भीड़)
95. मदमस्त स्त्री
96. विवाहित सुन्दरी
97. पति की प्यारी स्त्री!
98. सूर्य
99. पापशून्य
100. वर्णनानातीत (जिसका वर्णन नही किया जा सके)
101. बड़ी लहरें
102. ढकना, आच्छादन
103. आलिंगित
104. अग्नि से युक्त
105. अग्नि संयुक्ता
106. चिता की अग्नि
107. चिता की अग्नि
108. गर्व
109. चमकीला
110. दीप्तिमती
111. देव
112. चन्द्रमा
113. कर्पूर
114. रति (कामदेवी)
115. अमर
116. शरीर
117. प्रताप से परिपूर्ण (युवती)
118. लाल ओष्ठ
119. सम्मान-पूजा
120. स्वीकार
121. कल्याणकारी शिव
122. बोध (अनुभव)
123. दीपक की वत्ती
124. अत्यन्त स्नेह को प्रदर्शन करने के लिए सिर का सूंधना
125. ध्वनि
126. ध्वनि

सुरत आश्रम के उपवन में श्यामली तरु के नीचे बने उच्चासन पर योगियों, यतियों और गृहस्थों के श्रद्धा केन्द्र, प्रत्यक्ष घिषणा के भद्र पुरूष, क्षेम के सजाग्र स्वरूप, सुकृत के स्वकृर्त निःश्रेयस के संवृत, महायोगी, पद्मासनस्थ हो स्थिर बैठे थे। जैसे उस्रपति[1] ही व्योमाध्व[2] का परित्याग कर अपने हिरण्य तेजस के सहित क्ष्मा[3] के क्षेम[4] हितार्थ ही आ प्रकट हुए हों। धरा उनसे धन्य होकर प्रमुदित हो रही है, और गगन अपनी कादम्बिनी[5] प्रच्छदपट्टिका[6] से पूरे उपवन को छादित किए है! उनका यौवन संवृत आनन मारीचिमाली की मखूख सवितृ से मण्डित था। आदिनाथ मत्स्येन्द्र के पुलस्ति[7] मुख पर सदैव के समान भाविक दर्शना थी और अधोन्मीलित स्वच्छ नेत्रों में ब्रह्म का भास्वर भाव।

तारुण्य अवस्था से सुसम्पन्न अनंतवज्र और अनंगवज्र दोनों शिष्य उनके सम्मुख वासुकि आसन पर स्थिर चित्त से बैठे थे! महागुरु के मुख से ध्वनन् हुआ–

–"तुम दोनों के मानस में जो दुश्चिन्ताएं हैं, मैं उनसे अनविज्ञ नही हूँ, वत्स। अनंत को स्वपौरूष का गर्व था, इसके दुराग्राह के पश्चात भी मेरी इछा नही थी कि अनंत नारी निर्ग में प्रवेश कर मिथुनाचार के कुपंक में गिर कर अशौच्यि हो जाए, पर इसका अहंमोचन भी अत्यावश्यक था।"

"मैं क्षमा चाहता हूँ पूज्यपाद। इस अक्षम्य त्रुटि के लिए प्रायश्चित कर्म का उपदेश करें इष्टदेव। आपके कृपा औदार्य से उसे प्राणमन से सम्पूर्ण करूंगा।" अनंतवज्र की मन्द्र वाणी में श्रद्धा, विनय, स्तवन भाव की पूर्णा थी।

मत्स्येन्द्र प्रभु के अर्द्ध स्फुटित नेत्रों में कृपाब्धि[8] की उत्ताल तरंगे–तरंगायित हुई, स्नेह ने करूणा से उपगूहन[9] किया, मुक्ति निवासित पक्ष्यों ने विश्वशर्म्मण्य का भावोदय हुआ, सुकुमार क्षमितृ[10] उनके नेत्रों में क्रीड़ा कर उठा! उनके अधर स्मिता से प्रोक्त हो उठे।

"ऐसे उद्द्राव[11] की उपस्थिति क्यों पुत्र? तुम में कालुष्य का कूट कज्जल है ही नही। जो अत्यल्प इतर था वह पलायित हुआ, अब कैसा प्रयश्चित? साधनरत रहो, मंत्र, देव, गुरु और क्रिया से परांगमुख न हो, शान्ति तो तुम्हारे समीप ही है पुत्र।" फिर महाभाग मत्स्येन्द्र अनंग की ओर उन्मुख हुए, मुध पर गम्भीर गिरा उनके श्रीमुख से निःसृरित हुई।

–"अनंग, अब वह करणीय काल उपस्थित है, जिस हेतु तुम्हारा

प्रकटीकरण जगती में हुआ है। आओ वीकाश क्षणों में तुम्हें तुम्हारे कृर्तव्य का निर्देश दे दूं।" कहते हुए शिवरूप मत्स्येन्द्र आसन परित्याग कर सघन गुल्म-द्रुमलताओं से प्राच्छादित लतावितानी मण्डप की ओर चल दिए। अनंतवज्र वही स्थिर रहा, जबकि आज्ञानुशासन में बद्धित अनंगवज्र महागुरो का अनुगमन करता उनके समीप जा पहुंचा और अंजिलबद्ध हो नमस्यमुद्रा में गुरु आदेश की प्रतीक्षा करने लगा।

स्वच्छ स्फाटिक-आसन पर स्थित हो गुरुवर्य श्रीमत्स्येन्द्र ने अभिष्वंगी[12] दृष्टि से अनंग की अन्वीक्षणा[13] की। अनंग के नुतनेत्र गुरु पद्नखों से निसृरत ज्ञानालोक का भाविक दर्शन कर रहे थे।

"मेरे मनस्वी, ऊर्जस्विन् पुत्र। कलि के कालुष्य से कलंकित जनसम्मर्द आज विश्व वसुधा को निरन्तर पतन की ओर ले जा रहा है। धरणी अपकारकों के दुष्कृत्यों से अभिमर्दित हो आर्त स्वर में त्राहि-त्राहि कर उठी है। इस्लामिक आक्रान्ताओं ने मेदिनी के हरित को विच्छिद किया है, उसके पयवसित वक्ष में शूल वेध कर विदीर्ण करने का प्रयास किया है, देवप्रासाद, चैत्य, मठों को उन अपकीर्तिकों ने पूर्ण विध्वंशन् का अशुभ संकल्प लिया है, वहीं तथाकथित, चोर, तस्कर वृतिक, मद्यप एवं अन्य असामाजिक आपराधिक तत्व धर जन, वामाचारी, अवधूत, कापालिक, अघोर, कालमुखी साधकों की परिचर्या धारणा का नाट्य रचा कर व्यभिचार, अनाचार, पाषण्ड और अंधविश्वास का कुसंतार कर रहे हैं। कैसे, किस भांति इन सबसे मेदिनी मुक्त होगी पुत्र? क्या निवारण है इस पतन का? कैसे सत्य, विभु और धर्म का स्थापन हो? तूने कभी चिंतन किया पुत्र?" महामत्स्येन्द्र की चिर प्रशान्त वाणी में जन संसरण के हेतु चिन्तन था।

"हाँ गुरुदेव, मेरे मनस में भी यही चिंता है। यवनों के संरम्भ से, आत्मबल, वीर्यबल ही धरित्री को मुक्त करेगा। राजसत्ता के आधीस परस्पर संघर्ष कर रहे हैं, उनके पास ऐक्य शक्ति का अभाव है, सैन्यबल निर्बल-क्षीण और सैनिक पारस्परिक संघातों से, भोग-विलास से निवीर्य हो गए हैं, इसी कारण यवन अहिर्निश शस्य श्यामला को आहत कर रहे हैं, राज्याधीशों का पराभव कर उन्हें भृत्य बना रहे हैं।" अनंगवज्र ने संयताञ्जलि से निवेदन किया।

"तेरे विचार का मैं समादान करता हूँ पुत्र। इस आपद से मुक्ति और धर्म की सुदृढ़ स्थापना के हेतु ही तेरा इह अवतरण है पुत्र। इस हेतु तुझे सैन्यबल संगठित करना होगा, जन जन में ओजस्विता की प्रव्रज्या देनी होगी, वीर्यवान और

बलवान पुरूष को नपुंश जनों में प्रकट करना होगा।" महागुरु के मुख से निदान वाणी वेष मे मुदित हुआ।

–"किन्तु गुरुदेव यह राष्ट्रीय कर्त्तव्य तो राज्याधीश, सम्राट का है।"

–"......................।" अनंगवज्र मौन रहा। उसकी भूस्पर्शी दृष्टि गुरुपदनखों को ही देखती रही। कुछ मौन के पश्चात गुरु ही पुनः बोले–

–"इस नृतुकाल में ही मुझे अकल्क कर्म प्रारम्भ करना है। इस हेतु मुझे एक नवीन पंथ का प्रवर्तन करना होगा। भग साधनाओं का खण्डन कर साधकों को ब्रह्मचारी बनाना होगा उन्हें शास्त्र के साथ शस्त्र भी सोंप।"

–"त्राहि.....गुरो......त्राहि.......।" अनंगवज्र आर्ततः चिल्लाया–"जो मेरी आराध्या है उसका अपमान कैसे करुं? अंशुलि देवी योनि को कैसे अपश्री घोषित करूं?"

"तू कर्ता का मिथ्याभिमान न कर पगले। मेरा निष्कलुष और अभीरु उल्बण ही तेरे माध्यम से इस सुकृत्य का संराधन करेगा। मेरी सर्वशस् वृति मुझे समाख्यायित करेगी। तू नाथ पंथ का प्रवर्तक बन, हठयोग का प्रसार कर, योनि उपासनाओं के स्थान पर ब्रह्मयोनि की उपासना के समभ्यर्चन का सदुपदेश कर। सर्वप्रथम सत्ताधीशों को, अपने ब्रह्मबल, युतिबल और सिद्धिबल से अपने आधीन कर नाथ संकुल की वृद्धि कर। राजवंशी राजपुत्र योद्धा हैं, वे जनसामान्य के श्रेष्ठ प्रशिक्षक सिद्ध होगें। उनसे नाथपंथी सैन्य शिक्षण, कूट शिक्षण और राजनीति शिक्षण प्राप्त कर श्रेयशसर्ग का निर्माण कर सकेगें। आज से तेरी संज्ञा अनंगवज्र नहीं गोरक्ष होगी–गोरक्षनाथ।"

अनंगवज्र को प्रत्यक्ष प्रतीति हो रही थी कि शक्ति का महासंचार उसके मनस क्षेत्र में सत्वर गति से संचरित हो रहा है। प्राणवात्या का फूत्कार मूलाधार से सहस्त्रपद्मदलों की कर्णिकाओं तक महासंचार से समग्र ब्रह्माण्य को प्रकम्पित कर रहा है। महागुरु के दिव्यतम देह से निःसृरत अनेक यौगिक सिद्धियां, ऊर्जाओं का रक्त संवेग और संविद उसके देह में प्रविष्ट होते जा रहे हैं। उसका दैहि प्राकार दीर्घतम होकर गगनाधिपति चण्ड मार्तण्य के बृहद्भानु वर्तुल मण्डल के समक्ष खड़ा था। महाभ्र उसे लघुतर और मही मण्डल उसके चक्षुस् विस्तार में सिमट आया था। उसके विभावसुमण्डित देहयष्टि से भुवनभास्कर की एकादश रश्मियों का स्फूत निःसारण हो उठा। वह कृतकृत्य हो गुरुपदों के महिम त्रिविष्टप में काष्ठवत गिर गया। वह निर्वाक था, कण्ठ अवरुद्ध और 'बैखरी', 'मध्यमा' का उच्छेद और पश्यन्ती[14] का संहार कर परा[15] रूप हो गई।

"पुत्र गोरख, उतिष्ठ हो संज्ञेय हो। नाथयोगी परिमण्डल का संगठन कर हठयोग की स्थापना कर। मैं ऋषिपद से तुझे अभिषिक्त करता हूँ। ज्ञान की उत्सधरा हिमालय की प्रालेय-उपत्यका में मैं तुझे हठयोग शिक्षण प्रदान करूंगा। योगेश्वर की कृपाबलम्बन प्राप्त कर तू अल्पकाल में ही निष्णात हो जाएगा। हम आज ही हिमांगन की यात्रा पर चलेंगे।" महागुरु मस्त्येन्द्रपा ने गोरक्ष को अपने पादक्षेत्र से उठा कर हृदयालिंगन करते हुए उनके शिरोदेश में हस्तचालन किया।

"क्या इस महायज्ञ में अनंतवज्र भी मेरा सहयोगी रहेगा गुरुवर?" गोरक्ष ने जिज्ञासा की।

"निश्चय ही नहीं। योनि उपासन ही उसे संस्कृत है, उसी से उसे सायुज्य लाभ होगा।" आदिनाथ ने स्पष्ट किया-

"उसकी अशान्ति, विक्षोभ्य!?"

-"कामाचार्या वज्रडाकिनी की तद्रूरूपा लोलापा ही उसे प्रशान्त करेगी पुत्र! वह अपनी महाराज्ञी सहित इसी तपोवन में, यहीं उपस्थित रह कर हमारे आभाषण का श्रव्यलाभ प्राप्त कर रहीं है।"

-"महाश्मशान के प्रांगण में मुझे दिव्य यौगिनी का सनात्[16] भाव प्राप्त हुआ पूज्यपाद। वह कौन थी? अज्ञात है, पर उसका ममत्व संपूरित अतिरूप सौन्दर्य अभी दृष्टि-अभ्र मे भाषमान हो रहा है।" गोरक्ष स्मरण कर बोले-

महामय गुरु के अधरों पर स्मित ने क्रीड़ा की। वे एक शून्य-आंतरिक्ष को लक्ष्य कर बोले-"देवि तिलोत्तमा, अपनी पाटली प्रभा के दिव्य दर्शन से मुझे क्यों वंचित करती हो।"

उसी क्षण नारी द्वय की दिव्य संरचना अंतरिक्ष से प्रकट हुई। जैसे सकल सौन्दर्य का सार ही आकाण्डजाताओं की देहबल्लिरियों में रम रहा था, स्वयं अरुण ने ही उनकी चन्द्रिकान्ति की काया पर अपनी आरुणिक सुषमा का आलेपन किया था, अथवा शोभा की प्रस्वनि और प्रभा की उत्स क्ष्मासुता[17], अयोनिज संभवा जानकी की कौमार्य्य कांति ही उनके मनोरम गात्रों में विश्रान्ति पा रही थी।

चारु लोचना तिलोत्तमा के तारकाभाषित[18] ललाम रूप का आदिनाथ ने अभिसंस्त्वन[19] किया और लोलापा के सुहासित मुखवलय को स्निग्ध अक्षपु निहारा! अनायास ही लोलापा का कोमलहाथ अपनी नादेयीवर्णी[20] निबन्धनीया[21]

पर गया और सव्रीड़ित भाव से उसने अपनी हिमांशु[22] मुखच्छिवि को वस्त्रावरित कर लिया, मानो सद्यवधु अपने कान्तजनक[23] को समीप पा मुखावरित हुई हो!

आदिनाथ हँस उठे फिर मिष्ठ वाक् से बोल–"वनिताओं में सामाजिक भाव का जन्मजात औदार्य और गुण है। सच लोलापा तुम मेरी पुत्रवधु के समतुल्य ही मनस सुखदात्री हो पुत्री।"

–"पर महात्मन्.........।" तिलोत्तमा के मुख से संययसिक्त वाक्य मुखोद्धृत हुआ।

"मेरे मंजुल मन में आपके प्रति............" एक क्षण मौन होकर रजस्रोता[24] रूपिणी तिलोत्तमा ने अपना वाग्स्वर पूर्ण किया–"आपके प्रति वात्सल्यभाव की निमग्ना उमड रही है।"

–"यह बृह्माण्य[25] जननी का ही भूति श्रे:यश भावातिरेक है महादेवी। पुष्यवती[26] अम्बा अपने स्वजात को दुलार कर रही है, इसमें आश्चर्य क्या?" महागुरु के तपः मण्ड–आस्य पर पुनः स्मित–प्रसून का स्फुट्न हुआ। वे कह रहे थे–

–"कपर्दिन का क्रीड़ांगन आपकी प्रतीक्षा कर रहा है दैव्या, महागौरी की सिताभ्र[27] छटा भी आपकी प्रतीक्षित है।"

–"कृत्स्न धूर्जटि के हिमोद्यान में यह कुसुमवारिदवपुस्[28] अवश्य सुरभित होगा, कुछ समय और शेष है। पुत्री की दीक्षा और धर्म के पूर्ण होते ही मैं अपने जनक गेह की महासुषीमधरा[29] में गमन करूंगी। क्योंकि उन्होंने अपने जमातृ[30] को गृहजमाता बना लिया है, शम्भु अपने पुत्रीकान्त[31] को आने ही नही देते। अब पुत्री ही सांसारिकता का परित्याग कर अपने मनोज्ञ[32] के अभ्यग्र[33] होगी। तिलोत्तमा के स्मित मे परिहास घुल गया। वातावरण में प्रमदा का हर्ष छा गया। वे सिद्ध–साधिकाएं प्रसन्नमन से और प्रमुदित भाव से महात्मा सुरत के आसन की ओर चल दी।

सुरत पञ्चमुण्डासन पर निर्विकार भाव से पद्मासनस्थ हो अर्द्धस्फुटित नयनों से प्रजनूपरा[34] का प्रकाशात्मन दर्शन कर रहे थे। उनकी प्रजुष्ट[35] चिति प्राणिधान[36] में अचानक अस्थर्य आया–जैसे अग्निस्फुर्लिगों से विनिर्मित होकर चार मूर्तियां उसके समीप आ गई हो। उन्होंने नेत्र खोले आसन के समीप ही स्फुर्जित देहयष्टि की तपःमण्ड मधुरिमा से साच्छादित योगिनी निष्कला की ओर दृष्टि निक्षेप कर मन्द पर स्पष्ट स्वर में बोले–

—"देवि! निष्कला, आज यह आश्रम धन्य हुआ। जैसे महास्यून[37] ही अपने प्रफुल्लित परिकर के साथ ही इस आश्रम मे प्रघूर्ण[38] रूप से उपस्थित हुए हैं। वे...........।" सुरत का वाक्य पूर्ण भी नहीं हुआ था कि द्वार पर से एक शिष्य ने विनय भाव से स्वोच्चार किया—"गुरुवर्य आलोकप्रक्षरी[39] पंचप्रधुर्णगण[40] द्वार पर उपस्थित होकर प्रभु दर्शन प्राप्ति के वांक्षी हैं।"

सुरत त्वरा से उठे, उनके मुख पर प्रसन्नता का मयूखपति[41] उग आया। उनके साथ ही सुरत की साधना सहचरी योगिनी निष्कला भी उठी। पक्ष्यकाल में ही सुरत द्वार पर थे, जहां, महायोगी कौलेन्द्र भगवान मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, अनंतवज्र, रूपोत्तमा[42] तिलोत्तमा तथा-रमणीरत्न लोलापा खडे थे।

—"भगवन्, मेरे सर्वस्व प्राण, मेरे गुरुदेव।" सुरत महाभाव से मत्तविभोर हो मत्स्येन्द्र प्रभु के पदकमलों पर निराश्रित कण्ठ दण्ड के समान भूलुण्ठित हो गए और अपनी भाक्तीभावी अश्रु वारि से अपने निर्प्रणाश[43] गुरु के पादपद्मों का अश्रु[44]-पर्युक्षण करने लगे।

पर्याकुल[45] सुरत को विभु मत्स्येन्द्र ने आपने पाद क्षेत्र से उठा कर कण्ठ से लगा लिया, वे स्नेहनिग्धा से बोले-

—"महात्मन् सुरत, ज्ञान का अध्वनीन[46] पौरूष ऐसे भावातिरेक में निप्रबद्ध नहीं होता। देवि, प्रत्यभिज्ञा तुम्हारे संकर्षक[47] प्रकर्षाश्रय में भी सुरत इसी भांति भाविक हो रहते हैं?" श्री मत्स्येन्द्र ने सुरत पर दृष्टि से शक्तिपात किया।

"यह प्रमाञ्जयी[48] प्रभु की कृपा का ही सुफल है भवान्, आपका प्रमा[49] वरदान ही दिव्यभाव का उत्स है विभु।" निष्कका ने मत्स्येन्द्र प्रभु के चरणों में प्राणिपात[50] निवेदित किया।

महात्मिन् सुरत प्रतिश्रय[51] वासी उनका शिष्य संवर्ग सुरत के प्रकाशात्मन गुरुवर्य के चक्षु प्रत्यक्ष के लिए उमड़ पडा। शम्पा, शाकंमभरी पोषिणी, पंकजाक्षी, फाल्गुनी, वत्सला, निर्भासा, चारुरूपा, तुरीया आदि नवकन्याएं अथवा कुलकन्याओं ने भी श्री गुरु की चरण अभ्यर्चा सम्पन्न कर अकुलदेव का दिव्याभ्यर्चन किया। सबके अन्त में आश्रम से ही संबधित ब्रह्मकुलोत्पन्न पण्डित शिपिविष्ट ने भगवान् रूपिन मत्स्येन्द्र को अभ्यर्हित[52] किया।

प्रत्यक्ष में सुरा और सुन्दरी से दूर भागने वाले लगभग 40 वर्षीय शिपिविष्ट स्वयं को तांत्रिक कहलाने में गर्व का अनुभव करते थे, यह पृथक बात है कि

अनेक भागीरथी प्रयासों के उपरान्त भी उन्हें कोई तांत्रिक सिद्धि नही मिली थी सो महागुरु के चरणों में उन्होंने विनय की–

–"पुण्यश्लोक, भगवन्, तांत्रिक सिद्धियां सहचरी बनें, ऐसा आशीर्वचन दें।"

"रूपचण्डी[53] नित्य पाठ करें विप्रवर। वह निखिलेश्वरी आपकी वांक्षा को पूर्ण कर समाज पूजित करेगी।" मत्स्येन्द्र प्रभु क्षण मात्र में ही उनकी पात्रता लक्ष्य कर मधुर वचन बोले।

"सप्तशती कण्ठस्थ है प्रभो। शवसाधन और मुण्ड साधन भी सम्पन्न किया है, पर लक्ष्य आप्राप्त ही रहा। अंजन, पादुका और गुटिकाओं का निर्माण किया, पर सिद्धि जैसे मुग्धा परिकीया के समान छलती रही। शिपिविष्ट इतने मन्द स्वर मे बोले कि मात्र मत्स्येन्द्र ने ही सुना।

"महामयी देवी तिलोत्तमा, विप्रवर्य को आप अपने कृपाश्रय में ही रखें। मत्स्येन्द्र प्रभु ने सस्मित तिलोत्तमा से कहा। इसके पूर्व कि तिलोत्तमा कोई उत्तर दे, शिपिविष्ट शीघ्रता से बोले–"तुम आर्यावर्त के किस भूखण्ड को अपनी दैवीय सुषमा से सुशोभित करती हो देवि!? क्या वहाँ नीलोत्पलाच्छादित[54] सरोवर हैं? साधकालयों के उत्तम प्रकार और साधकों का सम्मान है? क्या वहाँ भैरवी चक्रानुष्ठान में उपयोगिता पौष्पी[55] और पुंमोहिनी[56] कान्ताएं सहज ही प्राप्य है? वहाँ उपवन और हर्म्य[57]–अभाव तो नहीं है?

"नहीं आचार्य, वहाँ सर्वदा सभी सौख्य उपस्थित रहते हैं। हर्म्य, प्रासाद[58], दैव्यालय, उपवन प्रमदवन, चारूवनिताओं का मत्त–प्रत्त[59] जघन सुख और यौवनप्रकामी[60] अभिसारिकाओं के भ्रमरालकों के घन प्रच्छाय का मेरे देश में भूरि बाहुल्य है तंत्रज्ञ।" तिलोत्तमा के सहजारक्त अधरों पर स्मेर स्फुट् हुआ।

–"तब तो निश्चिय ही दिवलोकवासिनी[61] हैं आप। उस हिरण्यलोक में वास कर मैं कृतार्थ हो सकूंगा देवी।" शिपिविष्ट के अन्तर्मायी दिविलोक के स्मरण से मुग्ध हो उठे।

अहन पर्यन्स आश्रम में अध्यात्म–उत्सव का आमोद लब्धि तरंगायित होता रहा। पितृप्रसु[62] बेला की प्रारंभिका में ही मत्स्येन्द्र प्रभु ने अनंत को उनकी हिमालयीन यात्रा से पुनर्गामन तक सुरत आश्रम में ही निवास करने का निर्देश दिया। अनंतवज्र ने यह जिज्ञासा नहीं की कि वे सुषिमधरा धाम में किस प्रयोजन हेतु प्रस्थान कर रहे हैं, अनंगवज्र ने भी कुछ व्यक्त नहीं किया।

इस मध्य एकान्त अवसर पा लोलापा अनंतवज्र से संवादित हुई–

–"रे निष्ठुर पुरूष मेरे विधुभासित[63] यौवन में स्मर–उत्ताप का महाज्वर उत्पन्न कर उसके प्रशान्ति अनुष्ठान के पूर्व ही पलायन कर लिया। शौण्ड[64] पौरुष से मण्डित मेरे प्रियंकर नायक, क्या इसी भांति मेरा श्लक्ष्ण[65], शुच्य[66] स्मरगृह कामाग्नि की ज्वालाओं में दग्ध होता रहेगा।" कहते हुए लोलापा ने अपने सुरभित तनु से अनंत वज्र आकर्षण किया। लोलापा के स्वर में कहीं वासना नहीं है, और न ही उसके आचार में कामपीडिता का अश्रान्त दाह। अनंतवज्र को यह भी संज्ञात था कि लोलापा कामित्रा कामिनी नहीं है। हास्य–परिहास की वृति लोलापा का परिचय है, फिर भी वह उसके मनोद्गार श्रवण कर उसका हृत्पद्म तीव्रता से स्पंदित हुआ।

प्रत्यक्ष मे अनंतवज्र बोला–

–"देवि लापा तुमसे रतिद्वन्द्व में पराभव हुए बिना मेरा दर्प नष्ट नहीं होता। तुम्हारे विभ्राज[67] यौवन के संयोग को प्राप्त कर मैं कृतार्थ हुआ।" उसका स्वर अत्याधिक गम्भीर था और नेत्र भूस्पर्शी।

"हमारा समीचक[68] योग पुनः सम्पन्न होगा वज्र। इस वार कोई स्पर्धा नहीं, सपर्योपक्रम[69] होगा वाज्रिक सिद्धांतों के अनुरूप होगा और विशेपतः तुम्हारे सद्गुरुदेव के पुण्याशीष से वह अंग समन्वय अतिमायक[70] होगा।" लोलापा भी गम्भीर हो गई। अनंतवज्र मौन ही रहा। एक क्षण पश्चात वह पुनः बोली–

–"देव–अंनत, मेरा यह यौगिक देह..........! इस देह से, इस काल में मैं तुम्हें कामशिष्ट मैथुन से मोक्ष का उपक्रम अथवा साधन प्रत्त[71] नही कर सकती, क्योंकि इस तन् में भू तत्व की सघनता नहीं है, सूक्ष्मता है। इसका दुरुपयोग न होने का अर्थ है, मेरे स्थूल देह में विकार विस्फारण।"

–"मैथुन से मोक्ष!?" अनंत का विद्रूप हास्य स्वनन् हुआ–"इस माया को विराम दो कामाचारिंणी, योनिसाधनाओं से जगती मन को मुक्त करो। अब ये साधन अपकारक सिद्ध हो रहे हैं, कामाग्नि की लोल जिह्वा महावीरों के ओजस् को चाट रही है, वसुन्धरा व्यथा से चीत्कार कर रही है देवी, इसे भावनिभृत[72] ही रहने दो, अनिस्तीर्ण[73] रूप से विस्तारित न करो।"

–"लोलापा को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। इसी उद्देश्य की सिद्धि साध को ही सिद्ध करने अनंतवज्र की यात्रा त्रियादेश में हुई थी।

–"तुम्हारी सायुज्य मुक्ति इसी अतिरेक पंथ में निहित है अनंत। क्षौम न करो। मैं पुनः तुमसे भेंट कर तुम्हारे अशान्त हृत् पर अपने स्नेह पर्जन्य से श्रान्तसुख दूंगी।" लोलापा कह कर तिलोत्तमा के पास चली गई।

निशीथ काल में..........। श्री मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, तिलोत्तमा, लोलापा और शिपिविष्ट अपने-अपने आसनों पर स्थिर मति, स्थिरप्रज्ञ हो आसनासीन थे। जैसे उपवन के निशीथ काल में दो भास्कर और दो हिमांशु विग्रहों का उदय हुआ था। मत्स्येन्द्र और गोरक्ष के घृष्णि देहावरण में भानुपति परिगत[74] था और रूपाङ्गी तिलोत्तमा तथा माधुर्य की सज्जा लोलापा के मंजुलवदन जैसे सुधांशु[75], हिमांशु[76] यमल की भांति ज्योत्स्न भास थे।

सर्वप्रथम मत्स्येन्द्र का उद्‌भासित[77] देह भवन धरित्री से उठा और कुछ ऊर्ध्व हो आंतरिक्ष में स्थिर हो गया। उनके भास्वत[78] देह पिण्ड से सहस्त्रों आलोक रश्मियों का भासु प्रसार होने लगा। उपवन दिव्यालोक से भास्वर[79] हो उठा। उनके पश्चात गोरक्ष का भासुर देहपिण्ड धरा-उत्संग से ऊर्ध्व हुआ और गुरु भ्राजक[80] दिव्यपिण्ड के समीप स्थिर आ हुआ।

शिपिविष्ट साश्चर्य सिद्धों का चमत्कार देख रहे थे। वे कुछ कहना ही चाहते थे कि तिलोत्तमा ने लोलापा को अपांग-वीक्षणी दृष्टि से देखते हुए कुछ विशिष्ट अक्षि-संकेत किया। लोलापा ने संकेत आशय ग्राह्य कर शिपिविष्ट को अपने उत्संग[81] में खींच लिया। मृदुल-सुकोमल नारी-चारु अंगों का सुवासित स्पर्श संग प्राप्त कर जैसे उनका इह जन्म धन्य हो उठा, रस की वृत्ति ही कृतार्थ हो उठी। देह में बहत्तर सहस्त्र[82] गोपिकाएं परिमुग्ध होकर रास रचाने लगी।

दोनों साधिकाएं वज्रयोग क्रियाओं मे निष्णात थी,अतः उन्होंने अपने-अपने देहस्थ अणुओं को विशीर्ण क्रम से विकीरण किया। शिपिविष्ट पूर्ण सचेत थे, उन्हें गहनतम अनुभूति हुई कि उनका कलेवर खण्ड-खण्ड हो रहा है। आरंभ में उनकी प्रतीति में हस्त-पाद देह से पृथक हुए फिर अन्य गात्र अणुओं में स्फुटन। कुछ क्षणों में ही तीनों (तिलोत्तमा, लोलापा, शिपिविष्ट) वायु परिमण्डल में घुल-मिल गए! उधर ऊर्ध्व में स्थित गुरु मत्स्येन्द्र और गोरक्ष के स्फुत्कर देह व्योम की निःसीम उन्नति मे उन्नत हो उल्कापिण्ड की भांति गगन पथ को आलोक पूरित करते हुए उत्तर दिशा मे हिमांकन के पुण्य परिसर स्फटिकाद्रि[83] के लक्ष्य की ओर गतिमान हो गए।

कामाक्षी चषकम्

1. किरणपति (सूर्य)
2. आकाशपथ
3. पृथिवी
4. कल्याण
5. मेघमाला
6. चादर
7. बिना दाड़ी मूँछ के
8. करुणासागर
9. सस्नेहालिंगन
10. क्षयाकर्ता
11. पलायन
12. अत्यन्त स्नेह
13. ध्यान से देखना
14. वह शब्द जो मूलाधार में उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म शब्द की उत्पत्ति के अनन्तर वायु के संयोग से नाभि देश में उत्पन्न होता है।
15. मूलाधार में स्थित रहने वाली नादरुपिणी वाणी परा है।
    विशेष-'परा' और पश्यन्ती वाक् केवल योगियों के लिए ही गोचर है। वस्तुतः एक ही शब्द मूलाधार, नाभि, हृदय और कण्ठ के संयोग से निष्पन्न होकर परा, पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरी इन चार संज्ञाओं से अविहित होता है। इनमें बैखरी वाणी रूप में सुनाई देती है।
16. विष्णु के पोषण का भाव-विष्णु क्षीर सागर मे वास कर जगत्पोषण करते हैं। क्षीर (दूध) स्त्रियों के स्तन में भी क्षीर सागर होता है जिससे शिशु का पोषण होता हैं, इस कारण यहां 'सनात' (विष्णु) शब्द का प्रयोग हुआ है।
17. पृथ्वी की पुत्री
18. तारों के चमक वाले
19. स्तुति
20. नारंगी रंग
21. जो बांध कर पहनी गई हो (साड़ी)
22. चन्द्रमा की शोभा के समतुल्य मुख की शोभा
23. पति के पिता (श्वसुर)
24. कामाख्या देवी के समतुल्य
25. ब्रह्माण्य को उत्पन्न करने वाली (कामाख्या)
26. कामाख्या
27. कर्पूर या चन्द्रिका की शोभा
28. जिस (नारी) देह से रज निकलता हो वह
29. अतिठण्डी पृथ्वी
30. पुत्री का पति
31. पुत्री का पति
32. प्रिय
33. समीप
34. योनिदेवी (कामाख्या)
35. अनुरक्त
36. प्रयत्न या समाधि
37. सूर्य
38. महमान
39. जिनसे प्रकाश का क्षरण हो रहा है या जो प्रकाशित हैं।
40. पांच अथिति गण
41. सूर्य
42. उत्तमरूप को धारण करने वाली
43. जिनकी कभी मृत्यु या नाश न हो, वह
44. आंसुओं से सिंचन करना, धोना
45. अस्त-व्यस्त
46. पथिक
47. प्रबल आकषर्ण के विस्तार-आश्रय में
48. मृत्यु पर जिनकी विजय हो चुकी है वह

49. ज्ञान-वरदान
50. चरणों में प्रणाम करना
51. आश्रम
52. पूजित करना
53. नवकन्याओं में, नटी, कापालिनी, वेश्या, रजकी, नापिता (नाइन) ब्राह्मणी, शूद्रा, ग्वालकन्या (ग्वालिन) मालिन (माली कन्या (विवाहित)
54. दुर्गा सप्तशती की एक प्रकार की पाठ पद्धति। (देखें पं. गोविन्द शास्त्री कृत 'दुर्गा सप्तशती अनुष्ठान प्रकाश'।
55. नील कमलों से आच्छादित
56. फूलों से निर्मित एक सुरा का प्रकार
57. पुरुषों को मोहित करने वाली
58. धनिकों का महल
59. देव तथा राजा का महल
60. मतवाला
61. यौवन काम (sex) की इच्छा करने वाली
62. स्वर्गलोक का ऐसा स्थान जो सुन्दरियों को सुरक्षित है
63. सन्ध्या
64. चन्द्र-आभा (चमक)
65. मतवाला
66. कोमल, मुलायम
67. स्वच्छ मार्जित
68. दीप्तिमय
69. मिलन
70. पूजा/उपासना का उपक्रम
71. सांसारिक माया से परे
72. देना
73. निभृत (ढका-छिपा)
74. जिससे पीछा न छूटे, जिसका खण्डन न हुआ हो।
75. चारो ओर छाया हुआ (घेरा, वलय)
76. चन्द्रमा का एक नाम
77. चन्द्रमा एक नाम
78. स्वयं की देह से निकला हुआ प्रकाश (चमक)
79. प्रकाशित
80. दीप्तिमान
81. चमकने वाला
82. गोद
83. देह में स्थित 72 हजार नाडियां
84. हिमालय स्थित कैलाश पर्वत

जगत्प्रसूता माँ कामाख्या के स्वयंभु चीर्ण[1] चिन्ह से मण्डित श्री विग्रह के समीप कैशोर्य की शोभा धरा, नूत्रागमित यौवन की स्निग्ध चन्द्रिका से आलेपित केलिकला[2], सुचारु सौन्दर्य की कृलप्ति[3] कृति, केवलिनी[4] कामाक्षी ध्यान चर्यारत थी। कामाक्षी का नवनीत रोषिच् मृदुल गात्र कुसुम्भवर्णी चीवर से आच्छादित था। उसके पद्मपक्ष्म मुंदे हुए और अन्तःस्थिर हो अपने लक्ष्य परम पुरूष के संधान को आकुल थे पर वह पौरुष निवृत-निष्ठुर ओजस्विन् उमाकान्त का प्रतिरूप पुरूष कहाँ? उसके नयन तरीष (पुरूष) को कहाँ खोजें?

अकस्मात् उसका निष्ठ[5] मन क्षुब्ध हुआ, उसका ध्यान निषेवण[6] भी निरत[7] नही रहा सका। यद्यापि उसके मन में नैरस्य भावोदय नहीं हुआ था, उसमें उत्फुल्लता थी, लोमराजि में प्रहर्षण था तथापि वह लक्ष्य निरुद्धवत हो गया था! इसके पूर्व कि उसके कमल नयन खुलें, बन्द नेत्रों के वाह्य देश में आलोक का स्फारन हुआ। उसके स्तिमित[8] नेत्रों के समक्ष एक दिव्यालोक से मण्डित महात्मन् का अविर्भाव हुआ!

प्रथम दृष्टयः ही कामाक्षी के नैष्ठिक[9] नेत्रों ने अपने प्रत्यभिज्ञात[10] जनक को पहचान लिया। प्रजुनोपासना[11] में प्रजुष्ट[12] अपने पितृ कलेवर की स्मृति उसे पूर्णतः थी! वे उसके प्रणेता ही नही पथ प्रदर्शक भी तो थे। उनके द्वारा उपदेशित बीज की जपश्चर्या ही ने तो उसके प्रचुरानन्द की उत्स धरा का निर्माण किया है। त्वरा से कामाक्षी के नेत्र स्फुटित हुए, सम्मुख उसके प्रजनुक[13] प्रदात्र की स्मेर छबि आलोकित थी। उनके पुनीत स्यून[14] मण्डित स्योन[15] मुखच्छवि का पुण्य दर्शन कर कामाक्षी कृतार्थ हो उठी!

—"पितृदेव! आपके भव्यविभु भाषित पदाम्भोजो[16] का मैं स्तवन करती हूँ।" कहती हुई पद्माक्षी किशोरी शीघ्रता से आसनच्युत हो अपने पिता-गुरु के चरणों में नत होने प्रयासित हुई पर उसके आलोकपित्र ने मध्य में ही कामाक्षी के मृदौल्य को थाम कर उसके अर्द्धचन्द्राकार ललाट पर अपने अधरोष्ठों से स्नेह चिन्ह अंकित करते हुए कहा।

—"पुत्री! भगवान वज्रांग-तुम्हें अभीष्ट वर प्रदान करें।" कामाक्षी के पिता वज्रधर आसन पर स्थित हुए।

"माता गत निशीथ काल से ही अनुपस्थित हैं-उनके साथ ही कामाचार्या लोलापा भी। अज्ञात नही कहाँ हैं? संभवतः प्रशासनिक कर्त्तव्य पूर्ति हित खर्वट[17]

यात्रा पर गई हों।" कामाक्षी ने तिलोत्तमा विषयक सूचना दी।

–"मैं एक विशिष्ट प्रयोजन के हितार्थ उपस्थित हुआ हूँ शातकौम्भी[18] कन्या। तुम्हें उपदेशित मंत्र का प्रथम चरण सम्पन्न हुआ। इस निष्पन्न मंत्र चरण के उपरांत मैं द्वितीय चरण का सदुपदेश करूंगा। यह पूर्वापेक्षा कुछ जटिल पर मेरा तपः निष्पीडित[20] साधनोपक्रम है। यह प्रीणदायी[21] साधन प्रियम्भविष्णु[22] है- प्रियम्भविष्णु इसलिए कि प्रेष्ठ[23] यौवन काल के आरंभिक वर्ष पूर्णतः ब्रह्मचर्याचरण में ही व्यतीत करने होंगे। विंशवर्षीय[24] वय के पश्चात् यह प्रेयस[25] साधन निष्कृष्ट[26] रूप से निष्पन्न[27] हो जाएगा। इस निष्कषाय[28]–निष्काम[29] साधन हेतु तुम मानस–कायक रूप से सहमत और तत्पर हो?"

–"आप द्वारा प्राणाय्यी[30] साधना शिरोधार्य्य है पिता। मैं मन–प्राण वचन से साधन निर्वहण को वचनबद्ध हूँ, तत्पर हूँ। मैं संयत्त[31]–संयमन[32] से अनुष्ठानिक कर्म करूंगी। कामाक्षी ने दृढ़ स्वर में कहा!

दीक्षक[33] ने दिव्या[34] कामाक्षी को पद्मासनस्थ होने का निर्देश दिया फिर स्वयं भी सजग हो अपने गुरु–इष्ट का हार्द स्मरण करते हुए वज्रधर ने अपने सकल तप को भी स्मरित किया। अपने पुंजीभूत तप की संसिद्धि सहित वज्रधर ने कामाक्षी के कर्ण कुहर में मंत्र निर्घोष किया।

निरुद्ध प्राण से संगिमत होकर स्फूर्ज बीज महास्फार को प्राप्त हो महा वात्या की भांति कामाक्षी के नैर्मल्य देह में निवासित स्वच्छ चितिधरा में निविष्टतः स्थापित हुआ। घृणिनिधि के आलोक मण्डल की भांति उसका अन्तःकरण महा–आलोक से दीप्ति हो उठा। दिष्ट[35] मंत्र बीज के प्रभाव से कामाक्षी का अन्तःक्षेत्र ही नही वाह्य तनु भी दैवीय आभा से उद्दीप्ति हो उठा। उसकी नवनीती स्निग्ध, उज्ज्वल, धन्यरूपिणी काया से शुभ्रालोक की संवित्ति[36] सौरीरूपा[37] प्रभा दिव्[38]–दिव् करने लगी।

लगभग ढ़ाई घडी तक निर्वात–निष्किंपित, निर्धूम्र दीपशिखाा की भांति अविचल, स्थिर कामाक्षी की देहवृत्ति, मंत्राधात से व्युत्पत्त शक्ति के एकाग्र संचयन में, ज्ञानस्पशीज्ञ[39] अवस्था मे सुस्थिर रही। वज्रधर ने उसके शिरोदेश में अपने स्नेहवर्षी हाथ का परिचालन किया। निःसंज्ञता जैसे उससे पृथक हुई। कामाक्षी के पद्मस्फुरित नेत्र स्फुट हुए। वज्रधर ने उसे अतिशय प्रेमिल नेत्रों से निहारा। उनके साधक नेत्रों में प्रेम, प्रशंसा और प्रतिक्षय[40] का अतिरेक भाव था। उनके मुख से स्वतः आशीर्वचन मुखर हुए-

–"पुत्री कामाक्षी, मैं प्रसन्न मन से वर देता हूँ, तेरी गणना विश्व के योषित समुदाय में सर्वाद्य[41] होगी, तू दिग्विभाविता[3] होगी, साधकों की मुकुटमणि और साधना की पर्यायलोचनी होगी। तू अभय हो, शुभ और स्वस्ति हो, स्वाच्छन्द्य[42] और स्वामिता[43] हो।"

आयतापांगी[44] कामाक्षी के मेदुर[45] आयतो[46] से श्रद्धा भक्ति अश्रुवारि के रूप में फूट पडी, कण्ठ अवरुद्ध हो गया उस निर्वाक-निश्चला ने अपने पुण्यशील गुरु के चरणयुगलों में स्वयं को उत्सिर्गत कर दिया।

–"जायोत्संग[47]-शोभनी सुता, स्त्र्यागार[48] में तेरी गर्भ धरित्री जननि उपस्थित है। मैं एकान्त क्षणों मे उससे गोप्यपरिचर्चा का इच्छुक हूँ। यहीं, इसी दैव्यालय में उससे संवादित हो विदा लूंगा।" वज्रधर ने कामाक्षी से प्रेमसिक्त स्वर में कहा!

उसके पिता माता को बुला रहे हैं, यह संकेत समझ कर कामाक्षी कामाख्या मन्दिर से निकली और अपने माँ के शयनागार में पहुँची! वहाँ तिलोत्तमा के साथ लोलापा भी थी और इसी कक्ष में...............!

इसी कक्ष में एक पुरूष! हाँ वह पुरूष ही था, पर अनंतवज्र नही। लगभग 40 वर्षीय आयु धारक पुरूष के मुख पर दयनीय भाव थे। उसके नेत्रों में विचित्र सा भाव था जिसे कामाक्षी नहीं जान सकी। वह पुरूष कोई अन्य नहीं शिपिविष्ट ही थे। शिपिविष्ट ने भी उभरते यौवन चिन्हों से सज्जित कुमारिका की ललाम छवि का दर्शन कर 'धन्य-धन्य' उच्चारण किया।

असयम अपने कक्ष में कामाक्षी को आगमित देख महाराज्ञी और लोलापा कुछ चकित हुई। महाराज्ञी ने अपनी पुत्री का ललाट चूमा। कामाक्षी का अर्द्ध मंयकाकार भाल ऊष्मित था, और साथ ही........सुता की अंगयष्टि से उसके जनक और अपने स्वकान्त की सूक्ष्म सुवास का निःसृरण अनुभव कर वह चौकी और कक्ष के एकान्त कोण में ले जाकर स्वजात कन्या से प्रश्न किया!

–"वह जगत्प्रसूः के दिव्यालय में उपस्थित रह कर आपके प्रतीक्षित हैं माता। वह आपसे एकान्त परिसंवाद के आकांक्षी हैं।" कामाक्षी ने अपने पिता का संदेश मन्द स्वर में दिया। फिर औत्सुक्य भाव से संपूरित कामाक्षी की दृष्टि आचार्या शिपिविष्ट की ओर निक्षेप्पित हुई!

"यह पुरूष रूप कौन? इस कक्ष में कहाँ से इसका अविर्भव हुआ मात?" कामाक्षी ने जिज्ञासा की!

"इस विषयक आचार्या तुझे संज्ञान देगी पुत्री। तुम यही उपस्थित रह कर आगत का परिचय प्राप्त करो।" कहती हुई महाराज्ञी लोलापा की ओर उन्मुखी हुई–"देवि लोपा, मैं अत्यावश्यक कर्त्र हेतु जगत् सृजनी के दैव्यालय में जा रही हूँ। "महाराज्ञी तिलोत्तमा सत्वर गति से प्रासाद में ही स्थित कामाख्या के मन्दिर की ओर चल दी!

–"यह आचार्य शिपिविष्ट है कामाक्षी। प्रातः प्रत्यूषमुखी बेला से तुम्हें शास्त्राध्ययन का पुनीत कर्म सम्पादित कराएंगे" तिलोत्तमा के कक्ष निर्गमन के पश्चात लोलापा ने शिपिविष्ट का परिचय कराते हुए कामाक्षी को संबोधित किया।

–"प्रणाम आचार्य।" कामाक्षी ने करबद्ध हो आचार्य को सम्मान देते हुए अभ्यचर्या की।

–"स्वस्ति.......स्वस्ति देवि कुमारी।" शिपिविष्ट ने आशीर्वचन कहे।

–"यह नारी निर्ग की महाराज्ञी की कुक्षि से प्रसूत कन्यारत्न है, आचार्य प्रवर। वर्तमान में आप इस देश की अधिशासिका के राज्यप्रासाद में है विप्रवर। इस देश में मुग्धांगानाएं ही सर्वोच्च शिखाओं के रूप में प्रतिष्ठत हैं। पुरूषो की संख्या नगण्य है, जो हैं वे सीमान्तिनियों के दासानुदास है ओर उनके महाभोग का साधन भी वे अल्प संख्य पुरूष ही हैं।" लोलापा के स्मित अधरोष्ठों से वाक् निर्झर हुआ।

"मैं सुकृत[49] भाग्यी हूँ देवि, जो इस आमोद सिन्धु में मुझे निवास करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। कृपया राजमहिषी के दर्शन करावें।" आचार्य शिपिविष्ट शतहृदा उज्ज्वल कामाक्षी की आस्य[50] सुषमा को निर्निमेषित[51] दृष्टि से निहारते हुए बोले। शिपिविष्ट को ज्ञात नहीं था कि तिलोत्तमा ही राज्याधिश्वरी है। प्रकट में लोलापा सस्मित बोली–

–"आचार्य, महाराज्ञी अपिधानित[52] है। प्रातः सौर[53] लोहित बेला में उनका मंगल दर्शन संभाव्य है।"

विस्मय[54] मनस् कामाक्षी कुछ कहना ही चाहती थी कि लोलापा ने अक्षिकटाक्ष के संकेत से उसे वर्जित किया और पुनः शिपिविष्ट से बोली–

–"आचार्य श्रम क्लान्त होगें, आइए मैं एक प्रमदकक्ष[55] के मुदास्तरण[56] पर आपके विश्राम शयन की व्यवस्था करूं।"

—"देवि! यह कैसा विस्मविभूत सिद्धि है। हम अल्पकाल में ही कहाँ से कहाँ आ गए। क्या मैं यह तंत्रोक्त सिद्धि प्राप्त कर सकूंगा? और वह प्रत्यग्र सिद्धि की प्रत्यक्ष रूपा आपकी ज्येष्ठा कहाँ चली गई?" शिपिविष्ट तिलोत्तमा का स्मरण कर बोले।

—"मनोभव आचार्य, यह विश्रान्ति काल है, आपकी सभी जिज्ञासाएं प्रातः ही पूर्ण हो सकेगी। आइए मैं आपको प्रघूर्ण[57] कक्ष में पहुँचा दूं।" लोलापा ने शिपिविष्ट को चलने का संकेत किया।

—"सिद्धाचारिणी देवि, क्या आप दोनों योगनियां भी इसी महाभव्य प्रासाद में निवासित हैं?" शिपिविष्ट कक्ष में विजडित हरिन्मणी[58], इन्द्रनील एवं अन्य अमूल्य मणियों की विद्युद्द्यौत[59] वीथी[60] दीप्ति को आश्चर्य से निहारते हुए स्रस्तर[61] से उठे।

—"अपने कक्ष में जा सकती हो कुमारी।" लोलापा ने कामाक्षी को निर्देशित किया और शिपिविष्ट के साथ अथिति कक्ष की ओर चल दी। उनके साथ ही कामाक्षी ने भी अपने शयन कक्ष की ओर प्रस्थान किया।

शयन कक्ष के द्वार पर प्रतिहाररक्षी[62] को अनुपस्थित देख कामाक्षी को किंचित आश्चर्य हुआ। द्वारपट पर ही उसे अपनी जनयित्री[63] और जनयिष्णु[64] दोनों के संवाद स्वर श्रवण गोचर हुए। वे दोनों तो जगद्योनि कामाख्या के पुण्यालय थे, उसके शयनागार में कैसे आ गए? द्वार से ही उसने मन्दस्वर मे वाक् ध्वनन किया।

—"माता........ऽ...........ऽ।"

कक्ष में हो रहा वार्तालाप विरामित हुआ। तत्क्षण तिलोत्तमा ने अवरुद्ध[65] अवर को द्वारपिधान[66] से मुक्त किया।

—"आ पुत्री आ ऽ........।" तिलोत्तमा ने स्नेहातिरेक मृदुल देहयष्टि को बांध लिया। जैसे नवजात कन्या ही हो। पिता, पुत्री और माता की त्रिस्नेहिल धारा कक्ष में उमड़ पड़ी। वे वर्णनातीत सुखसिन्धु में डूबने लगे।

---

1. विभाजित (मध्य से चिरा हुआ) 2. रतिकला
3. पूर्ण
4. ब्रह्म (शिव) के साथ एकत्व के सिद्धांत पर पूर्ण श्रद्धावान युवती
5. श्रद्धा-भक्ति से युक्त 6. अभ्यास, अनुराग

7. तत्पर
8. आश्चर्यचकित
9. पूर्णतः परिचित
10. पहचाना हुआ
11. वायु-उपासना
12. प्रसक्त, लगा हुआ, अनुरक्त
13. शरीर
14. सूर्य, किरण
15. मनोहर
16. चरणकमल (कमल के समान पैर)
17. जिसमें राज्य का कार्यालय है। (तहसील का गाँव)
18. स्वर्णवर्णी
19. सिद्ध
19. निचोडा हुआ
20. प्रसन्नता को देने वाला
21. जो पहले अप्रिय रहे पर बाद में प्रिय हो जाय।
22. अतिशय प्रिय
23. बीसवर्षीय
24. अधिकतर प्यारा
25. सारभूत (निचोड़ा हुआ)
26. सिद्ध (समाप्त)
27. स्वच्छ (वासनादि के मैल से रहित)
28. समस्त सांसारिक वासनाओं से रहित
29. उचित (प्राण से संबंधित)
30. सावधान सतर्क
31. आत्मसंयम
32. दीक्षा देने वाला गुरु
33. लोकोत्तर गुणों से युक्त (नायिका)
34. निर्दिष्ट (दिया हुआ)
35. सिद्धि निष्पत्ति
36. सूर्य पत्नि के रूप जैसी प्रभा
37. प्रकाशित आभा से आशय
38. ज्ञान से उत्पन्नत निःसंज्ञता या मूर्च्छा
39. अंगरक्षक
40. सर्वप्रथम
41. जगत्प्रसिद्ध (स्त्री)
42. स्वतन्त्रता, स्वाधीन, स्वास्थ्य
43. प्रभुत्व को धारण करने वाली।
44. जिस स्त्री की आँखो के कोर (कोने) लम्बे हो (ऐसी स्त्री)
45. स्निग्ध
46. बड़े नेत्र
47. पत्नी की गोद को शोभित करने वाली पुत्री
48. स्त्रियों के रहने का भवन (जनानखाना)
49. पुण्य
50. मुख
51. अपलक हो देखना
52. आदृश्य
53. सूर्योदय
54. आश्चर्यचकित
55. सुखदायी कक्ष
56. ऐसा बिस्तर जिस पर शयन कर मन हर्षित हो।
57. अतिथि कक्ष
58. मरकतमणि
59. आकाशी विद्युत की तीव्र चमक
60. पंक्ति
61. आसन
62. स्त्री द्वारपाल
63. माता
64. उत्पन्न करने वाला (पिता)
65. बन्द किवाड़ (दरवाजा)
66. सांकल या चटखनी अथवा बैडा जिसको द्वार पर लगाया जाता है।

अहर्मुख[1] की सुषीम[2] बेला मे शिपिविष्ट नेत्रोन्मीलित करते हूए, भगवान शूलपाणी, शितिकण्ठ[3] का स्मरण करते हुए उठे। दिक्पति दिवाकर के स्वागत का उत्सव मनाती पूर्व दिक् के शोणमुख पर अरुणाई के अनुलेपन की मंगल छवि का दर्शन कर शिपिविष्ट का मन प्रसन्न हो उठा। अकस्मात् वह चौंकें, उनके समीप ही एक स्मितज्योत्स्ना विपुलजघना[4] और इन्दीवराक्षी[5] तथा पीनोरुनितम्ब शालिनी, नवयौवन से सज्जित रूपसी रमणी उन्हें कौतुकी दृष्टि से निहारती कथन कर रही थी।

–"रे परूष[6] पौरूष धर! तुम कौन हो, यहाँ इस रजरमित मठ में कैसे, किसी प्रयोजन की सिद्धि हेतु अकस्मात् उपस्थित हुए हैं? यह योषस्परिकांकित[7] देवी पांशुला की रम्य साधना स्थली है।"

शिपिविष्ट उपवन के मुक्त स्थान पर एक सघनपत्री वृक्ष के नीचे पुष्पास्तरण में लेटे हुए थे। वे विभ्रमित मृग की भांति चत्वर दिशाओं को देखने लगे।

–"कहाँ है वह राज्यप्रासाद की मुक्ता-मोक्ति जड़ित भव्यता? कहाँ है रूचिर दर्शना नितम्बिनी योगिनी लोलापा और उसकी ज्येष्ठा परिणत शशिवदना महायोगिनी?

वे चकित यौवन विजड़ित सुन्दरी की ओर देखते हुए बोले-

–"देवि, उत्तमांगी[8] यह कौन सा स्थल है? महायोगिनी कहाँ है? क्या यह राज्यप्रासाद का ही उप-अंग है। मैं राजअतिथि गृह के मनोहारी मृदुआस्तरण पर विश्राम कर रहा था, यहाँ मुक्ताम्बर के नीचे, पुष्पास्तरण पर कैसे-किस भांति निद्रित हुआ?"

–"तुम अवश्य किसी के मृदु अभिचार का आखेट बन गए। चलो मैं तुम्हे इस मठ की अधिशासिका शक्ति रूपिणी देवी पांशुला से मिलाती हूँ।" तन्वंगी युवती के मन में पुरूष प्राप्ति की सहजकामना तरंगित होने लगी। उसे प्रतीत हुआ जैसे दैव उस पर प्रसन्न है कामकर्षणी ही वररूप में उसे पुरूष प्रदान कर रही है। अथवा उसकी नियति ही ने उसके परिभोग के लिए पुरूष प्रस्तुत या प्रदान किया है।

राज्य विधि अनुसार राज्य की जिस रमणी युवती को दैव वश या उसके

स्वयं के उद्योगवश पुरूष प्राप्त होता है तो वही उस पुरूष की प्रथम भोग्या होगी। 'भोग्या' की इच्छानुसार जब वह चाहे किसी अन्य कामिनी को अल्पकाल-दीर्घकाल के लिए प्रदान कर सकती थी! वह राज्याज्ञा प्राप्त कर उस पुरूष से रति व्यवसाय करने में भी स्वतन्त्र थी। अतः वह परागवती अति मुदित और प्रसन्नगात्र हो उठी थी। जबकि शिपिविष्ट पूर्णतः भ्रमित हो चुके थे। उनकी धिषणा निर्णय नहीं कर पा रही थी कि भृत्य क्या है? उन्होंने अपनी दीर्घ शिखा को व्यवस्थित किया और कामालांगी युवती के साथ चल दिए।

"रूप सौन्दर्य और औदार्य की त्रिवेणी मेरी कामांगी काया नित्यानंग[9] के उष्ण सहर्षोच्छ्वास[10] का आतपसहती तपस्विनी का ही साररूप हो चुकी है पुरूष। इस नगर की मदिराक्षियों[11] का कश्य मद भी मुझमें में ही समाहित-संकुलित होता है। सम्भवतः इसी कारण मेरी पुष्पितकाया की संज्ञा 'मदयन्तिका' से अवहित है। अमन्दोत्साह से हरितद्र्वांकुरों[12] पर अलक्तरचित[13] और मंजीरबद्ध[14] पदसंचारण करती हुई मदयन्तिका की प्रमुद गिरा उच्चारित हुई।

अपनी ही आत्मरति का गान करती मदयन्तिका का कथन श्रवण कर शिपिविष्ट आनंदित हुए। राजप्रसाद की रूचिर भव्यता हो अथवा तपस्विनी का तपः दग्धालय। रतिश्रम से समुत्पन्न स्वेदजल समुदाय से लिप्त भाल, कपोल और बसत संचरित कामिनियों की कायिक सुरभि से समृद्ध मनोहारिणी अभिसारिकाओं का आवास ही सुखदात्र-आलय है। ऐसा चिंतन कर शिपिविष्ट हर्षित-मुग्ध हो उठे। मकरध्वजावलेपिता[15] मदयन्तिका की नारित्वसुरभित, यौवनछटा से सज्जित देहयष्टि से निःसृरित उत्तमगन्ध का सेवन करते शिपिविष्ट तपस्विनी पांशुला के द्वार पर पहुँचे!

पांशुला का साधनालय सर्वतस्[16] सर्वतोभद्र[17] रूपेण भवन था, जिसके पूर्व दिक् द्वार से मदयन्तिका और शिपिविष्ट ने प्रवेश किया । लगभग पंच शतअरलि[18] परिमाण के वर्ग मे पांशुला का यह साधनालय व्यवस्थित था। पूर्व द्वार पर श्यामवसनतिरता चार युवा युवतियां अपने कौतुकी यौवन संभार को ध ारण किए चित्रोत्कीर्णा पुत्तालिकाओं की भांति स्थिर खड़ी थी। उनके कोमल करों में विकट शस्त्र सज्जित थे। मदयन्तिका के सम्मान मे चारो रूपासि ध ारिकाओं ने अपनी सुग्रीवाओं को ईषत्[19] नत किया और मार्ग प्रशस्त किया। शिपिविष्ट ने अपनी मति-अनुसार अनुमान किया कि चारों हीनकुलीन सुताएं शाष्कुली[20] होगी और कामईहा[21] से तृषित पिपासित भी।

सर्वतोभद्र के मध्य भाग से गर्भगृह था जिसमे पांशुला का आराध्यास्पद[22] स्थित था। आस्पद का एकमेव द्वार बन्द था पर ऊर्ध्व वातायनों से धूम्र और सुमधुर कण्ठी गान स्वर स्पष्ट कर्णगोचर हो रहे थे। शिपिविष्ट को संकेत कर मदयन्तिका ने कहा–

–"देवी पांशुला स्तुतिरत है।"

वे सुन रहे थे–

–"....................अभिनवजलदवदना घनस्तनी कुटिलदंष्ट्रा शवासना वराभय-खड्गमुण्डमण्डितहस्ताकालिका ध्येया काली कापालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी विप्रचित्तेति षट्कोणगा।"

नाभि देश से समुत्पन्न सुमधुर नदन स्वर तरंगों को श्रवण कर शिपिविष्ट ने गायिका के विषयक अनुमान किया कि स्तवनकर्त्री[23] रूप और सुपुष्ट पांशु यौवनावयवों अलंकृत अनिंद्य सुन्दरी ही होगी। कुछ समय तक वह कल्पना रूपसी की अतल रूप राशि में डूबे रहे–स्वरतंत्रिका झंकृत हो रही थी–

–"देवीं सर्त्वांगेनादौ सम्पूज्य भगोदेकेन तर्प्पणम्पञ्चमकारेण पूजनमेतस्याः सपर्य्याया.....................।"[n*]

यद्यपि शिपिविष्ट को मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत सप्तशती ही कण्ठस्थ थी अन्य आद्यास्तोत्र नहीं। वे संस्कृत काव्य और व्याकरण से भी नितान्त अविज्ञ थे। जनसमुदाय के सम्मुख उन्होंने अपनी इस त्रुटि को कभी प्रकट नहीं किया अपितु संस्कृत भाषा के उद्भट विद्वान के रूप में ही जनसंकुल पर अपना बौद्धिक प्रभाव स्थापित करने का प्रयास करते रहे! देवी का तर्पण "भग[24]–उदक से और पूजा न पञ्चमकार से" इस पूजन स्थल पर सम्पन्न होता है, उक्त पंक्ति का यही स्थूल भाव ग्राह्य कर शिपिविष्ट का हृत्पद्म वेग से स्फुरित हुआ। उनकी परिकल्पना में रूपवती रूचिरा, लावण्यलेपिनी और मनोहर कान्ति से दीप्ति शशिवन्दना पांशुली का मुग्धकारी यौवन और भी अधिक रूचिर हो उठा।

अवरुद्ध कपाट–पट्ट खुले। द्वार मध्य में विद्युदुन्मेषी[25] प्रभा से मण्डित नूत्रयौवना प्रकट हुई। कठिनोन्नतस्तनावनतांगी[26], बिम्बोष्ठी[27] बाला[28] के हीरकोज्जल नयनों में दुर्गम्य साधना से प्राप्त तीक्ष्ण–उल्वण दर्शित था।

इस अल्प वयस् में ऐसी दुर्गम सिद्धि? शिपिविष्ट सोचते हुए रूपसी बाला को स्वास्ति वचन उच्चारित करते हुए आगे बढे–

–"शुभमयी, कल्याणी देवि, पांशुला के अतिभी साधनेय वैभव को मैं शिपिविष्ट, प्रणम्य भाव से अभ्यर्चित करता हूँ।"

द्वार स्थित नूत्रयौवनवती बाला के दीप्ति लोचन आश्चर्य के अतिरेक भाव से भित्तिखचित प्रतिमा की भांति स्तब्ध थे। सम्भवतः उसने अपने जीवन काल में प्रथम वार सृष्टि की ऐसी कृति का (शिपिविष्ट जैसे पुरूष का) दर्शन किया थ। अथवा उसने स्वतन्त्र पुरूष को प्रथमवार देखा था। (उस नगर में अल्पसंख्यक पुरूष स्त्रियों के विलाश भवनों में बन्दी के समान जीवन यापन करते थे)

–"रे मदाकुल[29] पुरूष! ये मदिरेक्षणा[30], मदिरासव[31] की उत्स रूपा और मदनकलह[32] प्रिया की प्रत्यक्ष क्रीड़ांगना देवी पांशुला की क्रीत दासी और साधना सहचरि है। देवी पांशुला तो गर्भ गृह में स्थित अपने नवमुण्डी आसन पर आसनासीन है।[33] मदयन्तिका ने शिपिविष्ट को वर्जते हुए मन्द स्वर में कहा फिर तरुणी की ओर उन्मुख होकर बोली–

–"द्वार से पृथक हो तुरीया। पुरूष देवी दर्शन का आकांक्षी है।"

विस्मयाविभूत तुरीया शीघ्रता से द्वार से हट गई। भूगर्भ में प्रवेश करते ही शिपिविष्ट की घ्राणेन्दिय विकल हो उठी। घोर कुवास से शिपिविष्ट अकुला उठे। शिपिविष्ट को प्रतीत हुआ मानों वह सहस्त्रों चित्यओं के दाहस्थल किसी पितृवन[34] में आ गए हैं। अन्ततः वे नवमुण्डी आसन के संन्निकट पहुंचे।

चत्वाल[35]–आसन की ऊर्ध्व रेखा पर अपना ललाट रखते हुए मदयन्ति का ने सम्मान प्रदर्शित करते हुए विनत स्वर में निवेदन किया!

–"देवी............।" किसी अज्ञात देश का वासी पुरूष आपके दर्शन के लिए आतुर है।

शिपिविष्ट ने देखा आसन के मध्य में अभिहोम्य कुण्ड बना है, जिससे घनमेचक[36] वर्णी धूम की कुण्डलियां वलयाकार का निर्माण करती ऊर्ध्व देश की ओर उठ रही थी। इसी से उत्पन्न धूम की कुलिश कुवास पूर्णालय में संव्याप्त हो रही है। धूम्रवलयों के उस पार प्रान्त में कंकाल मालिनी स्थिरासन से बैठी महामांस[37] के शोणित लिप्त शकलों को मंत्रोच्चारण के साथ कृपीटयोनि[38] कुण्ड में अग्निहोत्र कर रही थी। रक्त और मांस के होमन से ही दुर्गन्ध का जनन हो रहा था।

मेचकधूम्र के कडार[39] वर्णाच्छादित वातावरण में कंकालशेषिनी[40] पांशुला का विकट कुरूप का दर्शन कर शिपिविष्ट के तनुरोह[41] रोमांच से प्रहर्षित हो उठे। चित्त की उर्मिलाएं भय भावन से उद्दीप्ति अदृश्याग्नि की शिखाओं में झुलस कर उत्पीडित हो उठीं। निर्भद्रंकरीदृश:[42] पांशुला का स्वरूप ऐसा ही भंजनकारी[43] था।

कोटवी पांशुला जैसे उसके अस्थिपञ्जर पर चर्म-त्वचा उपस्थिति थी ही नही। निबिडग्रन्थिबद्ध[44] नरकपालों की खर्परी[45] माल्य शृंखला के मध्य में सद्य:छिन्न मानव सिर से प्रस्त्रुत[46] रूधिर धारा से परिप्लाप्यित पांशुला के क्रोडभवन[47] को देखकर शिपिविष्ट के भयभाषित नेत्र भूस्पर्शी हो गए।

—"मनुज ऽ......मा भै...........मा भै..........।" पांशुला के कण्ठ से सुमधुर वाक्ध्वनि के अनुगुंजन से साधनालय मे प्रतिध्वनि नाद रूप से गुंजित हुई।

ऐसा अशोमन, साक्षात अमंगल का प्रत्यक्ष रूप और उस कराला के कण्ठ से ऐसा सुमाधुर्य्य से प्रलिप्ति स्वर नि:स्वन? शिपिविष्ट ने अपने नेत्र भूतल से उठा कर कपालमालिनी को देखा। अस्थि कोटरों में जडित उद्दीप्ति नेत्र जैसे उनके अन्तर्तम को भेद रहे थे। निर्धम्मिल[48] कुचित श्यामा केशराशि धारिणी कपालिका[49] पांशुला के ललाट पर भस्मलिप्त सिन्दूर का टीका लगा था। मांसहीन कपोल, श्मशान भस्मभूषित सर्वांग कटि में मानव हस्त अस्थियों की माला और क्षुद्रघण्टिकाएं कर्णो में कर्कोट अस्थियों से निर्मित कर्णफूल, ग्रीवा में मुण्डमाला के अतिरिक्त रुद्राक्ष मालधारी पांशुला देवी कराला की ही प्रतिरूपा था।

कपालिका के आविद्ध नेत्रों का ईक्षण ओज शिपिविष्ट सह नहीं सके फिर भी विवशबद्ध वह देख रहे थे। अकस्मात् पांशुला आसन से उठी, कटिविन्यासित अस्थि मेखला में ग्रन्थित क्षुद्रंघण्टिकाएं परस्पर अभिघात-अभिमर्षण से झणत्कार करने लगी। वह आसन से उतर कर शिपिविष्ट के समीप आई। उसके एक हाथ मे कपाल निमित पानपात्र और दूसरे में मांसाभिहोम्याग्नि से धूपित कोई पदार्थ था जिससे गाढ़तर शोणित स्त्रिवत हो रहा था।

—"अं हुँ वज्रधारिणी किलि किलि कुल्या कुल कपालिनी, सर्व भोगं देहि देहि शिपिविष्ट मोहय मोहय पालय पालय अं हुँ, अं हूँ अं अं हुँ हूँ हुँ फट" पांशुली का मुख खुला और मन्त्रोच्चार करते हुए उसने कपालपात्रीय चषक से मदिरा का घूंट भर कर उच्छिष्ट शिपिविष्ट पर थुत्कार दी।

शिपिविष्ट का शिरोदेश, मस्तक तथा वक्ष उच्छिष्ट मदिरा की असंख्य बूंदों से उत्क्लोदित हो उठे। शिपिविष्ट का ब्राह्मण धर्म हाहाकार कर उठा, अन्तर्देव मर्माहित हो त्राहि-त्राहि का आर्तनाद कर उठे, धार्मिक संस्कार समवेत स्वर से धिक् धिक् कर उठे।

यद्यपि उन्हें आश्चर्य भी था कि बिना परिचय अभिज्ञान के पांशुला ने मंत्र के मध्य में उनका नामोच्चार कैसे किया? अस्तु जो भी हो, वर्तमान में उनके चिंतन का केन्द्र मात्र उनकी धर्महानि तक ही सीमित रह गया!

"हँ.........हँ..........ऽ..........हँ...........ऽ....." पांशुला का गगन गुंजित हास्य तार[50] मठ में महाविर्शीपाता को प्राप्त हो ध्वनन् होने लगा।

–"रे भीरुधर्मधारी शिपिविष्ट तमस[51] का परित्याग कर निषतिमिर[52] की महाआलोकी सत्ता से रमण कर। मलमूत्र तुल्यवर्ती सिद्धियों की आकांक्षा न कर, शुद्ध बन, निष्पाप बन, निष्णात और निष्पन्न[53] कर्त्र बन। यही मर्त्यलोक की सार्थकता है, सिद्धि है, श्रेयस् है। ले.....रे.......ले तेरे श्यामभाल पर पांशुला अपने देहांग दरी से निस्त्रावित[54] रजनिष्यन्द[55] का टीका लगा कर तुझ बावले को बैजिक[56] बोधगम्य बनाने का शुभ काम्य करती है।"

पांशुला ने अपने स्मरभवन की रजस्त्रवन्ती[57] से स्त्रिवत[58] रज में अपनी ज्येष्ठांगुली को लिप्त किया और शिपिविष्ट के ललाट पर अर्शटीका लगा दिया। शिपिविष्ट को प्रतीत हुआ मानो उनके गोधि[59] पट्ट पर ज्वलितांगार रख दिया हो समस्त सिर मण्डल दाहक ऊष्मा से दहक उठा।

"ले यह महाप्रसाद भी प्राप्त कर.......।" पांशुला ने अपने करस्थ रक्त लिप्त पदार्थ को बलातत: शिपिविष्ट के हाथ पर रख कठोर-आज्ञा दी।

–"इसी क्षण इस महाप्रसाद को ग्रहण कर उदरस्थ कर।" पांशुला के नेत्रकोटरो मे जैसे अंगार उद्दीप्त हुआ।

शिपिविष्ट ने देखा महाप्रसाद के रूप में रक्त पूरित मांस खण्ड उनके हाथ मे रखा था। अब उन्होंने पूर्णत: मान लिया कि उनका ब्राह्मणत्व सम्पूर्णत: नष्ट हो रहा है। उनके नेत्र आर्द्र हो गए।

–"प्रसाद भक्षण नही करेगा तो तेरे वक्षस्थल में अपने विभ्राज्[60] त्रिशूल से सपत्राकरण[61] कृत्य कर, तेरे शव पर आरूढ़ हो साधना करूंगी। भक्षण करता है तो मदयन्तिका के अधरासव पान का अवसर मिलेगा, उसके यौवनसमीच मंथन

की परिणामभूत कादम्बरी[62] को प्राप्त कर प्रसन्न रत्न प्राप्त करेगा। पांशुला का घोर अमर्ष कठर वाक् निःसरण श्रवण कर अन्तः भीरुगुणी शिपिविष्ट महावात्याचक्र में निबद्ध तृण की भांति प्रकंम्पित हो उठे। उन्होंने तत्क्षण अपने करतल पर रखे मांसखण्ड का भक्षण कर लिया..........। पर.......। आश्चर्य!! उनकी मुख रसना मिष्ठान्न की सुस्वादु मिष्ठता से भर उठी। इसी के साथ ही उनके शिरोदेश में हो रही पीड़ा भी सुखान्द में परिवर्तित होने लगी। उनका मनसिज प्रस्फुटित हो स्फीत हो उठा। अब उनके दृष्टि प्रदेश में पांशुला नही, साक्षात दिक्वसना प्रकृति की तमस् शक्ति काली दृश्यमान थी। शिपिविष्ट के मुख से स्वतः गान निःसृरित हुआ।

"........ काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी। विचित्र खटवांगधरा नरमालाविभूषणा। द्वीपिचर्म परिधाना शुष्कमांसाति भैरवा। अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा। निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा।"[63]

शिपिविष्ट का गायन श्रवण कर पांशुला मंद्र वेग से हँस उठी। हँसते-हँसते ही वह बोली-"रे कामिनीकटिप्रिय[64], रे स्तनां[65]शुकहीन प्रिया स्तनशिखा के प्रियदर्शक, रे योषितांगावांक्षी[66] द्विज। तेरे ऐसे शुकगान से शाश्वत[67] शुभाधारिणी श्यामा प्रसन्न नही होगी। रे बावले शौभिक[68], श्लोकपुरूष[69] क्यों नहीं बनता?" पांशुला के स्वर में अपार स्नेह था।

-"मैं कृतार्थ हुआ कृपालु माता।" शिपिविष्ट विनयनत हुए।

"माता ऽ.......ऽ।" कपालिनी पुनः हा....हा....हा कर उच्च स्वर में हँस उठी।

"अरे नाटकीय! मदयन्तिका को भी मात-संबोधन दे, नारीमात्र को भी माता कह, श्यामलोत्तुंगकुचाग्र[70] विभूषिता रमणी को भी जननि शब्द से मण्डित कर, उल्लसच्चारुपयोधरा[71] की रूपद्युति में अपनी जनयित्री को देख। देख मूरख देख.....देख..........।" कहती हुई पांशुला अपने साधनालय के अन्तस्थित भूगर्भ में उतर गई। शिपिविष्ट हत्प्रभ, निःसंग, चित्रलिखे की भांति स्तब्ध खड़े रह गए।

कर्णविश्रान्तलोचनी[71] मदयन्तिका ने उनकी बाँह पर अपने स्निग्ध कर से स्पर्श किया और बोली-"आज ज्ञात नहीं क्या हुआ देवी कपालिनी को? इसके पूर्व उन्होंने किसी पुरूष से इस भांति संवाद चर्या नही की। अब आओ मेरे प्रमदवन में वसन्तोत्सव मनाओ। मेरे प्रीणन[72] में ही तेरा हित है। तू मेरा प्रियार्हपुरूष[73] है और प्रियात्मन[74] भी। मेरे विद्रुमशकल[75] से शोण अधर पल्लवों

से स्त्रिवत अधरामृत का सुख पान कर मुझे प्रीति[76] प्रदान कर पुरूष।" कामाग्नि के उत्ताप से दग्ध कामिनी मदयन्तिका का ऊष्मित गात्र शिपिविष्ट से लतावत लिपट गया। शिपिविष्ट प्रतीक्षा कर रहे थे मानो हिम खण्ड संताप से पिघल रहा है। उन्हें कपालिन का उपदेश स्मरण हुआ। वे मदयन्तिका को स्वयं से पृथक करने का प्रयास करते हुए बोले–

–"उल्लसयौवना, यह साधनास्थूल है, देवी मात् पांशुला भी यहीं उपस्थित हैं। मैं स्नानादि कृत्यों से निवृत भी नहीं हुआ हूँ। प्रीत्यूषोत्तरार्ध काल में भोग वर्जित कृत्य है।" यद्यपि शिपिविष्ट मदयन्तिका के कामोष्ण देह को स्वयं से पृथक नहीं करना चाहते थे, पर अनायास ही उसके संस्कार बोल उठे थे।

–"भोग सर्वकालीय, सार्वदेशीय और सर्वत्र स्थलों में करणीय है पुरूष। अगर तेरा ऐसा इच्छावृत है तो तू इन आवश्यक कृत्यों से मुक्त हो, तदापरांत मैं अपने देह तडाग स्थित विकचनीलोत्पल के वैभव का भव दर्शन कराऊंगी।" जगत्लज्जा को तिलाञ्जली देती हुई मदयन्तिका ने अपनी अश्लीलता प्रकट कर दी।

शिपिविष्ट का समग्र गात्र लोमप्रहषर्णा से परिपूर्ण हो गया। उनके जीवन में यह प्रथम अवसर था जब अनिद्य सौन्दर्य छटा से सज्जित किसी ललना ने उन्हें अपनी देहोष्मा के ताप से अभिज्ञित किया था।

रजरमित मठ से शतबांस दूरी पर नीरमहि नील शची का स्राव था। शिपिविष्ट ने स्रवयन्तिका तट पर विहंगम पितृवन देखा। अनेक चित्याओं के गगनगामी घूमाच्छादन से धूसरित धरा में स्थित यह श्मशान नित्यश्मशान होगा, शिपिविष्ट ने अनुमान किया।

श्मशान में स्थान-स्थान पर चैत्य और पर्ण कुटीर बनी हुई थी। ये पर्णशालाएं और विहार श्मशानी साधक, वामाचारी, कापालिक पथ के साधकों के हित में निर्मित होगे। जिज्ञासा का मनोदय होते ही वे संगचारिणी मदयन्तिका से बोले–

–"देवी! क्या यह नित्य श्मशान क्षेत्र है? ये पर्ण कुटीर और सालकालय अघोरमुख साधकों के हित में ही निर्मित होंगे?"

"तेरा अनुमान सत्यगत्य है पर ये पत्राच्छादित कुटीर साधकों के लिए नहीं कपालिनों के सिद्धि साधन सन्धान हेतु निर्मित है। सावधान! इनमें वसित

कपालिन कालमुखी स्त्रियां नर बलि देती है।" मदयन्तिका ने शिपिविष्ट को भयातांकित करने का प्रयास किया! वास्तव में वह नहीं चाहती थी कि कोई अन्य स्त्री शिपिविष्ट को वशीकृत कर दास बना ले अथवा पुरूषाहरति कर ले। यही कारण था कि वह शिपिविष्ट के साथ आई थी!

स्त्रोतस्विनी नीलशची के तट पर शिपिविष्ट ने अनेक गुरुनितम्ब[77] विम्बधारित, तमसाकेशी[78], उत्तुंग[79] कुची प्रतन्वंगी[80], अभिसारिकाओं के समान विवसन और निर्व्रीड़ वनिताओं को नीलशची के नीलनीर में स्नान करते देखा। प्रस्फुटित यौवनाओं के यौवनरोचिष अंगों से अंगराग घुल-घुल कर नीलशची के नीर प्रवाह को आरक्ततरंगायित बना रहा था। शिपिविष्ट नारित्व समूह के ऐसे नैर्लज्य स्नान को निरख चकित थे।

शिपिविष्ट के दृष्टि संचारण क्षेत्र में नारी मात्र का ही दर्शन था, कहीं भी पुरूष नहीं? क्या इस नगर की इस पयस्विनी कूल पर पुरूष आगमन निषेध है? उन्होंने मदयन्तिका से प्रश्न किया।

मदयन्तिका के ताम्राधर[81] स्मित हुए, वह बोली-"प्रिये वर स्नानादि से मुक्त हो। यह सब जिज्ञासाएं मैं समयानुसार शान्त करूंगी।" उसी समय स्नानरत सुन्दरी समुदाय की किसी यौवन मण्डित सदस्या की अकस्मात् दृष्टि शिपिविष्ट और मदयन्तिका पर प्रक्षेप्यि हुई। हर्षातिरेक से मन्द्रोच्चार[82] स्वर उसके मिष्ठ कण्ठ से निनादित हुआ।

-"देखो.......देखा सहचरियों, नीरवाहिनी के कूल पर हम स्मराभिलाषणियों की कूठस्थ चेतना का केन्द्र, हमारे उल्लासित यौवन का प्रत्यक्ष किंकिर पुरूष! आओ......आओ......हम सब उसका सम्मिलन भोग करें।" कहती हुई वह नितम्बनी जल से बाहर निकल कर शिपिविष्ट और मदयन्तिका की दिशा में दौड़ी! उसका अनुगमन करती अनेक कामनियों का समूह वर्ग अपनी हर्ष ध्वनि से गगन-धरा को गुंजित करता उसी दिशा में वेगवती वात्या के समान दौड़ा। वे सब पूर्णतः नग्न वदनाएं कुछ ही क्षणों में शिपिविष्ट के समीप आ गई और उन्हें चत्वालमण्डल में घेर कर खड़ी हो गई!

मदयन्तिाक भी इस अकस्मिकता से कुछ चकित, कुछ किंकर्त्तव्यविमूढ हो गई। नायिकाओं मे से श्रेष्ठ रमणी जिसकी नितम्ब प्रसारित घनमेचक नीरार्द्र[83] के राशि के भ्रमरालकों[84] से पानीय[85] की सितबून्दें[86] स्त्रावित[87] हो रही थी, आगे बढ़ कर शिपिविष्ट से मधुरकण्ठी स्वर में संबोधित हुई!

—"अरे पुरूष........आ.......आ......हम सब तुझे अपने यौवनामृत से ऋभुता[88] प्रदान करेगी तू हमारे कामोद्यान् का सुरभित सुमन बन, हमसे सभिलाष लास्य कर, हममें प्रविष्ट हो हमारे अंगों का विस्फारण कर। तू कृतार्थ होगा, तेरा जीवन धन्य होगा।"

—"हाँ........हाँ........ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा।" अनावृतदेही कामिनी समूह का समर्थित स्वर नाद अनुगुंजित हुआ!

कांचनकांति से संपूरित कामोन्मत्त कामनियों की यौनविभुक्षा का उन्मुक्तोद्याम प्रदर्शन देख कर शिपिविष्ट चकित, चमत्कृत और चेतोविकार[89] से ग्रस्त हो गए। यह कैसा देश? कैसी ललामितललनाएं? जो सार्वजनिक स्थलों पर भी अनावृत अंगी हो रति की याचना नैर्व्रीड़्य रूप से करें।

इस मध्य मदयन्तिका ने अपना कर्त्र निश्चित कर लिया था। वह नायिका की भर्त्सना करते हुए कटु स्वर में बोली।

—"चपललोचना[90], क्या तुझे ज्ञात नहीं ये कपालिनी देवी पांशुला का आश्रयी पुरूष है। यह देवी के आशीषर्वचन और कृपा से मुझे सप्रयास प्रसाद रूप में प्राप्त हुआ है। जाओ........जाओ प्रालेयनीर[91] की शीतलता से अपने कामदग्ध , कामिकअंगों का मार्जन करो। जाओ......ऽ.....।"

पांशुला का नाम सुनते ही यौवनलास्यी नायिकाओं के प्रबालवर्णी, स्थित अधर ऊच्छुष्ण हो गए। उनके लावण्य लेपित कपोलों की अरूणाभा मन्द हो गई और चपलोद्दीप्ति आनन निःस्तेज हो गए। वे सभी अपनी कांतिहीन मुखश्री और मौन भाव से पुनः नीलशची की नीरराशि में उतर गई! मदयन्तिका शिपिविष्ट की ओर विजिगीषित[92] दृष्टि से देखते हुए सगर्व बोली–

—"अपना नित्यकर्म, स्नानादि कृत्य सम्पादित कर पुरूष।"

मदयन्तिका के इस प्रकार असम्मानीय संबोधन से शिपिविष्ट कुपित हुए और अमर्ष स्वर मे विरोध प्रदर्शित करते हुए बोले–"मदयन्तिका, मुझसे ससम्मान वाक्चर्या करो। मैं समाजपूरित द्विज हूँ और शास्त्र का ज्ञाता भी।"

—"यहाँ प्रत्येक नागरिका पुरूष से इसी भांति वाग्चर्या करती है पुरूष वर। स्त्रियों की प्रत्येक आज्ञा का परिपालन करना पुरूष का प्रधान कर्तव्य है। यह हमारे राज्य में विधि सम्मत है। अतः इसे अन्यथा न ले और न ही कुपित हों।" मदयन्तिका को अनुमान लगाते समय नही लगा कि शिपिविष्ट का अहं प्रताड़ित

हो गया। अतः वह कुछ विनम्र स्वर ने सस्नेह बोली थी।

नित्यकर्मादि से निवृत हो शिपिविष्ट ने स्नान किया। इस अन्तराल में अनेक युवतियां, स्त्रियां मदयन्तिका के समीप आकर उन्हें काम लोलुप दृष्टि से देखती रही, उनके विषय में जिज्ञासा प्रकट करती रही।

शिपिविष्ट के अनेकानेक प्रश्न और जिज्ञासाएं तमस्च्छादित थी। वे स्नान कर रजरमित मठ की ओर चले। मार्ग में मदयन्तिका ने उनके कुछ प्रश्नों का शमन किया। वे जान गए कि इस राज्यसत्ता में स्त्रियां ही प्रधान हैं। अल्पसंख्यक पुरूष उनके (स्त्रियों) के अनुगामी हैं। इस मातृसत्ता प्रधान राज्य में पुरूष गौण है। यहां पुत्र प्रजनन नही होता। यहाँ की सभी स्त्रियां कामरूपिणी है और तंत्र के वशीकरण प्रभाग मे निष्णात-सिद्धा हैं। यहाँ की स्त्रियां अतिरूपा और समृद्ध लावण्यवती हैं। शिपिविष्ट की स्मृति में आचार्य श्री वात्स्यायनमुनि प्रणीत ग्रन्थ 'कामसूत्रम्' का सूत्र स्मृत हुआ।

—"दृढ़ग्रहणयोगिन्यः खरवेगा एव अपद्रव्यप्रधानाः स्त्रीराज्ये.........।"[93] उन्होंने अपनी मति अनुसार उक्त सूत्र का अर्थ माना था-स्त्री राज्य की काममुदित प्रसन्न वदना नायिका की कामेच्छा या रतिपूर्ति के हेतु नायक का प्रचण्डवेगी होना आवश्यक है। मुग्धांगनाओं की भोगेच्छा प्रशान्तन् उद्योग के अन्तर्गत उनके सुचारू मदन मन्दिर में प्रबल प्रहार किए जाएं-तब भी उनकी रतिवांक्षा पूर्ण विराम तक नही पहुंचे तो नायक अपद्रव्य का प्रयोग करे।"

शिपिविष्ट मुग्धांगनी मदयन्तिका की सौवर्णच्छटा से मण्डित कमनीय काया के मृद्व-मुदालिंगन[94] की परिकल्पना कर रोमांचित हो उठे। चलते-चलते शिपिविष्ट रसिक वृति से बोले-

—"पुरूषमुग्धकारिणी, मोहिनी मदयन्तिका, तुम्हारा विलास भवन नगर में है अथवा रजरमित मठ के किसी एकान्त कक्ष में ही तुम्हारा आमोदालय स्थित है?" मैं तीन घडी पर्यन्त उपासना लीन रहता हूँ, तत्पश्चात मैं तुम्हारे कामसंताप मुक्ति के हेतु अनुष्ठान कर सकूंगा। उन्होंने अपना मन्तव्य शालीन संकेत के रूप में कहा।

—"मैं अनुष्ठानिक कृत्य की नही, तुमसे रतिद्वन्द्व[95] की आकांक्षिणी हूँ। मैं अभिमर्षणाभिलाषी[96] तुमसे यही अभिप्रणय स्पृहा हूँ।"

"क्या तुम अभी तक अपरिणीताक्षतयोनि[97] हो मदयन्तिके।" शिपिविष्ट ने

स्फुरित हृदय से प्रश्न किया! उनका प्रश्न श्रवण कर मदयन्तिका मुक्त हास्य से हँस उठी। उसकी मोक्तिखञ्वी, दामिनी सी धवलित रदस्पंक्ति का आलोक हास्य के संगिमत हो उसकी मुख सिताभाच्छवि मे भूरि वृद्धि करने लगा।

—"सरल भावी पुरूष! मैं क्षतयोनि[8] अवश्य हूँ पर पुरूषालिंगन से पूर्णतः वंचित। तू क्षन्तृपुरूष" है–मुझसे कैसा दुराव। हम निर्पुरूष कामिनियां अपद्रव्य साधन कृत्रिम पुरूषांगों से अपनी कामवुक्षा प्रशान्त करती हैं। परस्पर दो अभिमर्षाभिलाषिणी युवतियों में से एक कामोत्सुका पुरूष का अभिनय कर अपनी कटि में कृत्रिम नरांग को मेखला स्थान पर प्रबद्धित कर पुरूषोचित कर्म सम्पादित करती है। प्रथम की भोगेच्छा शान्त होने के पश्चात् वह शान्त कामतृप्त युवती पुरूषाभिनय कर द्वितीय की कामाग्नि को प्रशान्ति प्रदान करती है।" दमयन्तिका ने अपने राज्य मे चलित भोग्यवृत्ति का गोप्यन प्रकट किया।

रजरमित मठ के अन्तःबाह्य प्रदेशों में अनेक कुलांगनाएं उपस्थित थी, सभी रूपयौवन और सरसता की साकाररूपिणी। शिपिविष्ट ने उन्हें भिन्न–भिन्न कार्यों में व्यस्त पाया। क्या यह आश्रय या मठ ही बहुसंख्यक सेविकाओं का योगक्षेम वहन करता है? अथवा ये कश्यमयी वनिताएं मात्र उन्हीं के दर्शन हेतु सम्मर्दित हुई है? सम्भवतः यह सभी बालाएं मुग्धा, मध्या और प्रौढ़रागी नायिकाएं उन्हीं के हेतु एकत्रित हैं। ऐसा चिंतन कर शिपिविष्ट हर्ष–शौण्डीर्य्य से भर उठे। पर वास्तव में ऐसा नही था।

नित्यार्चन स्थल का सन्धान करते शिपिविष्ट नेत्र प्राच्यदिक् के एक कोण में निर्मित कक्ष की ओर उठे। इस कक्ष के द्वार पर भयरस संचारी भैरव की विभीषण प्रतिमा जो श्याम पाषाण से विनिर्मित थी, की प्रस्थापना देख उन्हें अनुमान हुआ कि इस कक्ष में तमसा देवि की प्रतिमा होगी। वह मदयन्तिका से एतद विषयक प्रश्नाचार करने ही वाले थे कि सम्मुख से तारुण्य अर्क से तरंगायित रूपसी तुरीया गज–गामिनी गति से आती दिखाई दी। उसके मृदुवान हस्तों में एक स्वर्णथाल था जिसमें उज्ज्वल, शोणाभा से रोचिष कौषेय रखे थे!

—"यह आपके वस्त्र हैं श्रीमन्। देवी पांशुला के आदेश से आपको प्रदत्त किए जाते हैं, स्वीकार करें।" स्मितलोचनी, तन्वी तुरीया अपने वंकिम कटाक्ष से शिपिविष्ट के मन को क्षत–विक्षत कर मुखरित हुई और अपने स्तनबिम्ब को विचित्र गति से प्रकम्पित कर पूर्व गति से पद प्रेक्षित करती चली गई!

शिपिविष्ट नित्यार्चन के लिए आसनासीन हुए। नित्यार्चनकालीय चण्डी

पाठक्रम में उनके नेत्रों के समक्ष कभी मदयन्तिका का यौवनालस्य रूप तो कभी तुरीया का नवविकसित यौवन लास्य करता रहा। मन की समग्रता नारी-अंगेन्दियों के मोहक पाश में बंधी रही, रतिश्रम सीकरों की अंगयष्टि संगम से समुत्पन्न नार्यांगों की सुरभि की कौतुकी कल्पना उनके मनस् मण्डल को मथती रही, ललनाओं के अहैकौतुकी रत्यासन और महाभिमर्षण के मध्य सीत्कार के श्रवण प्रिय शब्द उनकी कर्णेन्द्रियों में अनुगूंज का अतिरेक नादाह्लाद प्रकट करते रहे।

चण्डीपाठ निष्पन्न कर शिपिविष्ट आसन से उठे तो मदयन्तिका की निरोल्ल सित मुखश्री देख कर चौकें-"क्या हुआ भगवती मदयन्तिके। तुम्हारी मुखच्छवि पर म्लानलेपन का अशोभन क्यों?"

"राजप्रासाद से शिविका सहित महाराज्ञी की अतिविशिष्ट सेविका महालसा का आगमन हुआ। राजाज्ञानुसार तुम्हें शीघ्रताशीघ्र प्रासाद में उपस्थित होना है। पर राज विधि सम्मत तुम पर मेरा ही अधिकार होगा क्योंकि मैं ही तुम्हारी स्वामिनी हूँ मेरे दैव प्रबाल्य से ही तुम्हारी प्राप्ति इस राज्य को हुई है। मैं स्वयं महाराज्ञी से न्याय की प्रार्थना कर तुम्हारी पुर्नप्राप्ति करूंगी। हमारा मदसंयोग पुनः होगा, अवश्यमेव होगा।" मदयन्तिका के स्वर में अमर्ष था, साथ ही शिपिविष्ट से पृथक होने की ग्लानि, शोक भी।

"मदयन्तिका क्षुब्ध न हो, महाराज्ञी को इस पुरूष की लालसा नहीं है और न ही लोलापा इसकी आकांक्षी है। यह तो राजकन्या कामाक्षी के हेतु हितपुरूष है।" यह स्वर था देवी-पांशुला का जो एक ओर निकल कर आई थी।

-"प्रणाम देवी!" मन की क्षुब्धावस्था में ही वह सम्मान यथाविधि रूप से प्रदर्शित करती हुई प्रणम्य मुद्रा से नत हुई फिर बोली-

-"पर राज्यकन्या तो अभी यौवना नहीं।"

-"इसीलिए यह प्रौढ़ पुरूष उसके समीचक संयोग का पात्र नही। वह शिक्षार्थी है और इसी कार्य्य साधन के लिए ही शिपिविष्ट का चयन हुआ है।"

मदयन्तिका का अमर्ष शान्त हुआ। शिपिविष्ट का मन भी अशान्त हो गया। मदयन्तिका की मृदुलअंगयष्टिाभिमषर्म के स्थान पर पाषाणी प्रासाद गमन उन्हें रूचिकर प्रतीत नही हुआ! वे अशान्त मन से मौन हो शिविका में बैठ गए।

---

1. प्रातःकाल
2. शीतल
3. भगवान शिव का नामान्तर, गहन नीलकण्ठ। (विष को कण्ठ में धारण करने के

कारण शिव का कण्ठ गहन नीलाभा से सज्जित है इसी कारण उनको 'शितिकण्ठ' कहा जाने लगा।

4. ऐसी सुन्दरी युवती जिसकी कटि के नीचे आगे का भाग गहन (गहरा) विस्तृत हो।
5. नीलकमल के समान नेत्रों वाली
6. कठोर पौरूषधारी
7. स्त्री संन्यासनी
8. उत्तम अंगो वाली।
9. अमर कामदेव
10. हर्ष सहित गर्म-गर्म दीर्घ सासें (श्वास)
11. ऐसी स्त्रियां जिनके नेत्र मनोहर हो और उनके नेत्रों से आनन्दकारी नशा झरता हो
12. द्रूर्वा के हरे हरे अंकुर
5. महावर से रचे हुए
14. पायल या नूपुर पहने या बांधे हुए
7. कामदेव के दर्प से दर्पित अभिमानी स्त्री
9. ऐसा देवालय जिसके चारों ओर चार द्वार हो
16. सम्पूर्णतः
11. किंचित
18. पांच सौ हाथ
20. कामेच्छा
20. मांसाहारी
21. आराधना स्थल (भवन)
22. अथर्ववेद–सौभाग्य काण्ड वर्णित-कालिकोपनिषद।-देखें
23. स्तवन करने वाली
24. भग से निःसृरत जल (रज)
25. विद्युत प्रभा से मण्डित स्त्री
26. ऐसी स्त्री जिसके ओंठ (होंठ) कुन्दरु के फल के समान लाल हो
27. वह युवती जो 16 वर्ष की आयु से कुछ कम हो।
28. कठोर स्तन और झुके हुए अंगो वाली
29. मदमस्त
30. मनोहर नेत्रों वाली
31. शराब
32. वह कामिनी जिसे मैथुन सुख ही प्रिय हो
33. श्मशान क्षेत्र
34. चौकोर
35. घनाकाला
36. मानवमांस
37. अग्नि
38. धूम्रवर्णी या भूरा
39. जिस स्त्री के शरीर में केवल हड्डियां ही शेष रही हो
40. रोम-लोप
41. अशुभ दिखाई देने वाली
42. उग्र पीड़ा देने वाला
43. हड़ ग्रन्थिन से बंधी हुई
44. खोपडियों की माला
45. बूंद-बूंद कर टपकता हुआ
46. गोद का स्थान (अनेकार्थो में इसका एक अर्ध वक्षस्थल ही माना जाता है।)
47. बन्धनहीन
48. एक विकराल रूपिणी देवी जिसके सवांगों में श्मशानी भस्म का अनुलेपन गा रहता है। मुक्त केशी बाघाम्बर परिधान धारिणी देवी के कण्ठ में रुद्राक्ष माल्य, दक्षिण कर में घण्टा जिसके वाद्य निनाद के मध्य वह हर......हर........शम्भु हो शम्भु, हो शंकर का उद्घोष करती है। उसके वाम में कपालपात्र स्थित होता है। वह भंयकारी, अमंगल वेषा और नित्यश्मशानचारिणी होती है।
49. ऊँची आवाज

50. अंधकार
51. अन्धकार रहित
52. पूर्ण करने वाला
53. गुहा, कन्दरा
54. चूना, वहती हुइ, अपक्षरित होती हुई
55. हुरज का
56. जिससे रज का स्राव हो (यहां यह भाव है)
57. रिसता हुआ
58. माथा, मस्तक
59. चमकीला
60. अधिक पीडादायी
61. मदिरा
62. श्री मार्कण्डये पुराणोक्त सावर्णि के मन्वन्तरान्तर्गत कथा देवी महात्म्य 'दुर्गा सप्तशती' अध्याय 7, श्लोक 6 से 8
63. मनोहर, सुन्दर स्त्री कम कमर (कटि) जिसको प्रिय हो वह (पुरूप)
64. बिना चोली की (नग्नवक्ष) प्रेमिका के स्तनाग्र का प्रियदर्शक
65. स्त्री अंग की इच्छा करने वाला
66. नित्यकांति
67. ऐन्द्रिजालिक
67. प्रशंसा करने योग्य पुरूष
68. श्यामवर्णी उन्नत स्तनों के अग्रभाग (चुचुक) से सज्जित सुन्दर स्त्री
69. मनोहर स्तनधारिणी (स्त्री)
70. कानों तक विस्तीर्ण नेत्रों वाली (स्त्री)
71. तृप्त करना
72. प्रेम करने योग्य/मनभावन पुरूष
73. मनभावन, मनोहर
74. मूंगे के टुकडे के समान लाल ओठ
75. हर्ष, आनन्द, अनुग्रह, प्रेम
76. विशालस्थूल नितम्ब
77. काले बालों वाली
78. उन्नत स्तनों वाली
79. कोमल अंगों वाली
80. लाल ओंठ
81. उच्चस्वर
82. काम की अभिलाषित स्त्रियां
83. पानी से भीगी
84. बालों की लटें
85. पानी
86. श्वेताभा से चमकती
87. टपकना, चूना (बूंद-बूंद कर टपकती हुई)
88. अमरत्व, अमरता
89. वह नृत्य जिसमें हावभाव प्रदर्शित कर प्रेम प्रदर्शित किया जाता है!
90. मन का विकार, मन की विकलता
91. मनोहारिणी पर स्वेच्छाचारी रमणियां
92. चंचल नेत्रो वाली जिसके नेत्रों मु द्युति चमक हो
93. बर्फीला पानी
94. विजय से ओत-प्रोत
95. देखें श्री वात्स्यायन कृत 'कामसूत्रम्' अध्याय पंचमान्तर्गत देश्योपचार प्रकरण।
96. हर्ष सहित चिपटाना
97. संभोग
98. संसर्ग, मैथुन की अभिलाषा रखने वाली
99. प्रेम की इच्छा
100. अविवाहित ऐसी कन्या जिसके स्मर भवन की कौमार्य झिल्ली न फटी हो।
101. अक्षतयोनि का विपरीत अर्थ
102. धैर्यवान, विनयशील

ग्रीष्म राका की प्रथम प्रहर घटी में प्रफुल्लमुखच्छविदर्शना महाराज्ञी तिलोत्तमा, लावण्यसर्वावयवी लोलापा और अवधूतिनी मुकुटमणी देवी पांशुला प्रसन्नचित्त हो परिचर्चा कर रही थी। उपवन की सुरभित वात का संचार वपुस् जैसे पुष्पोद्यान के प्रत्येक द्रुम लताओं, वृक्षों और पादपों से आलिंगत कर प्रमदोत्सव मना रहा था। अभ्र के विस्तारिक वक्षवर्त्म में निरन्तर संचर गति को प्राप्त सोमबिम्ब से प्रसारित-चन्द्रिका के धवलालोक की दीप्ति में त्रिवयस्याएं शिपिविष्ट विषयक हास्य-परिहास करती रही। अवधूती कपालिनी स्मेर वदन से कह रही थी।

—"कृपापात्री मदयन्तिका। वह मान रही थी कि वह जडमति शिपि उसकी मिथुन राशि है पर...........उसे क्या ज्ञात? कि शिपिविष्ट की जडमेघा को कामाचारिणी लोलापा निर्णेक कर प्रज्ञावान बनाएगी। क्यों वयस्या मैनें सत्य कथन किया न?" पांशुला एक विशिष्ट कटाक्ष से निहारती अर्थ पूर्ण स्वर में बोली!

—"नही कपालिन भगवन्ती। शिपिविष्ट तो महाराज्ञी का अथिति है, पर उस बेचारे ने अभी इस राज्याधिश्वरी का दर्शन ही नहीं किया। वह हत्भाग्य महाराज्ञी को आकाशचारिणी योगिनी ही मान रहा है।"

—"अरे! महाराज्ञी तिलोत्तमा, क्या अपना ब्रह्मचर्यानुष्ठान समाप्त कर रही हो। वह जड घी तुमसे समवर्ती तो नहीं।" पांशुला ने पुनः परिहास किया।

—"नही देवी पांशुला, वह पुरूष मुझे निष्प्रयोजनीय है। श्री मत्स्येन्द्रपा के आदेशानुसार ही उसे यहाँ ले आई हूँ।" तिलोत्तमा ने वास्तविकता को प्रकट किया।

"श्री मत्स्येन्द्रपा। वह तो चिर युवा है। महावीर्यधारक मत्स्येन्द्र से भेंट कब कैसे हुई?" वे आलोकोष्णीश साक्षाततः शिव मेरे महादिव्य गुरुवर्य जालन्धरिपा के भी श्लाघ्यनीय पुरूष हैं।

पांशुलापा के उत्तर में तिलोत्तमा ने स्वामी सुरत के आश्रम मे घटित प्रसंग का सांगोपांग रूप से कथन किया। पांशुलापा दत्तचित्त से मनस् विभोर हो श्रवण करती रही। उद्रेकगात्रा, लोमहर्षिणी पांशुलापा सकल आख्यान सुन 'धन्य-धन्य' कह उठी। आनन्दाश्रु वारिध उसके नयनकोटरों में विकसति होने लगा। गलहार में ग्रन्थिल कपाल खड् खड् कर स्फुरित होने लगा उसके मांसहीन, त्वचाहीन करोट मुख से प्रसन्नता भयानक रूप से शब्दायित होने लगी। पांशुलापा के

करस्थ त्रिशूल में तडित दीप्ति की सौदामिनी[1] शुभ्रा और द्वितीय करस्थ कपाल पात्र में अन्तर्निहित अवधूती सिद्धियां-शक्तियां खद्योतार्चिष[2] प्रकाश बिन्दुओं की भांति आन्दोलित होने लगी। कर्बुदकान्ति[3] संज्ञक लोलापा और हिरण्यमण्डित[4] प्रभागात्री महाराज्ञी तिलोत्तमा को आश्चर्य नहीं हुआ। वे दोनों सुविज्ञ थी जानती थी कि कपालिनी पांशुलापा की चेतना निरन्तर भाव समाधि की ओर अग्रसर हो रही है। ऐसे समाध्यकाल में कपालिनी के कपालपात्र निवासित सिद्धियां और उसके दास, पिशाच, बैतालिकादि शक्तियां सजाग्र हो अपनी स्वामिनी के देहरक्षण को कृत संकल्पित हो मूर्तवत हो जाते हैं।

वे दोनों पांशुलापा के समीप से उठकर उससे कुछ दूर स्थित लतामण्डप में बैठ गई। विलासविलेपनी[5] लोलापा ने अकस्मात् जिज्ञासुत प्रश्न किया।

—"महाराज्ञी शिपिविष्ट के विषयक कहें। इस मतिदीन पुरूष को किस पुण्यकृत्यों के पुरुस्कार रूप में चिर युवा मत्स्येन्द्रपा की कृपा प्राप्ति हुई? इस प्रकार अकस्माततः गृह पलायन से उसके कलत्र[6]-पुत्रादि व्यथित नहीं होंगें?"

—"शिपिविष्ट गतजन्मिन् तपस्पी पुरूष है। योगभ्रष्टता के कारण उसके चेतन पर जड़त्व का तिमिराच्छादन हो गया, फलतः वह निर्बुद्धि प्रतीत होता है। उसके कुल-गोत्री है पर परिवार पुत्र-कलत्र नही। दस वर्ष की बाल्यवयस् में ही उसके जन्मदात्र पितृ-मातृ स्वर्गारोहित हुए। गोत्रोपेक्षित बालक शिपि का पोषण आचार्य सुरत ने किया। उन्हीं की सुकृपा से वह इस जन्म में चण्डी-उपासना के नैष्ठिक[7]-नैमित्तिक[8] पर श्रमसाध्य पथ पर अग्रसर हुआ। कालान्तराल में परिमार्जित होकर विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति करेगा। उस समय तक जडत्वमयी[9] धिषणा और चेतनाच्छादित कालकश्मल[10] शिपिविष्ट के मन पर राज्य करते रहेगें।

लतावितानी मण्डपाच्छादन के पार्श्व मे सघन गुल्मद्रुमों में अकस्मात कोई पुरूषकण्ठी आर्त स्वर ध्वनन हुआ। दोनों सहचारियां चौकीं। इस सुरक्षित उपवन सकलरक्षा व्यवस्था का अभिभेदन कर कौन पुरूष आया?

"कौन?" त्वरा से लोलापा उठ कर कहती हुई सत्वरवग से गुल्मों की ओर दौड़ी।

—"यह मैं हूँ देवि! मैं शिपिविष्ट।" गुल्म संवर्ग से निकलते हुए शिपिविष्ट चन्द्रिकालोक में लोलापा को पहचानते हुए बोले। उनके भयविस्फारित नेत्रों में किकट-आतंक कर परिच्छादन था, उसका कारण था एक किर्मीर[11] वर्णी लघु

नागिनी जो उनके हाथ पर आश्लेषित[12] थी। वह विषधर सुता विषहीन थी, लोलापा प्रथम दृष्टयः ही जान गई। वह शिपिविष्ट के भयातंक का आनन्द लेती हुई सस्मित बोली–

–"देव, क्या यह विलासिनी[13] आपके कठर पौरूष से आकृष्ट हो आप पर कामासक्त हो गई है?"

–"रक्षयाम देवि, रक्षा करो।" शिपिविष्ट प्राणनिर्गमन भय से चीखे। तब तक महाराज्ञी तिलोत्तमा भी वहाँ उपस्थित हो चुकी थी।

–"लोलापा क्यों सताती है दीन को" कहते हुए तिलोत्तमा ने स्वयं ही नागिन को फन के समीप से पकड़ कर दूर फेंक दिया।

–"बड़ा दुष्ट नाग था देवि।" शिपिविष्ट दीर्घोच्छ्वास से बोले। अभी तक उनका ध्यान तिलोत्तमा की ओर नहीं गया था।

–"वह नाग नही नागप्रिया थी आचार्य।" लोलापा ने फिर हास्य किया।

–"आपको किस विधि सज्ञात हुआ देवी।" शिपिविष्ट चकित थे।

–"नारी ही नारी के मसृण गुण और परिरम्भ[14] स्वभाव की भोगवृति से सघन परिचित होती है विप्रवर, सो मैंने सहज ही उसका परिचय पा लिया।" लोलापा ने अपने कटाक्षासि[15] से शिपिविष्ट के रसिक मन पर आघात किया।

–"सर्वकुशल तो है आचार्य। यहाँ हमारे प्रासाद में आपको कोई कष्ट तो नही हुआ।" यह वाक्योद्‌बोधन तिलोत्तमा था।

स्फटिक चन्द्रिका की शुभ्र लीला में तिलोत्तमा की कामिनीकान्तिक स्वच्छ छटा, जैसे ही शिपिविष्ट के चक्षु प्रसारागत हुई वह चौंक उठे।

–"देवी.........महायोगिनी.........। अकिञ्चन क्षमाप्रार्थी है। आपका सुआगमन कब हुआ"

–"आचार्य मैंने ही आपको नागत्राश से मुक्त किया है–क्या इतने शीघ्र विस्मृति हो गई?" तिलोत्तमा की रदस् द्युति[16] ज्योत्स्ना में धवलित हुई।

–"क्षमा........क्षमा देवी क्षमा.......भय–यातना से मेरी संज्ञा कुण्ठित हो गई।" शिपिविष्ट ने मन से क्षमा याचन किया।

–"नहीं आचार्य भय से नहीं मेरे कलानिधि यौवन बिम्ब से प्रसारित–प्रस्रुत कौमुदी के द्युतालोक में आप निःसंज्ञ हुए।" लोलापा ने पुनः परिहास किया।

शिपिविष्ट के मुख पर लज्जा की अरुणाई लास्य करने लगी।

अकस्मात् ही शिपिविष्ट की दृष्टि ध्यानस्थ पांशुला की ओर लक्षित हुई। वे अद्भुता का दर्शन कर चकित विभ्रमित हुए।

–"देवी, यह क्या अतिरेक घटन निष्पन्न हो रहा है? देखो अर्चिपपिण्ड[17] की भांति उद्दीप्त हो रहे इन कपालों को। शून्य में स्थित इन नृमुण्डों के सहित असंख्य ज्योतिरिंगण[18] कीटों के वृहदवलय के अभ्यान्तर क्षेत्र में नरकपाल मालिका भूषित यह कौन कंकाली है? अरे यह तो कपालमालिनी देवी पांशुला का देहवृत्त है। आश्चर्य, परमाश्चर्य देवी योगिनी! यह कापालिका यहाँ क्यों कर, कैसे आगमित हुई?

–"परन्तु महात्मन् आप इस सम्पूर्ण सुरक्षित पुष्पप्रसृत्वर[19] प्रसीदिका[20] में किसभांति प्रवेशित हुए? क्या उपवन रक्षिकाओं ने निषेधन नहीं किया?" लोलापा ने स्मरण कर कहा।

"ओह! सत्य ही.........सत्य ही............। मेरी स्मृति निःसंज्ञ हो गई अथवा विस्मृति के धनावरण ने चितिधरा पर आच्छादित होकर स्मृतियों को अपने तिमिरपंक में निमग्न कर दिया है।" शिपिविष्ट कुछ स्मरण कर अपने मस्तक को दोनों हस्तकरतलों से सिर को बांध कर निरीह-असहाय और आकुलपुरूष के समान तृण्मयी वसुधा के दूर्वांकुरों पर शिथिल भाव से बैठ गए।

–"क्या कहूँ देवी। मेरे साथ ही राजसुता सहित दो अन्य किशोरी कन्याएं थी। ओह! परमेश्वरी, लोचना – नन्दकारिणी महाराज्ञी की नयनचन्द्रिका राजसुता की रक्षा करो।" शिपिविष्ट के स्वर मे पश्चाताप और अपराधबोध का संगम था।

–"क्या हुआ? क्या घटित हुआ कुमारी के संग?" तिलोत्तमा विकल हो उठी।

–"राज्ञकुमारी के पादांगुष्ट में काद्रवेय[21] ने दंश किया था। मैं उसके उपचार हेतु ही किसी को पुकारने के लिए आ रहा था पर मैं भी गरलधर[22] के गाढ़ पाश में बंध गया और फिर विस्मृति आ गई।

–"उपवन के किस भाग में कुमारी दंश पीडित हुई ब्राह्मण।" तिलोत्तमा का वात्सल्य विकल हो उठा।

उत्तर में शिपिविष्ट सत्वर गति से उठ कर चल दिए। एक स्थान पर पहुंच कर शिपिविष्ट खड़े हो गए और इधर-उधर दृष्टि डालने लगे। उनके मुख पर

अनिश्चिय और नेत्रों मे स्पष्ट भ्रम दृष्टिगोचर हो रहा था।

—"सम्भवतः यही स्थान हो, पर नहीं मैं मार्गच्युत हुआ देवी।" डूबते स्वर मे शिपिविष्ट बोले "शिपिविष्ट, वात्सल्यवर्धिनी[23] राजकन्या का किञ्चित भी अशुभ हुआ तो तृषाग्नि में तेरा क्रूरदाह कर दूंगी।" लोलापा के नयनों से अमर्षानल के स्फुलिंग झरने लगे। उसके स्वर में घातुकी[24] कर्कोटवल्लभा[25] की घोर फुंकार थी। शिपिविष्ट लोलापा के कल्पान्तकारी कालरूप को देखकर घूर्णित महावात्या में फँसे तृण के समान प्रकम्पित हो उठे। शिपिविष्ट का भीत हृदय रुदन कर उठा। अब उनका कल्याण संभव नहीं। मृत्यु भय से देह प्रस्वेद-प्रसवा हो गई। विविध विभ्रम[26] सुरतक्रीड़ा प्रवीणा कामिनी के केशाश्रय[27] के स्थान पर यम के निर्भट पाश का पाशविक क्लेश? नवयौवनावलीढ़[27] व्याप्त अवयवा षोड़शी के महालंगिन के स्थान पर मृत्युदेव के कुलिश शूल की यातना? शिपिविष्ट सचमुच रो उठे।

अकस्मात् लोलापा चौकी। उसे दूरस्थ उपवनी भाग की पुष्पघाटिका की दिशा में किंचित हास्य ध्वान्य श्रवणगोचर हो रहा था-जैसे कोई उत्फुल्लमुखी, चपल चञ्चला, विभास[29] हास्यमयी रमणी, ज्योक्[30] निशोत्संग में क्रीड़ा लीला का हास्यानुष्ठान सम्पन्न करती हुई महामोद को प्राप्त हो रही हो।

—"महाराज्ञी इस कर्णगोचर हास्य ध्वनि को ग्रहण करें। मेरे मनानुसारेण यह प्रसन्न हास्यवर्षण चंचलगुणी पताका का कण्ठोद्धृत[31] है।" लोलापा ने विचार कर व्यक्त किया।

वे तीनों पुष्पघाटी की दिशा में अग्रसरत हुए। ज्यौ-ज्यौ लक्ष्य सामीप्य प्राप्त होता जा रहा था, त्यौ-त्यौ शब्द संराव स्पष्ट होता जाता था। समीप पहुँच कर उन्हें शिञ्जित[32] ध्वनि गुंजन भी श्रवणित हुआ। लोलापा और तिलोत्तमा को ज्ञात हो गया कि तीनों कुमारिकाएं सुरक्षित हैं एवं कल्लोलित पुष्करिणी के उच्छृंकल वेग की भांति किलोल क्रीड़ा करती यत्र-कुत्र भाग-दौड़ कर रही हैं। इस असमयी काल में सुकुमारियों का क्रीड़ापुरश्चरण शोभित और सुरक्षित नहीं।

तीनों क्रीड़ा प्रांगण में पहुंचे। सर्वप्रथम पताका की दृष्टि तीनों पर पड़ी अभिज्ञित हो उसके तुलाकोटि[33] बंधित चरणयुगल स्तंभित हो गए। उसने मन्द स्वर में दोनों सहचरियों को सावधान करते हुए मन्द स्वर में चेतावनी दी।

—"अरे नूत्रयौवना[34] सखियों, राज्ञमात् और आचार्य, आचार्या............।"

तीनों ही सवस्याएं स्थिर हो गई। उन्हें स्मरण आया कि भूरिरात्री के शून्यकाल में उनकी क्रीड़ा लीला महाराज्ञी द्वारा निषेध थी और यह पुष्पघाटिका तो सम्पूर्ण निषेध। मेखला और पताका भयरंजित[35] हो कम्पित होने लगी। उनके सघनजंघन और गजशुण्डाकारवती स्निग्ध जंघाओं के तीव्र स्फुरन से परिधान जनित 'मर्मर[36]' शब्द की सूनृत[37] ध्वनि मन्दश्रुति ध्वनन् प्रकट होने लगा पर कामाक्षी निर्भीत थी। केशरी कन्या की भांति अभय कांति से संपूरित कामाक्षी ने आचार्यत्र्य[38] के पादपद्मों का निक्कणवत[39] स्वर से सम्मान किया।

विकचनयनोत्पल की सुषमा सज्जित और विद्रुमाधर[40] पल्लवी के चारुहँसित देह विन्यास को प्रसन्न मन से निरखते हुए शिपिविष्ट ने आशीष दान दिया।

—"सकललोकललनाकुलललामकन्या[41]! आद्या तुझे अमरत्व प्रदान करे। तेरे कुछ मनोरथ सिद्ध हो, तू चिरंजीवी चिर शाश्वती हो।"

"पुत्री ब्यालदंश के पीड़न से कैसे मुक्ति मिली। ला बता तो वह पादांगुष्ट जहाँ विषदन्तिन्[42] ने दंश किया।"

—"मैं ब्यालविष से उत्पीडित नही हुई माता। हाँ, पताका ने हास्यरसवर्द्धन हेतु ब्यालपरिहास अवश्य किया था। फणिधारी ब्याललता को उनसे मेरे चरणांगुष्ट पर डाल कर आचार्य को हमारे क्रीड़ांगन से पृथक करने हेतु मेरी ही आज्ञा से यह लीलामंचन किया था। आचार्य की सततोपस्थिति में हमारा क्रीड़ा रंजन अपूर्ण था। दिवस काल में ही हमने अपनी सुयोजना का गठन कर लिया था। राकेश की चन्द्रिका छटा में पुष्पघाटिका दर्शन की उत्कटाभिलाषा थी माता, इस कारण यह अपराध हुआ।" अंजलीबद्ध कामाक्षी ने अपनी जनियत्री से क्षमा प्रार्थना की।

सत्यवाद पर तिलोत्तमा प्रसन्न हो गई। उसने कुसुमसुकुमारि[43] कांचनकांति मयी कन्या को स्नेहाधिक्य से आलंगित किया। कामाक्षी की द्वय सहचरियों ने भी आचार्यो का वन्दन किया। वे सभी उल्लसित मन से लौटे!

शिपिविष्ट चलते-चलते कुछ रुके। संभवतः उन्हें कुछ स्मृति हुई थी। लोलापा ने प्रश्नवाची आपांग वीक्षण पूर्ण उनकी ओर दृष्टिपात किया! शिपिविष्ट बोले-

—"देवी! मुझे प्रासाद अतिथिकक्ष में एवं प्रासाद शिक्षालय में पूर्ण वासर व्यतीत हो गया पर महाराज्ञी के दर्शनों का पुण्य लाभ नहीं हो सका। एक रहस्य

भी अज्ञात है कि मैं राजप्रासाद के भव्यतम अतिथि गृह से किस भांति चण्डोग्र दैव्या के रजरमित मठ में पहुंचा।"

तिलोत्तमा की आमोदिक वृत्ति उसके आरक्त संपुटित अधरों पर क्रीड़ा करने लगी। इसके पूर्व कि वह उपहासमग्न हो शिपिविष्ट को अपने हास्योपहास का आखेट बनाए, तिलोत्तमा की स्मित गिरा उच्चारित हुई।

—"आचार्य मैं ही इस राज्य की अधिशासिका तिलोत्तमा हूँ। और हम एक-द्वितीय से पूर्व में ही मिल चुके हैं।"

—"अरे.........आश्चर्य.........! परमाश्चर्य देवि!! योग और भोग का हार्द्रसंगम? माया और ब्रह्म का तेजस संयुक्त? कर्ता ओर कार्ययता का सन्वित स्वरूप? देवी, कहीं आप मुझसे परिहास तो नहीं कर रही?" शिपिविष्ट को चकित-धकित स्वर से कहते और उनके श्यामलवर्णी मुखमुद्राओं का दर्शन कर लोलापा ही नही त्रिकुमारिकाएं भी हँस उठी। शिपिविष्ट साश्चर्य क्रमशः सुन्दिरों की विंहसित मुखच्छवि को निहारते रह गए। वे नहीं समझ सके कि यह सुरनायिकाओं की ललामशोभा से शोभित कुमारिकाएं और लोलापा अकारण ही क्यों हँस रही हैं?

—"भोले आचार्य! तुम्हें अविश्वास क्यों हुआ?" लोलापा ने हास्य वदन से कहा।

—"महाराज्ञी के श्रीचरण पद्मों में प्रणाम निवेदित करती हूँ।" अकस्मात् द्रुमदलों के सम्मर्द से प्रकट होती कपालिका पांशुलापा ने विनयावनत हो नम्र स्वर में उच्चारण किया।

—"अवधूती........। व्यर्थ ही मुझे लज्जित करती हो।" तिलोत्तमा का स्नेहाधिक्य पांशुलापा पर प्रकट हुआ। आचार्य शिपिविष्ट पांशुलापा को अनायास-अकस्मात् रूप से प्रकटित होते चकित-भीत हुए। वह पांशुलापा को प्रणाम करना ही चाहते थे कि कपालिनी की गलमाल में टंगित शोण स्त्रिवत नृमुण्ड माल्य पृथक हो शिपिविष्ट के दक्षिण स्कन्ध पर आ स्थापित हुआ किन्तु शिपिविष्ट इस घटना से अनविज्ञ ही रहे। अकस्मात् नृशीश को अदृश्य होते देख शिपिविष्ट शिष्टाचार भूल गए।

—"देवी करालनी, आपकी माल्य का भूषण अदृश्य हो गया। आश्चर्य है।" वे विस्फारित नयनों से माल्य में हुए रिक्त स्थान को देखते हुए बोले!

लोलापा उच्च हास्यी मुक्त कण्ठ से हँस उठी। उसी समय नृमुण्ड से

स्रिवत शोण रक्त की जलीय आर्द्रता से उनके वस्त्र उत्क्लेदित हुए। उन्होंने अपना हाथ ऊपर कर आर्द्रता का परीक्षण किया। जैसे ही उनका हाथ नृमुण्ड पर रखा हुआ नृमुण्ड के मुखगह्वर से तीव्र अट्टहास गुंजा।

शिपिविष्ट अतिभय से चीत्कार कर उठे। उनका सर्वांग प्रकम्प से आन्दोलित होने लगा। वह स्वयं को नही सम्हाल सके और भूशायी हो गए। उनके अधरों से अस्फुटित शब्द निकले और वे निःसंज्ञ हो गए।

तिलोत्तमा को छोड़ उपस्थित वनितावृन्द महा हास्य में रमने लगा। अन्ततः महाराज्ञी ने ही आदेश दिया कि शिपिविष्ट को ससंज्ञ किया जाए। लोलापा और कुमारिकाएं प्रयासरत हुई। कुछ ही क्षणों के पश्चात् शिपिविष्ट में चेतना के संसज्ञित लक्षण प्रकट होने लगे।

---

1. विद्युत कान्ति की चमक
2. चमकते हुए जुगनू
3. सुवर्ण (सोने की) कांति
4. स्वर्णमण्डित प्रभा के समान देहवाली
5. ऐसी नायिका जिसमें आनन्द भरा हो, प्रकट हो
6. पत्नि-पुत्र
7. निर्दिष्ट, दृढ़
8. प्रयोजन की सिद्धि के लिए
9. जिसकी बुद्धि पर जड़त्व छाया हो
10. कालजनित मूर्च्छा
11. चितकबरारंगी
12. लिपटा हुआ
13. नागिन-(नाग+नागिन का मैथुन काल दीर्घ समय तक रहता है। इसलिए नागिन को विलासिनी कहना युक्तिसंगत प्रतीत होता है)
14. आलिंगन करने की क्रिया
15. नेत्रों की धार (नेत्रशस्त्र)
16. दन्त पंक्तियों की चमक
17. जलता हुआ अंगारा।
18. चमकते हुए जुगनू
19. चारों ओर पुष्पों का फैलाव
20. पुष्पवाटिका
21. नेत्रों को आनन्द देने वाली
22. नाग, सर्प
23. नाग
24. अपने से छोटों के प्रति प्रेम में वर्द्धन करने वाली
25. क्रूरा, नृशंसनी
26. नागप्रिया (ककोटि नाग की गणना आठ प्रकार के मुख्य नागों में की जाती है)
27. ऐसी कुशल निपुण नायिका जो कामोद्दीपन के लिए अनेक प्रकार के हाव-भाव प्रदर्शन करती है।
28. विपरीत रति मे रत नायिका की मुक्त केशराशि जो नायक पर आरूढ़ होकर अपनी केशराशि का छादन नायक पर करती है, वह केशाश्रय है।

29. नवयौवन द्वारा चाटित (ग्रसित) अवयवों से युक्त जनन्मोहिनी स्त्री
30. हास्य प्रभा से मण्डित सुन्दरी
31. चांदनी युक्त रात्रि की गोद में
32. कण्ठ से उत्पन्न
33. आभूषणों से उत्पन्न ध्वनि
34. पैर में पहने जाने वाली पायल/नूपुर
35. नवयौवन से सम्पन्न युवती
36.
37. कपड़ों की रगडन से होने वाली आवाज
38. प्रियकर वाणी
39. तीन आचार्य (माता की गणना भी आचार्यों में)
40. वाणी के समान
41. मूंगा के समान लाल होठ
42. समस्त ललनालोक के कुल में श्रेष्ठ मनोहर कन्या
43. सर्प
44. फूल सी कोमल स्वर्णाभा से आभित कन्या

मुत् दाय श्रेयस् मुहूर्त में शिपिविष्ट ने गौरी पुत्र गणपति की भद्राभ्यर्चना सम्पन्न कर त्रिकुमारियों को शिक्षा दान का क्रम-आरम्भ किया। पताका में कामिनी कांति की मर्म्मनाभा सम्पूर्ण प्रकट थी। उसके यौवन प्रसारित पोनोत्तुंग स्तनों की पांशुप्रभा अन्य कुमारियों की अपेक्षा भूरियात्रा में नेत्र सुखदायिनी थी। पर कामाक्षी की चतुर्दशवर्षीय नवागमित लावण्यश्री और हिरण्यकान्ति की तुलना में सकल बालाएं जैसे निःतेज थी।

कामाक्षी के नयनान्द्रप्रवर्द्धी, अतिरेक काय से अजस्रवतः शनैः शनैः मुग्धकारी सुवास सुरभित होती ही रहती थी। यही मनोहारिणी कायोत्पन्न सुवास शिपिविष्ट के स्वान्त क्षेत्र में अतिभी आन्दोलन उत्पन्न करती थी।

शिपिविष्ट ने अपने दृष्टिकोण से परीक्षण किया। कामाक्षी ज्ञान की प्रत्यक्ष मूर्ति थी। उसका नीति शास्त्रीय ज्ञान भी अनुपम था और धर्मशास्त्रीय मेघा भी अद्वितीय थी। उसके सख्याश्रय में निवासित मेखला और पताका भी बोधगम्या थी। तीनों सवस्याएं कला की उत्सधरा थी। कामाक्षी का गान, वादन, नृत्य और भाव अद्‌भुत थे, पर नृत्य-नाट्य में मेखला ने विशिष्ट नैपुण्य प्राप्त किया था और पताका वाद्‌य कला में निष्णात थी।

सुललित लावण्यतनुधारी बालाओं को दक्षता और पटुता के सम्मुख शिपिविष्ट स्वयं को लघुकाय मानने को विवश हो गए। वे उन कनकोज्ज्व कांति कारणियों को क्या शिक्षा-दान प्रदान करें? यह समझ नहीं सके। वे निर्वक-निश्चल आसन पर बैठे रह गए!

रूचिर कुचकलशा पताका की विपुल चंचल वृति में स्थैर्य्य और धैर्य कहां था? उस विधुवदना ने अन्ततः आचार्य की ही अपनी चांचल्यचर्या का पात्र बनाते हुए नातिगम्भीर गिरा से वागूमोचन किया।

–"आचार्य देव, आपके मानव संकुल के आचार्यगण 'सुभगा' को किस भांति परिभाषित करते हैं?"

आचार्य शिपिविष्ट की स्मृति में एक श्लोक आदित्य की भांति उदित हुआ। उनके अधरों पर जयस्मित क्रीड़ा करने लगा और नेत्रों मे ज्ञान मण्डित दृष्टि की द्युति। उन्होंने गान किया..........

"या स्त्री कुचकलशनितम्बमण्डले जायतेमहाविपुला
गम्भीरनाभिरतिदीर्घलोचना भवति सा सुभगा"

आचार्य शिपिविष्ट के गायन को श्रवण कर मेखला और कामाक्षी ने

सप्रयास अपना हास्य वर्षण रुद्ध किया पर पताका तो जैसे लक्ष्मीजनक की भांति घोर गम्भीर थी। उसने पूर्ववत् स्वर में प्रश्न किया–"प्रभो यह 'कुच' क्या पदार्थ है? क्या यह कलशावासी है?"

आचार्य शिपिविष्ट की मति स्तंभित हुई पर वे सम्हल कर बोले–"ज्ञानोत्सुका पताका। कुच स्त्रियों के वक्ष पर उभरे वर्तुल मण्डल की संज्ञा है।"

–"पर इस वक्षीय वर्तुल बिम्ब को कुच क्यों कहा गया। इसका मूल क्या है? कुच शब्द में क्या वे गुण समाहित हैं जो नारी की वक्ष महिमा को व्यक्त करते हैं?"

शिपिविष्ट को उत्तर न सूझा (उन्होंने नेत्र बन्द कर लिए-जैसे वे गहन चिन्तनरत हो। अकस्मात् दृष्टितामस के क्षेत्र में विभु मत्स्येन्द्रपा का अंशु रूप भासित हुआ, महात्मा सुरत और उनकी मुद्रा निष्कला की सौदामिनी छटा भी दर्शन क्षेत्र में आई, पश्चात् कंकाली पांशुलापा की सिताभा भी उदित हुई। शिपिविष्ट को दिव्यानुभूति हुई जैसे उन प्रमुदित मूर्तियों से उद्‌गमितालोक के ज्वलप्राच्छादन से उनका समग्रगात्र आलोक सृष्ट हो गया है। वाग्देवी जैसे उन पर अनुरक्त हो गई है। उन्होंने हर्षोपाश्रय से नयन खोले–

–"शिक्षार्थिनी बाला 'कुच' का सामान्य अर्थ बंधन होता है और इसका एक पर्याय मेघ या बादल भी। 'क' और 'च' अक्षर के मध्य 'उ' मात्रिका सेतुरूपिणी है। यह सेतु 'उ' एक–विशिष्ट अक्षर है (मुख्य तीन स्वरों में इसकी गणना अक्षरधर और शब्दशास्त्री करते हैं। कन्य के, इसके 18 भेद है। पुल्लिंग रूप में 'उ' शिव और सृष्टि निमार्त्र प्रजापति ब्रह्मा का वाचक भी है तथा मनस् की कलाओं के प्रतीक ग्लौः बिम्ब का पयार्यी भी यही 'उ' है। इस 'कच' (बन्धन) में संहार शिव और सृष्टि जनक ब्रह्मा स्थित हैं (सेतु रूप में) बंधक है, इसलिए यह 'कुच' संज्ञेय है। द्वितीय कच शब्द का पर्याय वारिद है। वारिद की मूलवृति मेह है अर्थात् उसकी नियति नीर का अभिसिंचान है। इस अभिसिंचन को ब्रह्मा जनन शक्ति 'उ'कार के रूप में प्रदान करते हैं और पर्यन्य के तदुपरांत जड जगत सृष्ट होता है। अतः जो सृजन का मूलोत्सवृत है उसी को कुच मान, जो जनन का सहायक उत्प्रेरण है उसी को कुच जान, जो ब्रह्मा के लोकसृष्टि कर्म का उपादान है वही है कुच का भान" शिपिविष्ट एक क्षण रुके। उनके नेत्रों में तीव्रोलवण तथा मुख मण्डल पर अनिर्वचनीय द्युति का उद्रेकन था। शिपिविष्ट के स्वर में अनायास उत्पन्न स्वर गाम्भीर्य और प्रशान्त वाक् स्वन पर कुमारिकाएं चकित विस्मित थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो शिपिविष्ट

आवेशाजुष्ट हो वाणी यज्ञ कर रहे हो। अपनी व्याख्या में सर्वद्धन करते हुए उन्होंने पुनः कहा–

–"कुच की कलश-उपमा। इसमें कैसा निगूढ़ भाव है, ज्ञान प्रच्छन्नता में शब्द सर्जक ने एक दिव्यतर अवस्था का सोमगायन किया है-वह स्तुत्य है। कलन के द्वयाद्याक्षरों 'कल' महाकाल और महाकाली के अश्रान्त प्रत्यालीढ़ सुरतोत्पन्न की मधुर नदनध्वनि की कल कल दर्शना है। यही दर्शन काली का कलन है, और इस कलन का कल निनाद कलशोद्भूत नाद में बिम्बित होता है। इसी नाद की सूक्ष्माभिव्यक्ति पिण्ड में 'सोहम्' के रूप में सतत नादित है जो 'एकोहम् द्वितीयो नास्ति' के बोधक ब्रह्म का चिरास्मरण है। यही एकमेव हेतु है जिसके आधार पर 'शब्द' किंवा नाद की ब्रह्म वाच्य अवधारणा का सुनिश्चय हुआ है। अब मैं 'कलश' में कल को प्रकारान्तर से व्याखित करता हूँ।" शिपिविष्ट ने अपनी ज्ञानचर्या की 'कलश' वृत्ति का पुनः शब्द निरूपण प्रस्तुत किया।

–"कलश का सामान्य अर्थ-एक ऐसे पात्र की ओर स्पष्टतया पूर्ण संकेत करता है जिसमें नीर-क्षीर की अवधि तरलता निवास करती है। इस तारल्य में तुष्टि और पुष्टि ही समवर्त रूप से निवासित है। 'कुचकलश' में भी यही तुष्टि-पुष्टि शक्तियां सन्निहत हैं। यही शक्तियां जगत को तुष्ट-पुष्ट कर संवर्द्धन रचना का विकास करती है। यह विकसन कल ध्वनि से साम्यवर्ती है जो काल से संयुत होकर कलानिधि की भांति नित्यवर्द्धन को प्राप्त होता है और उसी की भांति क्रमशः अवनत होकर शून्य में तिरोहित हो जाता है। उत्थानवर्द्धन से पतन तिरोहन तक की कलन यात्रा का महोत्स एवं मूल कुच कलश है। यही कारण है कि 'कुच' को 'कलश' की उपमा से उपमित किया गया है। पुनश्चय कहूंगा-कलस के आद्याक्षर 'क' के विभिन्न अर्थान्तर है जैसे-'क' पु.न.लिंग में मारुत, पवन, (2) वेधस्, ब्रह्मा, (3) ब्रह्न, सूर्य, (4) शिर, (5) अम्बु, जल के अर्थों मे व्यक्त-प्रयुक्त है। एक अन्य भाव-

"कः कौ के कं कौ कान् हसति च, हसतो हसन्ति हरिणाक्ष्याः
अधर पल्लवमङ्घ्री हंसौ, कुन्दस्य कोरकान्दन्ताः"

शिपिविष्ट ने अपने गम्भीर वक्तव्य में 'श्लोक गान कर हास्य रस वर्षण का प्रयास किया। उनके अधर पल्लवों पर भी स्फीतस्मित स्फुरित हुआ। कुमारियों के चारु अधरोष्ठों पर भी स्मित के हर्षदेव ने पदार्पण कर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। आचार्य शिपिविष्ट अपनी अपूर्ण बात को पूर्णता की ओर

कर्षित करते हुए कह रहे थे।

"कलश का द्वितीय अक्षर 'ल' पृथ्वी बीज है। पृथ्वी की उर्वरा शक्ति से हम सब सुपरिचित हैं, संज्ञान हैं। 'ल' का एक अन्य अर्थ 'इन्द्र' भी है और इन्द्र पर्जन्य का अधिपति है। 'कलश' का अन्ताक्षर 'श' कल्याण और शुभत्व का आर्थिक है। इन त्र्यार्थ का संगम ही कलश है कुमारिकाओं। अपितु 'कुचकलश' की सार्थक संज्ञा पुत्रीवती में ही निहित है। जैसे नीरहीन कलश दृश्यमात्र है उसी भांति 'क्षीरहीन' कुचकलश मात्र दृश्य है। अब मैं अपने गुरुकृपाबलंवन से 'नितम्बमण्डल' का मति कथन करता हूँ।" शिपिविष्ट ने उत्तरात्तर बढ़ते हुए कहा–

"निभृतं तम्यते आकाङ्क्ष्यते कामुकैः
वा नितम्बति पीडयति नायक-चित्तम।"

"कटि प्रदेश के अधो प्रदेश में वर्तुल मांस शकल नितम्ब है और उसका वलयित तुंग प्रसार बिम्ब कटिप्रोथ का पांशु वर्तुल कामिनी के शिवारिमन्दिर की गम्भीरता को सिद्ध करता है। कटिका का समुन्नत कटाव कुल्या का कण्डुयनक कथानुराग है, वह मदनसरबिद्ध नायक और सुरतार्थिन नायिका के कामोद्रेक का उपादान है अथवा उसका आयत उपशोभन अथवा नितम्ब मण्डल ही निर्देही मन्मथ का प्रत्यक्ष उपलक्षण है।" आचार्य शिपिविष्ट ने प्रश्न वाचक दृष्टि से चपललोचन पताका की ओर देखते हुए कहा–

–"उल्लसच्चारुमुखी बाला कुमारि अपनी शेष जिज्ञासा का और कथन करो।"

–"श्लोकोक्ति का शेष भाव मुझ पर अनावृत है आचार्यवर पर 'सुभगा' शब्द को अवश्य पारिभाषित कर हम पर अनुग्रह करें।" पताका ने वक्र कटाक्ष से पुनः शिपिविष्ट पर अक्षिअसि संघात का प्रयास किया पर शिपिविष्ट जैसे ज्ञान के सुदृढ़ उरश्छद में रक्षित थे। उनके मुख पर मन की कामितृवृत्ति का कोई भाव प्रकट नहीं हुआ। वे व्यासासन पर अधिक स्थिर हुए फिर गगनधीर वाणी उनके मुख से वाग्धारा के रूप में प्रकटित हुई।

–"सुभगा की संज्ञा की मूलवृत्ति भग है। यह भग कामालय तो है ही साथ ही महाविस्तार के विपुल गुणों से विभूषित है। इसके अनेकानेक अर्थ हैं पर वे भावभूमि में समभावी।"

"भगं श्रीयोनिवीर्येच्छाज्ञानवैराग्य कीर्तिषु।
महात्म्यैश्चर्ययत्लेषु धर्मे मोक्षे च ना रवौ।।"

'सुभगा' शब्द का आद्याक्षर 'सु' का विशिष्ट अर्थ, प्रसव करना, विभूतिमान होना है। अन्य प्रयोग में यह 'सु' अर्ककर्षण, (दवाकर रस निकालना) सिंचन एवं सोमयज्ञादि विषयक है। सामान्य अर्थ के रूप में, श्रेष्ठ, सुगन्धित, मनोहर, आदि व्यक्तन में प्रयुक्त है। ऐसी विराटता जो विस्तार की समग्रता का सिंचन करे, जो मनोहर और सुवासित है, जो निखिल ब्रह्माण्य की अर्ककर्षणा है वही सुभग है और जो इस महाविस्तार को धारण करे वही 'सुभगा' है।

"परन्तु आचार्य सघन जघन क्षेत्र में विस्थापित यह कुसुमेषकुटी[1] रूपी भग देहपिण्ड का लघुतर पर निगूढ़-अंग है। इसमें संकुचन है महाविस्तार नहीं। अपने वक्तव्य को स्पष्ट करें।" अधिक समय से मौन मेखला ने विनयबद्ध हो मनोभाव प्रकट किए।

आचार्य शिपिविष्ट के अधर दलों पर पुनः स्मित क्रीड़ित हुआ। भव्यमयी[2] स्वरतंत्री उनके कण्ठ से उद्धृत हुई।

—"षोडशार्चिस्[3] दीप्ति की प्रभूति[4] पुत्री, एक पिण्ड (मानव देह) में अनेकानेक ब्रह्माण्य समाहित हैं, और भग पिण्ड प्रसूता है। उसके प्रसूत कर्म की पिण्डोद्गम क्रिया सिद्ध करती है कि इस लघुतर मदनकौटीर[5] की संकीर्णता में ही महाविस्तार निहित है। इस महाविस्तार की धरित्री को मैं–'सुभगा' कहता हूँ।" अपनी उक्ति निष्पन्न कर आचार्य शिपिविष्ट के नेत्र मुंदने लगे। महा आनन्द के परमोद्रेक से उनकी सकल लोमराजि हर्षित हो उठी। वे अवरुद्ध कण्ठ से बोले–

—"लोक की प्रतीक कामेश्वरी कामाक्षी। मुझे प्राश्रय प्रदान करो। आनन्द रस से मेरा देह पिण्ड फटा जा रहा है। चेतना चैतन्य से महाभिसार रचा रही है, मन जीवात्मा में विलुप्त होता जा रहा है, देहस्थ स्रोतस्विनियां महोदधि के विराट क्षीर में संगिमत होने को प्रसत्वर गति से भाग रही हैं।" शिपिविष्ट के बन्द नयनों से प्रेमाश्रु प्रवाह की पुण्य सरिता का तीव्रोद्गम हो उठा। इसके पूर्व कि वे निःसंग होकर पृथ्वी पर जा गिरें, कामाक्षी ने उसके आनन्द गात्र को अपने मृणाल भुज पाश में बांध लिया। अकस्मात ही शिपिविष्ट का ललाट कामाक्षी के कोमल चरण कमलों पर आहिस्ता से आ टिका।

—"मुक्तिदायिनी, मुक्ति दे.........मुक्ति दे..........मुक्ति.........।" अस्पष्ट स्वर में उच्चार करते हुए शिपिविष्ट की चेतना निःसंज्ञ हो गई!

—"क्या आचार्य ने महाप्रयाण किया?" मेखला ने अत्याधिक घबरा कर

कहा। इसके पूर्व कि कामाक्षी कोई उत्तर दे उसे समीप से लोलापा का स्वर श्रवण हुआ-

-"नहीं पुत्रियों, आचार्य भक्ति के भावोन्मेष से बद्ध है। उनकी यह भाव समाधि है।"

लोलापा के साथ महाराज्ञी तिलोत्तमा को भी प्रसन्न मुद्रा में वहाँ उपस्थित देख, त्रिकुमारियां प्रसन्न हो उठीं, चिन्ता के मेचकी जीर्मूत छट गए।

भाव समाधि की अवस्था में ही आचार्य शिपिविष्ट को शिक्षा मन्दिर के नीलतारा विग्रह के समीप भित्ति आश्रय से स्थापित कर दिया गया। अपना कार्य सम्पन्न कर ललामच्छवि की मोहिनी मूर्ति लोलापा ने यौवनलीला के पुण्य मंच की धरा तिलोत्तमा से सहज ही कहा-

"महाराज्ञी, आपका कथन सत्य प्रतीत हो रहा है। आज जड़मेघा आचार्य शिपिविष्ट से जिस प्रकार वाग्सरित का भद्रोद्गम हो रहा था वह चोद्यजनक है।"

-"यह आश्चर्य नहीं है लोला, आचार्य के मूल संस्कारो के पुनर्जागरण की आद्यतन-अवस्था है। इनके गुरुवर्य और अन्य देवत्वधर शक्तियां इन्हें अविरत भाव से ज्ञान संप्रेषण कर रही हैं। पात्रतानुसार जितना इकी चिति उर्मिला को ग्राह्य हो रहा है, वाक् द्वारा प्रकट हो रहा है। जब पूर्णपात्र का विकास आचार्य में होगा, तब आद्या का ज्ञानप्रेषण भी इन्हें ग्राह्य होगा और ये पूर्ण हो सकेगें।"

-"माता, क्या आचार्य का प्रवचन आपने भी सुश्रवण किया?" कामाक्षी ने प्रश्न किया।

-"अवश्य सुताश्री। मैंने आचार्या लोलापा के साथ ही कसल संवाद श्रवण किए। आचार्या लोपा गोप्य रूप से आ शिपिविष्ट के कृत्यकलापों पर दृष्टि रखती है। संयोगवश मेरा आगमन आचार्य क्षेम की जिज्ञासा हेतु शिक्षा मन्दिर में हुआ। लोलापा ने वहीं, विश्रामित कर आचार्य शिपि के वचन श्रवण की प्रार्थना की। इस प्रकार हमने भी कुमारियों के संग शिक्षा का ज्ञानलाभ प्राप्त किया।"

वे सभी परिचर्चा करते हुए आचार्य शिपिविष्ट की समाधि अवस्था से जागृति की प्रतीक्षा करने लगी।

---

1. कामदेव की कुटी
2. शुभमयी, पुण्यमयी
3. शुक्र (ग्रह)
4. पर्याप्तता (प्रभूति का अन्य अर्थ उत्पत्ति निवास भी है)
5. कामदेव का निवास स्थान (भग)

शिपिविष्ट प्रातः से अति प्रसन्न थे। महाराज्ञी और लोलापा ने उन्हें नीलशची नीरमही कूल स्थित रजरमित मठ जाने की अनुमति प्रदान करते हुए कहा था।

–"आचार्यप्रवर, सप्तशती-अनुष्ठान के लिए रजरमित मठ से श्रेष्ठ अन्य कोई स्थान नहीं है। इसके अतिरिक्त वहाँ पांशुलापा जैसी कपालिन भी विद्यमान है। आप नित्यार्चन के हेतु रूप वहाँ जा सकते हैं, पर जब भी मठ प्रस्थान करे तो यह राजमुद्रा अवश्य धारण करें। इस राजमुद्रा के माध्यम से प्रत्येक लावण्यवती एवं अन्य नागरों पर यह प्रकट रहेगा कि आप राज्याश्रयी हैं। अन्यथा ऐन्द्रिजालिकी वनिताएं आपको वशीकृत भोग सामग्री बना लेगी।"

शिपिविष्ट ने मुद्रा धारण कर ली। उनके मठ गमन हेतु रथ भी आ उपस्थित हुआ। सारथी के आसन पर नवीनवयी, हृदयतापकारिणा, धवल कौशेषी, सुकुमार बाहुल्य प्रांगी युवती आसीन थी। उसके मुक्त घनस्निग्ध कुन्तल वितान के आश्रय में बैठकर शिपिविष्ट का मन उल्लासित हो उठा।

लावण्यरूचिरा सारथी के संकेत पर रथ के अश्व चल पड़े। युवती कटाक्ष वीक्षा से शिपिविष्ट को देख स्मित हुई। वे अपने भाग्य को धन्य-धन्य कह उठे।

–"देवी तुम्हारी पुण्य संज्ञा क्या है?" शिपिविष्ट ने सुसंस्कृत स्वर में उसे संबोधित किया!

–"मैं कामिनी हूँ प्रभो।" उसके कपोलों पर नवनीत प्रकम्पित हुआ।

कामिनी के अंगराग से निःसृरित मोहक गन्ध से शिपिविष्ट स्वयं भी सुवासित हो चुके थे। घनमेचकी नितम्ब प्रसारणी कुन्तलराशि, पार्श्व में बैठे शिपिविष्ट तक वायु संयोग प्राप्त कर, उडते हुए आ रही थी। कामिनी के आवेध्यालंकार मणिखचित रत्न ताटंक की द्युति भी सौर किरणों से संयोगित हो शिपिविष्ट के श्यामलानन पर सौदामिनी का अनुलेपन पुनः पुनः होकर उन्हें दीप्ति कर देता था।

राजधानी का आपणक्षेत्र विस्तृत और व्यवस्थित था। राजपथ दोनों ओर वास्तुशिल्प के उत्तर प्रकार को धारण किए हर्म्य, अट्टालिका, भवन आदि थे। आपण की पण्यवीथिकाएं विविध सामग्रियों से सज्जित थी। आरम्भ में स्वर्ण व्यवसायिकों का एवं रत्नादि के वाणिक जनों (जनी) का हाट था, इसके पश्चात् वस्त्र इत्यादि फिर श्रृंगारिक वस्तुओं का आपण पश्चात धान्य-आदि का क्रय-विक्रय स्थल व्यवस्थित था।

नगर रथ्या पर एक अति विस्तृत निषद्या स्थली थी। उस विपणि क्षेत्र में विचित्र वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता था। वे विचित्र वस्तुएं थी, भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के यौन संतुष्टि प्राप्ति के साधन। इनमें कृत्रिम पुरूष-अंग, कामोद्दीपनी वस्तुएं, विविध औषधियां जो कामदर्प प्रशान्ति के हित में उपयोगित थी। अनेक केन्द्रों पर पूर्ण पुरूषाकार के पुत्तले सज्जित थे। उन पुत्तलों का निर्माण काष्ठ, कार्पास, क्षौम, सिक्थक, मृदु भूरज इत्यादि पदार्थों के संयोग से होता था। पुत्तलों में विशिष्ट कल इत्यादि लगा कर कामार्त नायिकाएं अपनी सुरत वेदना से मुक्त होने का प्रयास करती थी।

सुरतार्थनी नायिकाओं के निम्नोन्नत प्रदेश की सुरम्यता में विचरित कामदेव की मारतुष्टि के विचित्र-भूरि साधन यंत्रों का प्रदर्शन विक्रय केन्द्रों के वाह्य भाग में सज्जित देख शिपिविष्ट को आश्चर्य हुआ। उन्होंने सारथी से प्रश्न किया। "कामिनी इन विक्रय केन्द्रों पर सज्जित नरांगाकृति से साम्यवर्ती ये लम्ब वस्तुएं क्या हैं?" कामिनी के शोणाधरों पर स्मित ने विलास्य किया, उस मनोहर कुचमण्डिता ने ग्रीवा को ईषत वक्र कर शिपिविष्ट को उल्लसित चक्षुओं से देखा। उसकी इस वक्रावर्तना कारण उसकी कटिवलयवेष्ठित मेखला की सिताभा में शिपिविष्ट स्नान करने लगे। कामिनी कह रही थी–"महापुरूष ये नृरांगाकृतियां मात्र वस्तुएं नहीं, कामोन्मत्ताभिसारिकाओं के मदन मन्दिर के चिर-हर्षित ध्वज हैं। हमारी विज्ञानवेत्ताएं और गवेषक ऋषि पद से सुशोभित दिव्य विज्ञानवनिताएं इन शिश्नांगों के माध्यम से अब गर्भ धारण की गवेषणा भी सिद्ध कर रही हैं।"

–"आश्चर्य, ...आश्चर्य है देवि! यहाँ पुरूषों का भीषण दुर्भिक्ष और हमारे जगत में नायिकाओं का अभाव?" शिपिविष्ट कुछ मन्द स्वर में बोले।

"यहां की वर्णिकवनिताएं पुरुषों का क्रय-विक्रय भी उच्च मूल्यों पर सम्पन्न करती हैं। विश्व के अनेक भागों से आहरित एवं वशीकृत पुरूषों की व्यक्तिगत काराएं यहां हैं। उन काराकेन्द्रों से अभिजात्य अभिसारिकाएं पुरूषों का मूल्य प्रदान कर उन्हें अपने हर्म्य की शोभा बनाती हैं। यहाँ पुरूषों का जीवन अधिक नहीं होता। नित्यभोग और निरन्तर मैथुन के कारण पुरूष शीघ्र ही वृद्धावस्था की अशक्तता को प्राप्त होकर मृत्यु वरण को विवश हैं।" कामिनी ने शिपिविष्ट को नवीन सूचना दी।

–"यह अन्याय है पुरूष के प्रति।" शिपिविष्ट मात्र इतना कह सके।

रजरमित मठ के द्वार पर शिपिविष्ट को आश्रम सेविका मिल गई। वह उन्हें ससम्मान मठ के अन्त:भाग की ओर ले गई। रथ सहित कामिनी लौट चुकी थी।

मदयन्तिका स्वर्णतारा के भासुर विग्रह के सम्मुख नेत्र बन्द किए-पद्मासनस्थ बैठी थी। आगुल्फाच्छादित पारदर्शी रक्तांशुकावगुण्ठन के मध्य, स्तनावरित नील कन्चुक की नीलाभा में दर्शित मदयन्तिका की कनकश्लाका विनिर्मित देहयष्टि की शुक्र प्रमाच्छवि का दर्शन कर शिपिविष्ट का मन आनन्द रंजन से हर्षित हो उठा। जैसे विद्रुम मणि में निवासित नीलमणी शुभ्र हीरक मणि के विस्तार में विजडित हो गई थी। मदयन्तिका के उज्ज्वल ललाट पट्ट के मध्य में आकपिल गोरोचन रचित तिलक जैसे प्रत्यक्षत: तृतीय नेत्र का सुखानुभान करा रहा था। मदयन्तिका की यौवनलास्यित मृदुल देहयष्टि से भावमयी उर्मिलाएं का उद्रेक होते देख शिपिविष्ट के मनस में उसके प्रति सम्मान-भावोदय हुआ।

विधाता की अतिमनोहर कृति अचिरोपरूढ़ यौवना मदयन्तिका क्यों किस प्रयोजन सिद्धि हितार्थ इस भावसाधन को निष्पन्न कर रही है? सम्भवत: मेरे उत्तम पौरूष की प्राप्ति कामना सिद्धि के लिए ही मदयन्तिका के हृत्पदम में भक्ति सघन संचार हुआ है। शिपिविष्ट ऐसा अनुमान कर गर्वित हो उठे।

भाव साधन की सुकुमारचर्या सम्पन्न कर मदयन्तिका ने अपने पद्म प्रफुल्लित नेत्र खोले। मुकुलिताञ्जलीपुटवनिता ने ईष्ट विग्रह को प्रणाम कर उठने का आयास किया। जैसे उसकी क्षीण कटि यौवन भार से भरित समुन्नत कुचकुम्भ मण्डल के भार से आक्रान्त हो गई हो उसके लाक्षारचित उस संभार को सहन करते हुए कम्पित हो गए हों।

—"देवी मदयन्तिके, तुम्हारा शुभ हो, भगवती तुम्हारी भावाविष्टता को स्वीकार कर यथेष्ट वर प्रदान करें, तुम्हें सिद्धि लाभ का सुफलत्व प्राप्त हो।" मदयन्तिका के द्वार घूर्मित होते ही शिपिविष्ट ने समीप ही रखे जलपूरित स्वर्ण कलश से जलग्रहण कर मदयन्तिका की मृदुल अंगयष्टि पर जलाभिसिंचन करते हुए आशीर्वचनों का उच्चारण किया।

—"अरे महाभाग शिपिविष्ट! आप!! आपका सुआगमन कब हुआ?" अकस्मात् शिपिविष्ट को सम्मुख पा मदयन्तिका सुखदाश्चर्य से ओत-प्रोत हो गई।

—"आप भावाभ्यचर्या में थी देवी, सो अपनी उपस्थिति दर्शा कर विघ्नोत्पन्न नहीं किया।" स्वयं महाराज्ञी ने ही आपके सामीप्य लाभ के हेतु मुझे

उपस्थित होने का आदेश प्रदान किया। मुझे तो सत्य ही प्रतीत होता है मदे, उनकी धिषणा में साक्षात सुराचार्य वृहस्पित आवासित है। इसी कारण उन्होंने हमारे स्नेह का परिचय पा मुझे आपके समीप प्रेषित किया है।"

"आपका आगमन मेरी प्रहर्षणा का उत्स है आचार्य। राजप्रासाद में प्रेमानुक्त हृदयी परिहास कला कुशला और विलासित वेश से युक्त रति केलिकलाप निपुण्या, मदन हुताशन में विदग्ध रमणी के केलिमुख का केन्द्र बने अथवा नहीं?" अतिस्मित से मदयन्तिका के चारु अधर उल्लसित हुए।

–"नहीं देवी! राजप्रासाद में कहीं विलासिता नहीं। वहाँ की परिचारिकाएं सेविकाएं सौन्दर्य के मधु–मनोहरारण्य में नितान्त निर्मलाक्षत यौवन ही प्रतीत होती हैं।" शिपिविष्ट के उत्तर में 'न'कार का संकेत था जिसे श्रवण कर मदयन्तिका की मधुरिमा व्यंग्य से हँस उठी।

–"तब आओ भाग्यपुरूष, मैं तुम्हें नीरहीनकलश मण्डल की अभिरम्य सुषमा का भूरि दर्शन कराऊं।" मदयन्तिका ने अपना इत्याशय संकेत से प्रकट किया, पर शिपिविष्ट उसके विशिष्ट स्मर संकेत को ग्राह्य न कर बोले–

–"देवी, नीरहीन कलश मण्डल से मुझे क्या प्रयोजन?"

–"मदनकृत अंगराग से लेपित सीमांन्तिनी के रसपूरित यौवनकलशों की कामनाग्नि में ऐसा कौन सा पुरूष है, जो दग्ध न हो विप्रवर। मेरा संकेत इसी लक्ष्य पर केन्द्रित था।

शिपिविष्ट लज्जित हो गए। उनके लज्जारूढ़ भाव का चर्म–आनन्द लेती मदयन्तिका ने प्रस्ताव पारित किया–"देव चन्द्र वेदिका में महाहुति के लिए अब प्रतीक्षा क्यों? आओ मेरी यज्ञधरा में यह शुभ्रानुष्ठान निष्पन्न कर कामसिद्ध करें।" इस वार शिपिविष्ट उसके अश्लील भाव को जान गए।

–"देवी हम मनुपुत्र है–रात्रि में यज्ञ, दिन में रति और त्रिसन्ध्याओं में वासनात्मक संवेगों से परांगमुखी रहते हैं। शय्यासुख केलिकलाप के हेतु रात्रि काल ही हमें अभीष्ट है।" शिपिविष्ट के मन पर सनातनी संस्कार आच्छादित हुए! मदयन्तिका शिपिविष्ट की सरलता पर अतिमन्द्र स्वर से हँस पडी और बलातकर्षण करती शिपिविष्ट को एक कक्ष में ले गई।

निशीथ काल की पूर्व घटी में नेत्रश्रुति हर्ष प्रदायिनी और विभासमयी दीप्ति

की भाच्छटा कामरूपा कामाक्षी अपने नित्याराधन के हेतु आसनासीन हुई। देह पुरम् में अदृश्य, निराकार मन अपने गुरोपदेशित मंत्र विधान की जपश्चर्या में सन्नद्य हुआ। कामाक्षी के विलसपुण्डरीक नयन बन्द हुए, मुखाभ्यन्तर में ज्योकधवलित दाडिम बीज समतुल्य दन्तपंक्तिया एक-द्वितीय के आरोहनाम्लबन से प्रयुक्त हो पृथक हो गई। रसना का अग्र भाग मुड़ कर कण्ठघंटिका का स्पर्श करने लगा और आभ्यान्तर चक्षु कपाल कुहर की दिशा में कर्षित हो कूठस्थ चेतना के बिन्दु साम्राज्य में रमनोद्यत हो गए।

गम्भीर नाभिक्षेत्र से आकाश बीज का वज्रनिर्घोषी महानाद ऊर्ध्वोत्तर यात्रा के नैष्पन्नक्रम में कण्ठदेश की दिशा में अग्रसर हुआ। कामाक्षी की मधुरिमा आत्मलास्य करने लगी, मृदुल, मनोह्रण भावित देहयष्टि वु मधुकोशों से आनन्द के सरित निर्झर झरने लगे, लोमकूपों में चिति की उष्मित उर्मिलाएं अभिसारानुष्ठान करने लगी।

नाभि से कण्ठ तक भाषित बीज की यात्रा में दीर्घ समय व्यतीत हो जाता, इस मध्य प्राण हृत्कर्णिका में अपनी नीलद्युति की सुषमा से कामाक्षी को परानन्दित करता और वायु की निःशून्यता कूठस्थ चक्र पर महाघात करती। इस महाघात से समुत्पन्न नादपाश में मन रमता और जीव स्वसत्ता के साक्षात्क्षण का अभिदर्शन कर कृतकृत्य हो जाता।

बीज की गलित अवस्था का प्रारम्भ पूर्वकाल में ही जपश्चर्या के कारण हो चुका था, अतः मंत्र का अधिष्ठात्र देव रूप की भासित ललामारक्तच्छवि कामाक्षी के अवरुद्ध पलक नयनोत्पलों के द्यु क्षेत्र में साकारवान होने लगी। व्योम सा निस्सीम देह कलेवर, महाशौण से लिप्त विराट अंग प्रसार और महापौरूष का सकल उत्स धारी यह ऋभु कौन है? यह इतना विराट-विशाल है कि इसके समग्र तन तक दृष्टि निक्षेपन ही संभाव्य नही। कैसे इस अरुणालोकी सुपर्वन छवि का हार्द्रस्फीत दर्शन हो? कैसे किस विधि ऐसे वैराट को नेत्र संकिलत करने का आयास हो? कामाक्षी की चिति में क्षण व्याकुल्य आया।

—"त्रिदश, प्रभो! अपने वैराट अंग प्रसारित कलेवर को मेरे नयन दृश्य करो। ऐसी लघु दीप्ति को धारण करो त्रिभु जिसे मैं अपने नेत्र क्षेत्र में चिरामय रूप से स्थापित कर सकूं।" कामाक्षी की श्रेयस धिषणा संयताञ्जली से मुखर हुई।

अकस्मात् जैसे प्रचण्ड मार्तण्य से महोष्मा का अतिचार हुआ हो, जैसे निखिल ब्रह्माण्य की वैश्वानरी वन्हि से विनिर्मित पावक पिण्ड दह-दह कर

दहित हुआ हो अथवा बृहदभानु का सामग्रय्य ज्वलन ही विस्फारित हुआ हो। भूरि उत्ताप और अति दाह से कामाक्षी के कल्मषों का दाहसंस्कार होने लगा। उस सादृश्या अनेक शव चित्या क्षेत्र में ज्वलित सप्तार्चिसी चिताओं में धूं धूं करते जलने लगे। कुछ काल तक यह दहन निर्विघ्न चलता रहा। शेष रहा कामाक्षी का तपनीय, अष्टापद अंगयष्ट। एक निर्जर गुणी देह जो कर्बुद कंकटक में पूर्ण सुरक्षित था।

महाकार के विराटमुख गह्वर से अग्नि बीज का घोरनाद नदित हुआ। राँ.. ......राँ.........राँ..........राँ...........के घोरातिघोर निर्घोष से धरा नभ प्रकम्पित हो उठे। इसी अनुगूंज के मध्य राजिमाभा के धार्यरूप की विपुलता शनैः शनैः मानवाकार में परिणित होती गई। कुछ क्षणों में ही बालादित्य की दिव्यारक्ताभा से मण्डित एक महामोहन स्वरूप कामाक्षी के सम्मुख प्रकट हुआ।

–"कामदेवी की स्वच्छप्रभा, जगमोहिनी रूपच्छटा की भूमा कुमारि कुल की शिरोष्णीशा कामाक्षी, तेरी तपश्चर्या, जपश्चर्या और दिनचर्य्या से मैं प्रसन्न हुआ। वर मांग कुमारी, अपनी वांक्षा को व्यक्त कर मैं आकांक्षा को मूर्त रूप देने उपस्थित हूँ।" आलोक निर्झरित्र पुरूष के कण्ठ से प्रसन्न वर गिरा का निःस्वन हुआ।

–"आप कौन है पुरूषवर्य? क्या मेरे मंत्र का ही प्रतिश्रम आपके स्वरूप में साकारित है–देवता। अथवा आप किसी अन्य लोक से आगमित हो मुझ पर अपनी कृपावर्षणा कर रहे हैं?" कामाक्षी ने आगत अमर की चरणाभ्यचर्ना करते हुए मुग्ध पर विनत वाणी से निवेदन अर्पित किया।

–"मैं ही मंत्र हूँ कुमारी और मैं ही उसका प्रतिरूप। वर मांग।"

कामाक्षी का पुलकाश्चर्य निःसीम हो गया। वह पुनः विनयावनत हो मुखर हुई।

–"पर मैनें तो भगवान वज्रांग देव की दिनश्चर्या निष्पन्न करने का आयास किया था, प्रभो वे तो कपीन्द्र रूप है, दीर्घ पुञ्छ है, विकट लोमश है, हरिमुखश्री से भासित हैं। और आप......आप तो नृश्रृष्ठवर्य भाषित हैं। क्या लोक में वह कपिरूप भ्रम है?"

–"नहीं कुमारी, मेरा कपिरूप लोकभ्रम नही सत्यसंध है, सनानत है। पर मेरा यही रूप तेरी अन्तस् चेतना में आडोलित है। जिस बीज का जपश्चर्य तूने

किया। उसमें मेरा यही कामरूपम् स्वरूप सन्निहत है।"

—"आप पुरुशेष पौरूष का पराकाष्ट स्वरूप हैं। मैं रति के भेद और उसकी कामकेलि लीलाओं को प्रत्यक्ष अक्षि से अनुभूत कर अपर्णा का अनवद्य-अकल रूप हो जाने की आकांक्षा रखती हूँ। आप मेरी इस वांछा को पूर्ण-पूर्त करें।" वाग्विदग्धा कामाक्षी के अन्तरमनस् में निवासित आकांक्षा जागृत हुई।

—"मैं तेरा पूरक पुरूष नही हूँ कुमारी मेरा कृत्स्न ब्रह्मचारी स्वरूप लोक में मान्य है और इसी स्वरूप का आलम्बन प्राप्त कर योगी यति और राष्ट्र रक्षक स्वयं में मेरा संधान कर लक्ष्य सिद्ध करते हैं। मेरा वीर्यत्व लोकहित, जनहित के लिए संरक्षित है कुमारी, उस पौरूष पर किसी अन्य का कोई अधिकार नहीं। पर तू निश्चिंत रह, मैं तेरे पूरक पुरूष का संधान कर शीघ्र ही इस कामरूप में उपस्थित करूंगा पर इसके लिए तुझे प्रतीक्षा सहनी होगी-अपने-आपको पौरूषोत्तम के अनुकूल बनाना होगा।"

—"मैं कृतार्थ हुई प्रभो। एक वरेच्छा और पूर्ण करें। मैं जब भी प्रभु का आह्वान करूं, दर्शन दें और समयानुसार सर्वविध निर्देश प्रदान करते रहें। आप यहीं इसी नगर में प्रतिष्ठित रहें।"

—"मेरे स्वामी भगवन् श्रीराम की अहैकौतुकी कृपा के कारण मैं सर्वव्यापी हूँ कुमारी। जब भी स्मरण करोगी मैं अवश्य उपस्थित हो जाऊंगा।"

—"मेरा प्रारब्ध धन्य हुआ प्रभो, आज मेरे प्राक्तन पुण्य भी आपका स्फीत दर्शन कर धन्य धन्य है प्रभो। कृपा बनाएं रखें।

शौणालोक की महाद्युति वायु में विलय हो गई। कामाक्षी का मनस् मयूर लास्य करने लगा। इस हर्षकाल में उसे अपने पिता का स्मरण आया। उनके उपदेश और इच्छा की अनुपस्थिति में वह इस उपलब्धि को कैसे प्राप्त होती?

हिमाच्छादित कैलाश की शुभ्र-शुच्य तुषार मण्डित उपत्यका की सुख श्रान्ति प्रदायिनी कन्दरा को गोरक्ष के योगाभ्यास के हेतु प्रभु मत्स्येन्द्र ने चयन किया। इसी गुहा के शीर्ष उच्चत्तर हिमगिरि श्रृंगाधिपत्का में योगियों को भी अगम्य, एक विलक्षण योगाश्रम स्थित है। इस आश्रम में साधक, योगी, शक्ति स्वरूपिणी साधिकाएं महामुद्रा की तद्रूपिणी वज्रसाधिकाओं का बहुल-आवास था। इस आश्रम के सिद्ध गणों पर काल निष्प्रभावी है और वे साधक-साधिकाएं सदैव युवावस्था को प्राप्त रहते हैं।

अपने पूज्यपाद गुरु कृपा का आलम्बन प्राप्त कर गोरक्ष ने इस चर्मचक्षुओं से परे योगाश्रम का पुण्य दर्शन किया। उन्होंने इसी आश्रम में निवास कर योग साधन के हेतु गुरु से आज्ञानुमति का आवेदन भी किया पर श्री गुरु ने उनके निवेदन को सस्मित अस्वीकृत कर गोरक्ष से कहा-

-"पुत्र, नवीन मान्यताएं, सिद्धांत और हठयोग के दर्शन में प्रयोगात्मक रूप आचार्य से आद्य पद पर मैं तुम्हारी प्रतिष्ठा का आकांक्षी हूँ। वह आकांक्षा इस निरभ्र व्योम की भांति स्वच्छ प्रशान्त हिमधरा के इस भूखण्ड में ही पूर्ण की जा सकेगी। इसी गुहा में योगेश्वर शिव भी समाधि लाभ का परमसुख प्राप्त कर आनन्दित हुए हैं और पूर्वकाल में श्री ऋषिवर पितामह अपने कमण्डिल में निवासित सुरसरि सहित तप कर चुके हैं। वत्स गोरक्ष यह गुहा अतिसिद्ध और वर प्राप्त है। इसमें आसनासीन साधक कालायामों से परे होकर लक्ष्य साधता है। उसे पिपासा और भुक्षा कष्ट नहीं देती, पिण्ड की आवश्यक वासनाएं भी निष्प्रभावस्था को प्राप्त कर साधक की सहयोगिन, सहचरियों का रूप धर प्रत्यक्ष सेवार्पण करती है।" पूज्यपाद ने गोरक्ष से गुहा विषयक अन्य विशेषताओं का भी वर्णन किया।

-"महागुरो, इस सर्वथानूतन पंथ में मेरा सर्वांगीण अभ्युत्थान कैसे निष्पन्न होगा। यह मार्ग तो महाविभीषण प्रतीत होता है। मैं वज्रसाधक वज्रयोनि से किस भांति परांगमुख होकर उसका खण्डन करूंगा।" गोरक्ष ने अपना सन्देह व्यक्त किया।

-"तू माध्यम मात्र है वत्स, कर्ता का भान न कर। कर्ता तो मैं हूँ-मेरी चेतना की ऊर्जा शक्ति है। इसी पथ में तेरा और निखिल विश्व का शर्म्मण निहित हैं। अतः मेरी आज्ञा को सहर्ष स्वीकार कर साधन प्रवृत्त हो।"

गोरक्ष के मन पर आच्छादित कुशंकाओं के नीलमेघ अवक्षरित हो गए। गोरख के चित्ताकाश में एक नवीनादित्य का उदय हुआ। वे मन-प्राण, वचन और कर्म से इस नव नवात्म पथ पर अग्रसर होने सन्नद्ध हो गए।

शुभ मुहूर्त में पूज्यपाद श्री मत्स्येन्द्र ने हठयोग का उपदेश आदान कर गोरक्ष से कहा। वत्स गोरक्ष, चतुर्भेदों[1]* से युक्त मानवदेह पिण्ड योग ज्ञान प्रत्यभिज्ञा के बिना अपूर्ण है। समस्त पिण्डस्थ भेदों के गोप्यत्तम रहस्य योग के षडांगों से अनावृत हो जाते हैं। योग के छः अंग है-

"आसनं प्राण संरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं समाधिरेतानि योगांगानि वदन्ति षट्।।"[2]

षट्-अंगो में सर्वाद्य-आसन का क्रम है[3]। ब्रह्माण्य में जितनी योनियां उत्पन्न होती है, उतनी ही संख्येक-आसन प्रशस्त हैं पर आदियोगी शिव ने चतुर्शीतलक्षासनों को न्यून कर चौरासी आसन का ही उपदेश किया है। [4]इन समस्त आसनों का प्रत्यभिज्ञान, प्रत्यभिज्ञा वृत्ति के तेरे चितिथल में उदय होने पर स्वतः ही सिद्ध हो जावेगा और प्रत्यगात्मन पथचरण में साफल्य सिद्ध होगा। [5]एक स्तम्भ, नवद्वार और पञ्चाधिदेवों के आवास भवन इस देह पिण्ड के यर्थात बोधाभाव में समस्त क्रियाएं साधनाएं निष्फल है वत्स। आसन-निष्पन्नावस्था में प्राणयाम के माध्यम और चिति प्रत्यभिज्ञा से इस समग्रता का अभिज्ञान होता है। प्राणायाम श्वास-प्रश्वास की गति का विच्छेद करने वाली क्रिया है। कहा गया है-

"प्राणस्वेदं वशे सर्वं त्रिदिव्रेयत्प्रतिष्ठतम् मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि.........।" प्राण की महिमा अपार है वत्स। ऐसे ही प्राण को नियंत्रित करना प्राणायाम है। महासृष्टा ने आदि में आत्मा से प्राण का अविर्भाव किया, प्राण से श्रद्धा का प्रजन हुआ फिर पंच महाभूत, दस इन्द्रियां, मन, वीर्य, अन्न इत्यादि का प्रसवन हुआ। प्राण सर्वोपरि, सर्वगोप्यरक्ष और जरा मरण से मुक्त है। प्राण से सर्वभूत जीवित हैं और वायु उसका सहचर। प्राण का स्थान अन्तःकरण में हैं। पर वह चतुर्शकलों[6] मे विभक्त है। प्रधान प्राण साधन से ही शेष[7] प्राण स्वकर्मो से विरत नहीं होते। प्राण की आयामी महत्ता पर मनु कहते है-

"दहन्ते ध्यायमानानां धातुनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दहन्ते दोषाः प्राणस्य संक्षयात।।"

(जिस प्रकार धातुओं को अग्नि में तपाने से उनका मल (मैल-आदि) समाप्त हो जाते है उसी प्रकार प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष दग्ध हो जाते हैं।)

महायोगीराज श्री मत्स्येन्द्र ने कृपावर्षणी दृष्टि से गोरक्ष के दीप्ततनु विस्तार को देखा फिर पुनः ज्ञान-गम्य गूढ़ गिरा से बोले–"प्राणायाम के समकक्ष अन्य कोई तप नही है–"**तपो न परं प्राणायामात्ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्येति**" किसी देश विशेष (लक्ष्य) में स्थिर करना धारणा है। इस चित्त स्थिरानुष्ठान के पूर्व में प्रत्याहार भी प्राणायाम[8] की स्थिरता से ही सिद्धि को प्राप्त होता है। प्रत्याहार की सिद्धि इन्द्रियों के आलस्य (तमस) और वहिर्मुखता (रजस) से शून्य कर इन्हें सात्विक रूप में चित्तोन्मुखी कर दिव्य बनाती है। प्रत्याहार की प्रशंसा का सोमगान पुराणादिक[9] वृतो में भी है!

"चित्त के मूढ, क्षिप्त (तमस्, रजस) धारणा से ही (चित्त से) पृथक होते हैं पर धारणा ही चित्त को सात्विक रूप में वृत्तिमात्र से एक लक्ष्य में स्तभित कर दिव्य बनाती है। वत्स गोरक्ष तू पंच[10] धारणा को सिद्ध कर। तू अपने चित्त को वायु से संगिमत कर सुषम्ना में प्रवेश कर। ऐसी निष्पन्नता से तू पंचभूत धारणा का सिद्ध धारक होगा।" इसके पश्चात् महागुरो मत्स्येन्द्र ने गोरख को ध्यान विषयक उपदेश से लाभान्वित किया!

"स्मृतसेव सर्वचिन्तायां धातुरेकः प्रपद्यते।
यच्चित्तै निर्मला चिन्ता तद्धिध्यान प्रचक्षते।।"

('स्मृ' धातु सर्व चिन्तनमयी है। अपने चित्त में (आत्मतत्व) निर्मला चिन्ता ध्यान है।)

चर्या भेद से ध्यान के दो प्रकार है। प्रथम सगुण द्वितीय निर्गुण। योगतत्वोपनिषत् में एतदध्यान विषयक कहा है–

"सगुणध्यानमेत् स्यादणिमादिगुण प्रदम्।
निर्गुणध्यानयुक्तस्य समाधिश्च ततो भवेत्।।"

(सगुण ध्यान से अणमादि सिद्धियों की, निर्गुण ध्यान से समाधि की प्राप्ति होती है)

वत्स गोरक्ष तू निर्गुण ध्यान का अजस्त्रवाभ्यास कर क्योंकि योगी यति को निर्गुण ही ध्येय है। निर्गुण ध्यान से ही कैवल्य संभाव्य है। मत्स्येन्द्र के अर्द्ध स्फुटित नेत्रों में महाकाश-उदय हुआ, कुछ क्षणों तक प्रशान्त सागर की भांति

वे शान्त हुए। सम्भवतः ध्यान प्रत्यभिज्ञा से उनकी चिति शक्ति ने निर्गुण को ग्राह्य कर लिया था। परन्तु वे शीघ्र ही पुनः वचनित हुए-

"अश्वमेघसहस्राणि राजपेयशतानि च।
एकस्य ध्यानयोगस्य तुला नार्हन्तिषोड्शीम्।।"

योगी परम् ब्रह्म रूप एवं परमानन्दमय होता है। योगी ही मात्र ज्ञानस्वरूप परम् आत्मा है। योगी ही नित्य है, मुक्त है, सत्य है, सनातन और सर्वव्यापी तन्त्र है।[10] योग के प्रत्यक्ष भाव्य रूप गोरक्ष तू एकादश रुद्रेन्द्रियों सहित समाधि का वाक् उपदेश ग्राह्य कर तदानुसाराचर्य सम्पन्न करना।" श्री मत्स्येन्द्र ने अपने हृत्पदम् में आलोकित समाधि तत्व का साररूप ज्ञान गोरक्ष को प्रदान करते हुए पुण्योच्चारण किया।

[1*]"यत्समाधौ परं ज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम्।
तस्मिन् दृष्टे क्रिया कर्म यातायातं न विद्यते।।"[11]

(जो समाधि द्वारा अनंत, विश्वतोमुखी परमज्योति का दर्शन कर लेता है वह (किसी) क्रिया में रत लिप्त नहीं होता, आवागमन से मुक्त हो जाता है।)

योगाभिन्नानेकाचार्य गणों ने, शास्त्रोपनिषदों ने समाधि के स्वरूप का स्वदृश्यानुभूतियों एवं प्रत्यक्षीकरण से आत्मसाक्त कर वर्णन किया है। अन्नपूर्णपनिषत् का ज्ञानगम्य कथन है-

"समाधिः सविंदुत्पत्तिः परंजीवैकतां प्रति।
नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः।।"

(परं (ब्रह्म) और जीवात्मा के ऐक्य के हेतु विन्दु-उत्पन्न (ज्ञान) समाधि है! परमात्मा नित्य सर्वव्यापी कूटस्थ और दोष रहित है)

वत्स, जीवात्मा और परमात्मा की एकता का अमृतानुभव करने से त्रिपुटीरहित[12] परमानन्दस्वरूप और विशुद्ध चैतन्यमयी अवस्था ही समाधि है। समाधि में स्थिर प्रज्ञ योगी समस्त प्रपंचों से रहित आदि अन्त के समस्त रहस्यों को आत्मसात कर उनसे भी निरामय हो जाता है।

"अभेद्यः सर्वशस्त्राणामवध्यः सर्व देहिनाम्।
[3*]अग्राह्ययो मन्त्रयन्त्राणां योगी युक्तः समाधिना।।
वाध्यते न स कालेन लिप्यते न स कर्मणा।
साध्यये न च केनापि योगीः युक्तः समाधिना।।"[13]

(समाधि युक्त योगी को शस्त्र से नहीं भेदा (छेदा) जा सकता। समाधिस्थ पर कोई यंत्र-मंत्र भी निष्प्रभावी होता है। वह काल के द्वारा अवध्य है और न ही वह कर्मलिप्त है। समाधिलीन योगी किसी का वशवर्ती नहीं।)

मेरे प्रिय वत्स गोरक्ष ध्यान और समाधि में भेद होता है। यथा-

"शब्दादीनां च तन्मात्रं यावत्कर्णादिषु स्थितम्।
तावदेवं स्मृतं ध्यानं समाधिः स्यादतः परम्।।"[14]

(जब तक शब्दादि तन्मात्राओं की कर्णादि इन्द्रियों में किंचित भी उपस्थिति विद्यमान रहती है, तब तक साधक की अवस्था ध्यानावस्था है और जब पंचेन्द्रियों की वृत्तियां निःशेष भाव से-आत्मा में लयलीन हो जाती हैं तब (साधक की) समाधि अवस्था हो जाती है।)

गोरक्ष! बिना बिन्दु साधन के समाधि लोक क्षिति में साधक को स्थान नहीं मिलता। बिन्दु देह का मूल है उसकी प्रतिष्ठा पिण्ड में आपादमस्त हैं। बिन्दु मनस्[15]-उत्पन्न है। यह द्विभेदित है। प्रथम पाण्डुरवर्णी द्वितीय लोहितवर्णी। इसकी संज्ञा महारज है। तैल मिश्रित सिन्दूर की वर्णाभा की भांति इसकी अजस्रव उपस्थिति नाभिमण्डल के सौर स्थान पर विद्यमान है और षोडसाधार चक्र निहित-चन्द्र में पाण्डुशुक्र विद्यत हैं। बिन्दु-रज के ऐक्य से परम पद प्राप्ति सहज हैं। "बिन्दुः शिवो रजः शक्ति" शिव बिन्दु है और शक्ति रज। इनकी ऐक्यता अथवा समरसता परमेश्वरी की सुकृपा से ही संभव है! कहा है-

"येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम।
मुखेनाच्छाद्य तद्द्वार प्रसुप्ता परमेश्वरी।।"

-"जिस मार्ग से (साधक) निरामय ब्रह्म के स्थान पर जाता है उसी के मुख के द्वार पर परमेश्वरी प्रसुप्तावस्था है। शक्ति की इस प्रैसुप्तावस्था से जागृति के हेतु तू कामाख्या पीठ का साधन करना। मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्र के मध्य योनि स्थान ही कामरूप पीठ है और मूलाधार चक्रस्थ चतुर्दल पद्म के मध्य में त्रिकोणाकार योनि ही कामाख्या पीठ है। योगी सिद्धजन सदैव इसका स्तवन कर मृदु आघात से इसकी जागृति करते हैं। तू भी उसी कामाख्या का हार्द्र स्तवन कर।" भगवान मत्स्येन्द्र की पुनीत वाणी से जैसे क्षण्य-विराम आया, गोरक्ष के समीप से एक कल्याणमयी मधुर स्वर ध्वनना हुई।

-"प्रभो! योगिश्रेष्ठ भगवन्, आपका योगोपदेश श्रवण कर मैं आनन्द सिन्धु में डूबा जा रहा हूँ। आपके स्तवन, अभ्यर्चन के बिना ही मैं गोरक्ष के समीप

स्थिर रह कर उपदेश ग्राह्य करता रहा। मैं क्षमा याची हूँ।" गोरक्ष के समीप ही एक आलोकमय तेजपुंज पिण्ड का अविर्भाव हुआ। उसने संयतांजली से अपना परिचय दिया।

—"प्रभो मैं वज्रधर हूँ, यह हिमगह्वर सिद्ध विद्याधरों एवं देवों द्वारा संरक्षित है। सामान्य पंचभूतों के 'पुर' का आवासी इस गुह्यकन्दरा में प्राणहीन हो जाता है। आपके तप और सिद्धि का प्रखर आलोक इस गुहा में देखा तो आ गया। प्रभो अन्तःकरण स्थित जिस कामरूप पीठान्तर्गत देवी कामाख्या का आपने वर्णन किया उस दिव्य क्षेत्र के वाह्य रूप से मैं सम्पूर्ण सुपरिचित हूँ। पर उस पीठ में योगसाधन कौलाचार से ही सम्भव है। पर प्रभुवर कामरूप पीठ की अन्तः उपस्थिति की आख्या में प्रथमतः आपके ही श्री मुख से श्रवण कर रहा हूँ। यह सर्वदा नवीन योग पथ प्रतीत होता है।" वज्रधर ने विनम्र स्वर में उच्चारण किया।

—"महात्मन् वज्रधर, आपके द्वारा संकेतिक कामरूप पीठस्थ योनिपीठ नारी देश में ही है अथवा कहीं अन्यत्र?" मत्स्येन्द्र प्रभु के नेत्रोत्पलों में एक द्युति ने प्रसवन किया!

"आपका मान सत्य है। उस देश की अधिष्ठात्री रजस्रवन्ती कामाख्या ने ही महाराज्ञी के कुक्षि क्षेत्र में आश्रय पा नारी निर्ग के श्रेष्ठ सर्ग रूप में अवतार ग्राह्य किया है। वह कांचनी सुषमा से सज्जित, समृद्ध तेजोमयी तनुजा साक्षात् हरप्रिया पार्वती का ही प्रतिबिम्ब है। वही निजोत्संगी कन्या कामाक्षी प्रत्यक्ष योनि पीठ है।"

—"पर गोरक्ष अव्ध कुलाचारी नही वज्राचारी भी नहीं। उस वर्त्म के परांगमुख होकर ही गोरक्ष विश्वशान्ति एवं शर्म्मण्य के हेतु मेरी ही आज्ञा से यह इस जटिल किंवा हठयोग वर्तन में प्रवृत हुआ है।" श्री मत्स्येन्द्र ने विचारणा व्यक्त की।

अकस्मात् गोरक्ष के चित्त पटल पर सुरतनु विन्यासित कर्णपर्यन्त लोचनी, सिताभ्रदीप्ति से भासित, आदित्यकान्ति की संमूर्तना दैव्या का स्मृत चित्रण हुआ। इसा प्राप्रभूत स्वरूप का दिव्य दर्शन गोरक्ष सुरत-आश्रम के समीपस्थ श्मशान में कर चुके थे, उन्होंने उस कुसुमकान्ता का अभिसंस्त्व किया था और अम्बरूपिणी ने सद्यःफल प्रदान करते हुए अपने पाटभीस्तनाग्रवलय प्रस्रुत क्षीर से उनके मनस्, प्राण को दिव्य-ऊष्मा से भावसमाधि में स्थिर कर दिया था। स्मृति सघन होते ही गोरक्ष के मुख में पुनः स्तनस्रुत क्षीर का आस्वाद अनुभव हुआ।

स्वतः ही उनके मुख से वाक् निसृत हुआ सम्भवतः गोरक्ष के अन्तर्यामी ही हविनत्व हुए अथवा उनकी प्रज्ञा हो रसनसृति से प्रकटित हुई–"कामाक्षी! हाँ, वह कामाक्षी ही है, मेरी निश्छल माँ भद्राणी।"

वज्रधर चौंक उठे–"वपत्स गोरक्ष तुमने कब साक्षात् किया?"

–"नित्य श्मशान में दो दिव्य वनिताओं के पुण्यदर्शन हुए थे देव। उनमें महाराज्ञी तिलोत्तमा भी थी, उनके देह प्रसार से ही माँ कामाक्षी का प्रकटन हुआ था।" गोरख पुलकगात हो बोले।

–"तुम धन्य हो पुत्र।" वज्रधर ने स्नेहातिरेक से गोरक्ष को आलिंगत किया फिर–वज्रधर प्रभु मत्स्येन्द्र से विनयावनत हो बोले–"योग साधनार्थ गोरक्ष मेरे संरक्षकत्व रहेगें महायोगी। बारह वर्ष की तपःसाधना में इन्हें कोई योग विघ्न नहीं होगा। जो सिद्धियां मेरी अनुचारिणी हैं, वे स्वतः आयत्त होकर गोरक्ष की चेरि भाव से सेवारत होंगी।" वज्रधर पुनः गोरक्षोन्मुखी हुए–

–"तिलोत्तमा अत्युच्चसिद्धि प्राप्य साधिका है। कामाक्षी के महातेज को अन्य कुक्षि सह नहीं पाती इसी हेतु उसका देहधारण हुआ। कामाक्षी के प्रसूत हित ही मेरा संयोग तिलोत्तमा से हो सका। अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर मैं स्वस्थान पर आ गया, तिलोत्तमा भी कन्या की पूर्णमयी अवस्था के पश्चात् मेरे समीपस्थ होगी।"

–"पर मात् कामाक्षी तो सम्पूर्णा ही है देव।" गोरक्ष को सामर्थ्यवयी कामाक्षी का स्वरूप नृत्यगत हुआ।

–"लोक रीति से उसे और भी प्रवीण्यता प्राप्त करनी है पुत्र! अभी तो वह चतुर्दशवर्षीय कुमारी ही है।"

–"परन्तु मैनें तो माँ का प्रस्नवपयधरित्री[16] स्वरूप प्रत्यक्ष देखा है महात्मन्।" गोरक्ष ने प्रतिपाद किया।

–"तुम्हारी चेतना ने भविष्य में गमन कर तिलोत्तमा के माध्यम से उसका प्रस्नुतस्तनी[17] रूप दर्शन किया था पुत्र।"

गोरक्ष को महात्मा वज्रधर के आश्रय में सोंप महामत्स्येन्द्र ने वहाँ से गमन किया। गोरक्ष को बारह वर्ष हिमांकन में व्यतीत कर कठोर तप अपेक्षित था। अयोनिज गोरक्ष अपने गुरु की पुण्यस्पृहा पूर्ण करने को तत्पर थे!

1. चार भेदों में प्रथम भेद-छह चक्र हैं। 1. मूलाधार 2. स्वाधिष्ठान 3. मणिपूर 4. अनाहत 5. विशुद्ध 6. आज्ञाचक्र।
दूसरे भेदान्तर्गत-षोडस आधार हैं। वे हैं-1. पदांगुष्ट 2. मूलाधार 3. गुह्याधार 4. वज्रगर्भनाडी 5. उड्डीयानबन्धाधर 6. नाभि मण्डलाधार, 7. हृदयाधार, 8. कण्ठाधार, 9. कण्ठमूलाधार, 10. जिह्वामूलाधार, 11. जिह्वाअधोभागाधार, 12. ऊर्ध्वदन्ताधार, 13. नासिकाग्राधार, 14. नासिकामूलाधार, 15. भ्रूमध्याधार, 16. नेत्राधार।
तृतीय भेदान्तर्गत-1. वाह्य लक्ष्य, 2. आभ्यान्त तरगत लक्ष्य।
चतुर्थ भेद में पंच आकाश हैं-1. श्वेतवर्ण ज्योतिरूप आकाश, 2. रक्तवर्ण ज्योति रूप प्रकाश, 3. धूम्रवर्ण ज्योति रूप महाकाश, 4. नीलवर्ण ज्योतिरूप तत्वाकाश, 5. विद्युत्वर्ण ज्योतिरूप सूर्याकाश। इस प्रकार 6 चक्र, 16 आधार, 2 लक्ष्य और पञ्च आकाश, यह चार भेद हैं।
शारीरिकोपनिषत् में षट् चक्रों के अतिरिक्त प्रकृति के तेईस तत्व और माने गए हैं-1. मन, 2. वुद्धि, 3. अहंकार, 4. पंचभूत क्षिति, जल पावक, अनल, समीर, 5. श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, शव्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, गुदा, उपस्थ, कर (हस्त) पाद (पाव) वाणी। इस प्रकार 6 चक्र, 5 कर्मेन्द्रिया, 5 ज्ञानेन्द्रिया, 5 पंचभूत, 8 विकार ये 29 हुए।
2. 'योगतत्वोपनिषत' के अनुसार अष्टांग-योग योगियों में मान्य हैं, पर गोरक्षसंहिता मे आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इन छह अंगों का ही वर्णन मिलता है। पर अधिकांश योगाचार्य अष्टांग योग को अधिक मान्यता देते हैं। उपर्युक्त 6 अंगों के आद्य में दो अंग-1. यम, 2. नियम जोड दें तो अष्टांग योग के आठ अंग हो जाते हैं।
3. आसनानि च तावन्तो यावन्तो जीवजन्तवः। एतेषामखिलान् भेदान् विजानाति महेश्वरः।"
गोरक्षसंहिता
4. चतुरशीतिलक्षाणामेकैकं समुदाहृतम्। ततः शिवेन पीठानां षोडश्वेन शतं कृतम्।"
5. एक स्तम्भ मन, नवद्वार एक मुख, दो नेत्र, दो कर्ण, दो नासिका सुषिर एक उपस्थ और एक गुदा। पंचाधिदेवों में ब्रह्मा, विष्णु रुद्र, ईश्वर और सदाशिव है। ये पंचाधिदेव क्रमशः पंचभूत पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश के अधिदेव माने गए हैं।
6. मानस, बुद्धि, चित्त, अहंकार
7. प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय।
8. प्राणायाम, द्वारा प्राण की सहज गति को अवरुद्ध अथवा मन्द कर देहस्थ पिण्ड की अन्तसत्ता (प्राण) को स्थिर सात्विक, दिव्य बनाना प्राणायाम का प्रधान कर्म है। पूरक, रेचक, कुम्भक प्राणायाम के प्रकार हैं। प्राणायाम का एक विशिष्ट प्रकार या अंग वाह्य कुम्भक है।
9. शब्दादिष्वनुरक्तानि निगृह्याक्षणि योगवित। कुर्याच्चित्तानुकारीणि प्रत्याहार परायणः।।
वश्यता परभा तने जायते निष्कलात्मनाम। इन्द्रियाणामवश्यैस्तैर्न योगी योग साधनः।।
-विष्णुपुराण
10. भूमिरापोऽनलो वायुराकाशश्चेति पञ्चकः। येषु पञ्चसु देवानां धारणा पञ्चधोच्यते।।
योगतत्वोपनिषत्

11. परंब्रह्मस्वरूपोऽहं परमानन्दमस्म्यहम्। केवलं ज्ञानरूपोऽहं केवल परमोऽस्म्यहम्।।
केवलं शान्तरुपोऽहं केवलं चिन्मयोऽस्म्यहम्। केवलं नित्यरूपोऽहं केवलं शाश्वतोऽस्म्यहम्।।
"तेजोबिन्दुपनिषत्"

12. गोरक्षसंहिता
13. ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता
14. गोरक्षसंहिता
15. गोरक्षसंहिता
16. मनसोत्पद्यते विन्दुर्यथा क्षीर घृतात्मकम्। न च बन्धनमध्यस्थं तद्वैकारणामानसम्।
"योगकुण्डल्युपनिषत"
(बिन्दु मन से उत्पन्न होता है, जैसे क्षीर (दूध) से घृत की उत्पत्ति होती है। बिन्दु में बन्धन नहीं, उसका कारण (बन्धनक मन है।)
17. उमड़ कर बहते हुई दूध (की धार) को धारण करने वाली
18. वह स्त्री जिसके मात्र स्नेहाधिक्य कारण से स्तनों से दूध झरता हो, टपकता हो।

अनेहा[1] चक्र का चिरनिरन्तर आवर्तन[2] अथक चरण से गतिमान रहा। उसके अतिरभस[3] चरण चक्र को अतिमाय[4] मानव भी नियंत्रित नहीं कर सकता तो अतिमान मति से युक्त मानव का क्या दोष? कालरथारूढ़ संसार शकट में स्थित नारी राज्य की राजधानी में भी कालदेव ने अपना घूर्मण प्रभाव सतत रखा।

अनेकानेक परिवर्तन हुए। कामाक्षी कैशोर्य्यवय का परिलंघन कर पूर्ण तारुण्य के धरा धाम में अवस्थित हुई। उसी के साथ ही उसकी सवयस्याएं पताका, मेखला भी अदृश्य लोचन काल की निःश्रेणी से पूर्ण यौवन का स्पर्श करने लगी। चपललोचना पताका, कापालिनी पांशुलापा से दीक्षित हो उसकी शिष्यानुगता बन गई और मेखला कामाक्षी की सहायिका!

इस कालाभ्यन्तराल में कामाक्षी राजनीति, शस्त्र एवं शास्त्र नीति एवं धर्म-कामनीति में नैपुण्यता प्राप्त कर सम्पूर्णा संज्ञेय हो चुकी थी। उसे सामर्थ्यवती जान महाराज्ञी तिलोत्तमा ने उचित मुहूर्त में कामाक्षी का राज्याभिषेक कर अपने समस्त दायित्वों से मुक्त हो आत्मसाधन हित महात्मन् वज्रधर के समीप हिमांगन में प्रस्थान कर गई। उसकी प्रधान सखि लोलापा कामाक्षी की विशिष्ट परामर्शदात्री के रूप में अधिष्ठित हो उसी राज्य में साधनरत रही। उसने हर्म्य और राजप्रासाद का परित्यागन कर नगर सीमा के समीपस्थ उपारण्य[5] में पर्णकुटी की स्थापना कर उसी को अपने साधनालय के रूप में विकसित कर लिया। कभी पांशुलापा उसकी कुटीर में होती तो कभी लोलापा पांशुलापा के नीलशची कूल स्थित रजरमित मठ में उपस्थित हो जाती। चतुर्दशकाधिक वर्ण वयी लोलापा की यौवनाश्लेषित[6] देहयष्टि में कोई विकार या वर्तन नहीं आया था। हाँ, वह महाराज्ञी तिलोत्तमा के गमनोपरांत कुछ गम्भीरमना हो गई थी।

आचार्य शिपिविष्ट पराँम्बा की कृपानुकम्पा प्राप्त कर प्रसन्न थे। शिपिविष्ट ऐसे प्रथम पुरूष थे, जिन्हें नारी राज्य की सुरताकांक्षी[7] नायिकाओं ने सम्मान दिया था। सम्भवः उसका कारण महाराज्ञी कुमारी कामाक्षी के आदरपात्र होने के कारण ही वे सम्मानित थे। यद्यपि जरन्तावस्था[8] शिपिविष्ट का स्पर्श करने लगी थी, तथापि वे अपने नाम गुणानुरूप रहकर पूर्ण स्वस्थ्य थे। उन्होंने नारी राज्य मे काराबद्ध पुरूषों को कारामुक्त करने के लिए राजमहिषी से प्रस्ताव पारित कराया, जिसका यत्र कुत्र विरोध भी हुआ, पर अन्ततः जय शिपिविष्ट के विचारों की ही हुई। इसके अतिरिक्त जरन्तोत्पीडित[9] और अशक्त पुरूषों की राज्य-उपेक्षा में

न्यूनता भी शिपिविष्ट के प्रयासों से ही संभव हुई। अतः शिपिविष्ट काराबद्ध एवं अन्य पुरूषों की दृष्टि में अवतार पुरूष की भांति सुपूजक बन गए।

मदयन्तिका जलात्यय[10] ऋतु की मध्याह्न रेखा की भांति मनोहर योष-शोभा से अलंकृत हो चुकी थी। शिपिविष्ट के पूर्ण पौरूषत्व बल ने उसे मोहन पाश के गाढ़तर-आलिंगन में पूर्णतः बद्धित कर सेविकाचरण कृर्त को विवश कर दिया था! शिपिविष्ट यम-नियमों का पालन करते सप्तदिवस में एक रात्रि ही मदयन्तिका के जर्तु[11] देश में अपने पौरूष का लीला विस्तार करते, शेष समय वह भगभोग से परे भगवती के अभ्यर्चन में अपने चिति शक्ति का बलात्कर्षण प्रयास करते। यही कारण था कि शिपिविष्ट का दैहिक तेजस मन्दमीलित और गात्र शैथिल्य नहीं हुआ था। वास्तव में शिपिविष्ट के साफल्य मूल में अनंतवज्र था।

अनंतवज्र अपने अन्तःर्निहित गुरु आदेश और लोलापा के वज्राचाराकर्षण के कारण दो वार पुनर्रागमित हुआ था। दोनों ही वार मास-मास पर्यन्त लोलापाकुटी में आवास कर उसने शिपिविष्ट को कामकला निष्णातक के रूप में सिद्ध कर सम्पन्न कर दिया था। उसने मिथुनयाग, भगयाग की महत्ता भी शिपिविष्ट पर वचनरूप से प्रकट की थी, पर लोलापा ने मदयन्तिका पर इसे प्रयोग रूप में प्रकट करने में संकोच नहीं किया था।

64 कलाओं के कौशल्य से निष्पन्न अक्षतयोनि धरित्री कामाक्षी का सघन सम्पर्क अपने ईष्ट से था। अपने ईष्ट का कृपाबलम्ब प्राप्त कर कामाक्षी मल्ल युद्ध, गदा युद्ध एवं सैन्य शिक्षा मे प्रावीण्य प्राप्त कर चुकी थी। नित्य लास्याभ्यास के कारण उसके यौवन प्रसारित अंगों मे स्निग्ध पुष्टता का अभिराम्य चिरनिवासित हो गया था।

उसके राज्याभिशेषावसर पर ही अनंतवज्र का आगमन हुआ था। परिचर्चा के मध्य ही अनंतवज्र से महाकाल की पुण्य कीर्ति गाथा, विन्ध्याटवी के शक्तिपीठ का महत्त्व और अन्य सिद्ध पीठों का यशोगान श्रवण कर कामाक्षी ने संकल्प लिया कि यथावसर पर वह इन सुभद्रतीर्थ स्थलियों का दर्शन अवश्य करेगी।

उधर अनंगवज्र की संज्ञा से परिवर्तित गोरक्ष का योग प्रशिक्षण और सतताभ्यास निष्पन्न हो गया था। वह महायोगी अपने समस्त बल और महाप्रज्ञा सहित अपने गुरुवर्य की स्पृहापूर्ति का हेतुरूप धार्य्य कर कर्मक्षेत्र में उतर आए।

अब पढ़े कामाक्षी चषकम् का उत्तरार्द्ध...............।

दुर्गमारण्य के कान्तार प्रदेश को निर्विघ्न रूप से पार कर यात्री विश्रान्त तक पहुंचना सरल-सुगम नहीं था। सम्पूर्ण प्रदेश में चोर, तस्कर, दस्युओं का भयातंक था। अतः वाह्लीक का सार्थवाह शीघ्रता शीघ्र इस कान्तारी भूखण्ड को पार कर जाना चाहता था। इस सार्थवाह में लगभग अर्द्धशत सार्थवाही थे। सार्थवाह में रथ, अश्व तथा भारवाही चौपायों के साथ पदयात्री भी थे।

इसी रत्न वणिज सार्थवाह का अनुगमन करता एक तीर्थ सेविन यात्री दल भी था। इस दल में 27 युवा स्त्रियाँ और शेष पुरूष थे। पुरूषों का मुख्य कर्त्तव्य था, दल की पर्याप्त सुरक्षा। तीर्थाकांक्षिणी स्त्रियों ने भी कुछ स्त्रियाँ सैन्य परिवेश से सज्जित अश्वारूढ़ हो चल रही थी।

दल के मध्य में उत्तम सुदृढ़ रथ का कर्षण करते हुए पञ्चोत्तम चिन्हांकित, पञ्चोलूखलिक अश्वों की चपल सुषमा से सज्जित रथ में उत्तम रूप शोभा की उत्स, यौवन की स्निग्ध चन्द्रिकाएं और रतिदेवी को लज्जा रक्त करने वाली रूप स्वामिनियों रथा आरूढ थी। इस रथ के अग्रिम और पार्श्व में दो रथ और थे। इन रथों में कामिनियों के शातकारी स्वरूप की विरलच्छटाधारिणी कोमलांगी नायिकाएं आरूढ़ थी। इन त्रिरथों का चत्वाल संरक्षण करते पुरूषाश्वारोहियों के अतिरिक्त योषाश्वारोहिताएं भी संचलित थीं।

गृहपति सहस्त्रांशु निरन्तर प्राच्यी दिक् में संचरित होते हुए अस्ताचलाकर्षित हो, नत होते जा रहे थे। कुछ ही समय के पश्चात् अपनी आरक्त आननाभा सहित भगवान विभावसु अस्ताचल क्षेत्र में प्रविष्ट हो गए। अस्ताचल के ऊर्ध्व दिक् में व्योममण्डल पितृप्रसु-शोणाभा से रूचिर हो उठा जैसे यौवन रस से आप्त रति प्रवीण्याभिसारिका के विपरीत सुरतश्रम से, सीमान्त प्रसवेदित सिन्दूर सीकर समूह जाल से व्यतुपन्न धारा सम्पाती स्वेद द्रव से ऊर्ध्वमुखी नायक का विस्तीर्ण वक्षस्थल लोहितारुण हो गया हो। अथवा सन्ध्या सुन्दरी का चरणालक्तक मार्तण्य-ऊष्मा से उद्रेवित होकर नभोमण्डल पर विलेप्य हो गया है।

सार्थवाह के सदस्यों पर कुछ विकलता का विलेपन हुआ। सार्थविश्रान्ति गृह इस घोर कान्तार से अभी लगभग एक कोस दूरस्थ था। व्यवसायी सार्थवाह

के मुख पर भी चिन्ता का छादन नीरपूरित श्याम मेघमाला से समवर्ती था।

स्त्रियों के कारण सार्थवाह सत्वर गति से संचारित नहीं हो सका, फलतः पन्थागार का लक्ष्य भी समय पर प्राप्त नहीं हो सका। यह शून्यारण्य पूर्णतः असुरक्षित था। फाल्गुन कृष्ण द्वादशी का अन्धतमस सन्ध्या सुन्दरी के ललाम मुख पर अपना तमिस्राच्छादन–अवगुण्ठनावरित करने लगा।

सार्थवाह के उल्कुषियों ने कार्पासपिण्डोल्कुषी पर घृताप्त कर उन्हें आलोकित किया। अभी कुछ ही दूर यह पथिक दल चला था कि प्राच्यी दिशा में उल्काओं का आलोक और अश्वों के पदस्वर श्रवणगोचर हुए।

अनुभवी पथिकों के मुख पर पाण्डुराच्छन हो गया। रत्न सार्थन् अपने अमूल्य रत्नराशि को कम्पित हाथ और भीत हृदय से सम्हालने लगा। निश्चिय ही दस्यु दल है। कुछ ही समय में अश्वारोहियों का दल आ गया।

–"अल्लाह ऽ....ऽकबर......र्......र्।" के भीषण और कर्कश कण्ठों के उद्घोष से धरित्री कम्पित हो उठी!

–"ये यवन दस्यु है, अब जीवन संभव नहीं।" अनेक कण्ठों से आर्तस्वर निकले!

यवन दस्युओं ने प्रथम–आक्रमण मध्य रक्षित रथ के रक्षकों पर किया। कुछ क्षणों में ही वसुन्धरा की रज रक्त से लोहित हो गई। रक्षकों के मुण्ड विच्छिद–हो हो कर वसुधा अंक में उछलने लगे। दैत्याकारी, कठर, पाषाणी देह के दस्युओं के अप्रितम हस्तलाघव और क्रूर बली के सम्मुख सार्थवाही रक्षक निर्बल निःस्तेज सिद्ध हुए।

इसके पूर्व कि यवन दस्यु अधिपति अपने आरक्त नेत्र और भीषण हुंकार से घन गर्जन करता, अपने हाथों में स्थित नग्न खड्ग से रक्षकों के कलेवरों का शिरोच्छेदन करता मध्य रथ के समीप आता, रथ के मध्य भाग में बैठी सोमरोचिषा, कोमलांगी तन्वी बाला विद्युल्लता की भांति अपने स्फूर्ज नाद से गगनधरा को गुंजाती, स्फालन करती उल्का गति से रथ से कूदी।

उसके पद्मायत नेत्रों से अमर्षाग्नि के स्फुर्लिंग झर रहे थे। क्रोधातप से उसका शुभ्रचन्द्र मुख तप्त होकर तामस हो गया था। दस्यु नायक उसके कण्ठोद्धृत रणघोष के नाद से कम्पित हो उठा। उसने स्वयं को रणोद्दत किया।

अत्यधिक क्रोध से सिंहिका की भांति अभिगर्जन करती हुई परम सुन्दरी

के मृणाल हस्त में पञ्चासांगुल परिमाण का, दामिनी प्रभा से दीप्ति, वंग देश निर्मित तीक्ष्ण असियुक्त खड्ग था। जैसे वारिदमेघ मालाओं के श्यामल पट्ट पर ऐरावती का भ्राजक शकल स्फूर्च्छ हुआ अथवा बलाहट के नीलवक्ष पर मेघभूति ने वज्र निर्घोष किया हो। चपला चञ्चला के करस्थ खड्ग की सुतीक्ष्णासि उल्लालोक में स्फुर्ज् हुई और एक ही आघात मे सम्मुखी दस्यु का शीश कवन्ध से विच्छद हो धरणी पर आ गिरा। अपनी नायिका को संग्रामित देख अनेक यौवनाएं अपने-अपने हाथों मे आयुध लिए दस्यु दल का रक्त से तर्पण करने लगी। स्त्री दल की मुख्य नायिका का खड्ग तब तक यवनदस्यु के वक्ष में उतर चुका था। दस्युपति का रणपात होते ही शेष दस्यु पलायन करने लगे।

सार्थवाही पुरूष स्त्रियों का रण प्रावीण्य और हस्तलाघव का दर्शन कर चकित थे। सार्थवाह नायक ने भी अपने आश्रय में चल रहे यात्री दल में प्रथम बार तारूण्य की ललाभा कर दर्शन किया था। इसके पूर्व उसने विद्युत्मयी रूपवती युवती को निरिंगिणी बद्ध ही देखा था।

–"तुम पुरूष नही–पुत्तल हो, निवीर्य निःस्तेज पुरूष को धरित्री वास का अधिकार नहीं। ब्याल प्रिया के समान फुंकारती संहतस्तनी युवती ने सार्थवाह नायक की भर्त्सना करते हुए उस पर अपना खड्ग-आघात के लिए उन्नत किया।

–"क्षमा.........क्षमा देवि! हम व्यवसायी वणिक है, वीर पुरूषों की भांति परिमोषिकों से खड्ग द्वन्द से सक्षम नहीं।"

–"इसे क्षमा कर दें कुमारी।" समीप खड़ी प्रोढ़ा नायिका ने युवती का अमर्ष प्रशान्त करते हुए विनय की और सार्थवाह नायक का जीवन रक्षित हो गया।

यवनदस्युओं के शस्त्रों से आहत पीडितों का समुचित उपचार भी स्त्री–दल की वैद्यकर्म निष्णाता स्त्री ने किया। लगभग दस रक्षक खड्गाघात के आखेट हुए। तीन रक्षकों ने स्वर्गारोहण किया–प्रतिकार में लगभग बीस दस्युओं के इहलीला समाप्त हुई। सभी मृतकों का अंत्येष्टि संस्कार देश धर्मानुसार उसी स्थान पर सम्पन्न कर दिया गया। सार्थवाह के प्रत्येक सदस्य को कठोर चेतावनी दी गई कि वह अवन्ति नगर में कहीं भी किसी नागरिक अथवा राज्याधिकारी से इस दस्यु द्वन्द की सूचना न दें। सार्थवाह सदस्यों को आश्चर्य था कि रमणी दल इस पारितोषिक कृत्य को क्यों अप्रकटित रखना चाहता है।

फाल्गुन कृष्णा द्वादशी के मध्याह्न काल में यह दल खरस्रोता पुण्यप्रदा क्षिप्रवेगिनी क्षिप्रा के तटवसित नगर अवन्तिका में पहुँचा। नगर के एक शान्त

सुरम्य अध्वनीनागार में नवयौवनाओं के दल ने समाश्रय प्राप्त किया। सर्वसौविध्य-भूषित उक्त पन्थागार में धनी, अभिजात्य और सामंतभद्र ही प्रायः निवास करते थे। यात्री निलय की प्रबन्धन व्यवस्था दो अधिकारियों के निर्देश पर सम्पन्न होती थी। इनमें एक पुरूष अधिकारी था द्वितीय अधिकारी के रूप में एक सुन्दर पुष्टांग विकसित यौवन संपूरित वनिता नियुक्त थी।

दोनों ही अधिकारी दल की उन स्त्रियों को जिन्होंने पुरूष परिवेश धारण कर रखा था, पहचान नहीं सके। तीर्थ पंजीयन पञ्जिका में तीर्थ सेवी समूह का आगमन बंग देश से दर्शाया गया।

महाशिवरात्रि का निष्वृजिन पर्व समीप था, अतः अवन्तिका का सज्जा संभार सद्यवधु के शृंगार वाहुल्य की भांति दैदीप्याभूषित था। नगर की पण्यवीथिकाएं, रथ्या, प्रतोली, विशिखाएं और आपण विविध वस्तुओं से सुसज्जित थे। विस्तीर्ण नगर में प्रर्थवध वस्तुओं के हाट थे। एक हाट में परिस्रुता के विक्रय केन्द्र थे जिन पर शासन का पूर्ण नियंत्रण था, एक पृथक हाट में सपर्यादि वस्तुओं का संग्रह था तो एक अन्य हाट में स्त्रियोचित वस्तुओं का भण्डारन। इस नारी- उपयोगित हाट के विक्रय स्थलों पर नारी संवर्ग ही क्रय-विक्रय सम्पन्न करता था। उस हाट में पुरूष प्रवेश निषेध था किन्तु योषित रसिक पुरूष वनितावेष में अनाधिकृत रूप से प्रवेश कर रूपसी सम्मर्द की स्वर्णच्छटा का नेत्रसुखानन्द प्राप्त करते ही थे। कुछ प्रमिलाएं भी अपने प्रेमिकों को सेविका सज्जा से अलंकृत कर अपनी हाट सेवा सम्पन्न करती थी।

नारी हाट में मुक्त वनिताओं के अश्लील वचन और काव्य का भूरि प्रसार था। मिथुनभुक्ता कामित्राएं परस्पर समवयी, समस्वभावी कुल्याओं से अपने नायक के कामांग का मुक्त वर्णन और रतिक्रियाओं की आर्द्र रसानुभूतियों का ऐसा स्वतन्त्र वर्णन करती कि श्रवण की कामाग्नि उद्दीप्त हो उठती। कोई-कोई नायिका अपने वस्त्रावरित गुहयांगों को वस्त्रस्वतन्त्र कर नायक द्वारा कर्तृ नख क्षत, दन्तक्षादि के चिह्नों का दर्शन कराती तो कोई पारिधानेयावरित अंगों प्रकृति प्रदत्त चिह्नों का रसवर्णन कर स्वयं को श्रेष्ठ नायिका निरूपित करने का उद्योग करती।

इसी योष हाट में सार्थवाह की त्रिसखियों ने प्रवेश किया। जैसे हिरण्यलोक की भासन्ती सुरसुताएं ही अवतीर्ण हुई हो। उनके भास्वत यौवन प्रसारित स्फुट अंगों में जैसे रति का अधिदेव काम ही आवासित था। यौवन भूयस्त्व की ज्योत्स्न

सुषमा को जो भी आपण में आगमित नायिाक देखती, आश्चर्य और ईर्ष्या से स्तब्ध हो जाती।

एक प्रौढ़ा चञ्चल नायिका से रहा नहीं गया। वह अपने दृगकाटाक्ष का चालन कर रूप सम्भार को व्यवस्थित करती त्रिसखियों के समीप आ बोली–"रूप और सौन्दर्य की शोभनच्छटा से सज्जित नारी कुलकीर्ति की संवाहिक रमणियों। तुम किस देश की देशिजा हो, किस उत्तम कुल को अपनी रूपचन्द्रिका से आलोकित कर उसे कृतार्थ किया है। री लावण्य सर्वावयवी, विकचलोचनोत्पलाक्षी, रति रूपिणी ललना तुम्हारी क्या संज्ञा है।" अन्तिम वात उसने उस तन्वी नायिका को सम्बोधित कर कही जो उनमें मुख्या थी।"

–"यह उल्लसच्चारुपयोधरा और गुरुनितम्बबिम्ब धारिता, सुचारू यौवन के चिराश्रयालय कलेवर की धरित्री मेरी स्वामिनी चित्कला है। मैं अमाकला और यह प्रफुल्ल यौवनच्छवि दर्शना अनंगस्नेह भाजिनी, समृद्ध कुच-जघनादि से संवृत मेरी सखि 'गुप्तकला' की संज्ञा से अभिहित है। अपनी स्वामिनी की अनुमति से ही हम अपना श्रेष्ठ कामिनी कुल-गोत्र और देश संज्ञा बता सकते हैं। इस विषयक हम वर्जित है।" त्रिवस्याओं में से एक रमणी अमाकला ने मधु स्त्रिवत स्वर में उत्तर दिया।

–"तुम्हारी स्वामिनी कञ्चनच्छटा का श्लक्ष्ण विग्रह है, साक्षात् आत्मभूया देव्या का अनध शुभंकर स्वरूप है, लावण्य लसित सौन्दर्य निर्ग की संविद-समाख्या है। देखो योषापण की समग्र दृष्टि इस अनवद्यांगी के रूपप्रचाय पर ही स्थिर हो गई है।"

अनेक दृष्टियाँ तीनों सखियों पर थी, चञ्चला ने सत्य कहा था। इसी वनिता समुदाय में कुछ ऐसे पुरूष भी थे जिन्होंने योष रूप धारण कर रखा था। उन्होंने ने भी त्रिसखियों को भक्ष दृष्टि से देखा।

अपनी और प्राचुर्याकर्षण देख स्वामिनी चित्कला ने मन्द स्वर में कहा–"सखियों हम अनेक नेत्रों का केन्द्र बनते जा रहे हैं। इसके पूर्व कि कोई हमें वास्तविक कथन को स्नेह विवश करे, हम यहाँ से प्रस्थान कर दें।"

त्रिरमणियाँ समस्त नारीवृन्द की उपेक्षा कर शीघ्रता से योष-आपण से प्रस्थान कर गई।

इसी आपण के दक्षिण कोण में वारवनिताओं के हर्म्य और अट्टालिकाएं थी।

एक हर्म्य तो राजप्रासाद का भ्रमोत्पादक था। यह रजवारांगना समुद्र सेना का भव्यावास था। उसका अद्भुत वास्तुशिल्प देख चित्कला ने अपनी सखि अमाकला से कहा–हमारे राज्य में ऐसा एक भी हर्म्य नहीं है सखि! तुम इसका मानचित्र मानस पटल पर भावतूलिका से चित्रित कर लो।"

–"देवी यह वारांगना भवन है, हमें और हमारी प्रजा को इसकी विशेष आवश्यकता नहीं..........फिर भी आपका आदेश शिरोधार्य है।" कहकर अमाकला ने हर्म्य का संधानक दृष्टि से देखा फिर वे आगे बढ़ गई और एक पण्यवीथिका पर चलते हुए अपने पन्थागार में जा पहुँची। फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी की श्रेयसप्रद ब्रह्म मुहर्तिका में कल्पान्त देव महाकाल के पुण्य मन्दिर में सार्थवाही रमणियों का रूपास्त्र सज्जित समुदाय पहुंचा। ज्योतिर्लिंग पर कुणप[12] भस्माभिशेष सपर्या का क्रम प्रारम्भ हो रहा था।

–"रमणी समुदाय का आचार्य महाकाल के प्रधानाचर्क (पुजारी) से एकांत भेंट कर सभी रमणियों को भस्मारात्रि[13] में सम्मिलित होने की स्वीकृति पूर्व में ही ले चुका था। नारीवृन्द स्वामिनी चित्कला का कुसुम गात्र हर्षोल्लास की भूति प्रभा से स्मित-स्मित हो रहा था। उसके प्रत्यवमर्ष[14] क्षेत्र में बाल्यकाल से ही स्वप्नदर्षित ज्योतिर्लिंग अब प्रत्यक्ष होगा, पुनः पुनः यह शातचिन्तन उसकी कलम्बत पुटित देहयष्टि में लोम प्रहर्षण का ज्वार-उत्पन्न कर रहा था।

पंचाचर्कों ने कुणप भस्मानुलेपन प्रारम्भ किया। चित्कला की नयन चन्द्रिका में महाज्योतिर्लिंग का भास भूयस्त्व[15] स्वरूप महाभुविस्[16] विलसत्[17] हुआ। महितल से गगन लम्बित, भासुर पिण्ड की घनमेचकी प्रकारा के अणु-अणु से आलोक मयूखों[18] का सघनतर उद्भाष चित्कला के चित्तलोक को प्रकाशित करने लगा।

भस्मपरिमृष्ट[19] ज्योतिर्लिंग से सम्मोहित परिमला[20] का सतसृजन उपस्थित समुदाय को भक्ति-मुक्ति के पुलक जगत में स्थापित करने लगा। शंखों का तुमुल घोष, महाकाल गुहा गुंजित नाद के रूप में प्रसृत्वर[21] फैल उठा। आराधक गान कर रहे थे–

"श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचराश्चिता भस्मालेपः स्त्रगापि नृकरोटी परिकरः। अमंगल्यं शीलन्तवभवतु नामैवमखिलन्तथापि रमर्तृणा वरद परममंगलमसि। मन प्रत्यक्चित्तेसविधमवधायात्तमरुत प्रहृष्यद्रोमाण प्रमद सलिलोत्संगितदृशः। यदालोक्या- ह्लादं................।" स्तोत्र गान चलता

रहा, चित्कला के स्फीत[22] नयन देखते रहे, उस नवागन्तुक और धवलित पुण्य पुरूष को जो अपने नाद स्वर तन्त्रिक से महाकाल में भी उद्रेक भर रहा था। कौन है यह मुक्त पुरूष, क्या गौरीसुत गणेश ही अपने भक्ति महिम्न से अपने हृत्कला कर्णिका वसित महाकाल प्रत्यांश को प्रकट कर उसके निःशेप रूप को सद्यः प्रकट कर रहा है, अथवा स्वयं महिम्न का रचनकर्त्र यक्ष पुष्पदन्त ही हिम-उपत्यका से साक्षात् प्रकट भव हो अपने ईष्ट का स्तवन कर रहा हो।

महिम्नगान निष्पन्न कर उस धवल पुरूष ने ताण्डव गान प्रारम्भ किया–

"जटाकटाहसम्भ्रम भ्रमन्निलिम्पनिर्झरीविलोलवीचिवल्लरीविराजमानर्मूद्धीन। घगद्घगद्घगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके किशोरचन्द्रशेखरेरति प्रतिक्षणम्मम॥"

रक्ष संस्कृति के सुपोषक और ऋषिवर्य रावण कृत ताण्डव द्वारा रचित लास्यस्तोत्र के इस अद्य पंक्ति का भावमय श्रवण कर चित्कला की मनोहर देहयष्टि के अंग-प्रत्यंग में लास्य के आंगिक कर्म की चेष्टाएँ प्रकट हो उठीं। वह अपने आसन से उठी। उसके नेत्रों से सत्वभाव का निर्झर फूट पड़ा था। उसने करबद्ध मुद्रा से नमन किया। नमस्कृत के पश्चात ही उसे दृगदेश में बाह्याचार और जड़ जगत निर्पेक्ष हो गया। उसके कर्ण विश्रान्त आयतलोचनों की स्फटिक शुभ्रता में नटराज स्वयं ही प्रकट हो उठे। कर्पूरधवल नटमहिम् हर्षवदन से मुखर हुए–

–"नाचो देवी! लास्य करो पार्वती! जगत् निरामय हो गया है, चेष्टाएं सुधा पान कर तुम्हारे मदस्त्रावित मदिरांगों में, प्रकट हो गई है नटी। नाचो नाट्यमदना, नाचो हृद्येश्वरी, नाचो कामाख्यारूपिणी।"

चित्कला का सर्वांग प्रस्फुरण से पूर्ण हो उठा। सात्विकोन्मेप से भावों की लास्य लीलाएं लोमरन्ध्रों में प्रकट हुई। प्राण गा रहे थे, नाचो.....मन गा रहा था। नाचो, इन्द्रियां गा रही थी, नाचो, समग्र देह मे परिभ्रमित रक्त की धाराएं कलल करती प्रबद्धित नूपुर झनझना उठे। वे नादमय समवेत स्वर में नादानुगंजन करते हुए चित्कला का भावप्रवर्द्धन कर रहे थे–नाचो यौनाक्षी, नाचो महालास्या। कटि सज्जित शम्पाकांति से रोचिष रतिमन्दिर तोरण मलिका मेखला दीप्ति द्युति की दमक में भी यही भावोन्मेष की चर्या प्रकट थी।

सर्वप्रथम चित्कला का अलक्तरचित लाक्षेप पदों में लास्य रस संचार हुआ फिर अंग चेष्टा में नायिका के यौवनकाल में सहज प्रकटित द्वादशालंकार प्रकट

हुए। लीला, विलास, विच्छित्ति, विभम्र, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुट्टमित, बिब्बोक और ललित चेष्टाओं के चमत्कारों के उपरांत शिरः संचालन के विविध कर्म, भूसंचालन के सप्त कर्म, दृष्टि संचाराभिनय के तीन भेद, उनके छत्तीस उपभेद, जिनमें से दस का प्रादुर्भाव रस से था, प्रकटित हुए।

कान्ता, भयानका, हास्या, करूणा, अद्भुता, रौद्री, वीरा, वीभत्सा–इन अष्ट रसदृष्टियों में अद्भुत लास्य का प्रतिवेदन था। मुख के छह कर्म, अधरोष्ठों के छह प्रकार इत्यादि चेष्टाएं चित्कला में सहज ही आगत हुई! गौर पुरूष का ताण्डव मान यथावत था–

"करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्ज्वलद्–
घनञ्जयाहुतिकृतप्रचण्डपञ्चसायके।
धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्रचित्रपत्रकप्रकल्प–
नैकशिल्पिनि त्रिलोचने रतिर्म्मम। नवीन मेघ.............।"

भस्मविभूषित डम्मरु के डिम् डिम् ऽम् नादकर्तृ शशि शेखर आनन्द निमग्न हो स्वयं भी लास्य क्षेत्र में उतर पडे। ललाटस्थ शशि उनके उद्दाम पदसंचार से प्रस्फुरित–प्रकम्पित हो उठा, जटावासिनी जाह्नवी विकल हो कचसंभार में, शिरकुन्तली गुहाओं में समाने लगी, तृतीय नेत्र की कामदग्धकर्त्री–ऊष्मा का उत्ताप बृद्ध हो उठा, त्रिशूल की द्युति में दामिनी के प्रखर सौदाम्न का विशद शात ही लास्य करने लगा, नृत्योद्दाम से स्त्रिवत प्रस्वेद से आर्द्र भस्म बिन्दुओं से अनेक गण–गणिकाएं प्रकटित हो आलास्य रचाने लगी। चित्कला के घूर्मित परिधानेय प्राच्छादन वलय से अनेकों वार नंदी आच्छादित हुए।

गान अपने अंतिम चरण में था–

"प्रचण्डवाडवानलप्रभाशुभप्रचारिणी
महाष्टसिद्धिकामिनीजनावहूतजल्पना।
विमुक्तवामलोचना विवाहकालिकध्वनिः
शिवेतिमन्त्रभूषणा जगज्जाजायजायताम्।।"

ताण्डव गान निष्पन्न हो गया पर भस्मभासत भद्रंकर भवानीवल्लभ का वेग शान्त नहीं हुआ। वे तो अपनी प्रिया के साथ महोद्दामलास्यसमाधिा में समाधिस्थ थे–अन्ततः चित्कला लास्यरास के मूल बिन्दु में प्रविष्ट हो महाभाव को प्राप्त हो गई। नृत्य अस्त के अंतिम चरण में चित्कला निःसंज्ञ हो गई। इसके पूर्व कि उसका कुसमित देह पृथ्वी तल पर गिरे उसकी सहचारियों ने उसे थाम लिया। निःसंज्ञता के पूर्व चित्कला ने अपने महानाट्यक शम्भु को उसके अपने ही देह

में समाविष्ट होते अनुभव किया था! गौर वलक्ष पुरूष ने अपने गायन के मध्य अनेकों वार चित्कला के महाभावाविष्ट लास्य का प्रीत दर्शन किया था। उसके समीप ही राजमहिमा से मण्डित नवयुवक राजस् पुरूष ससम्मान खड़ा था! उसने चिंतित स्वर में कहा –"महाकवि यह सुकुमारि बाला हत्संज्ञेया क्यों हो गई?"

–"कुमार विक्रम..........यह भावजन्य समाधि का ही एक प्रकार है।" कहते हुए महाकवि जो अन्य कोई नहीं कविकुलगुरु आद्या नीलसरस्वतीसुत कालिदास ही थे, ने चित्कला के समीप जा लिंग मार्जितोदक का पृषद् सिंचन युवारम्या के रूचिरमुख पर किया!

कुछ समय के पश्चात् चित्कला की चेतना जगतोन्मुखी हुई। उसने अपने चतुर्दिक देखा फिर स्मरण कर महाकवि को श्रद्धा से प्रणाम करते हुए पादस्पर्श को उद्यत हुई।

–"नहीं..........नहीं...........यह क्या अनर्थ करती हो मालिका। तुम तो साक्षात् शम्भुवधू हो, हिमसुता हो और मैं तुम्हारे उत्संग में विकसित पुष्प। री मायामयी, मुझे ही छल रही है, अपने ही तनुज के पंकिलचरण का स्पर्श कर नारकीय क्यों बनाती है जगत्प्रसूवनी।" महाकवि ने चित्कला के गौर दुग्धवर्णी, पद्मनाल से कोमल करों को मध्य में ही थाम लिया।

–"मैं कालिदास हूँ आद्यांशा और यह यहाँ के राज्याधिश्वर भृतहरि के लघु भ्राता और मेरे मित्र कुमार विक्रमादित्य हैं। योषाणव में भ्रमण कर रही राज्य की गुप्तचरी की सूचनानुसार तुम और अन्य सहचरियों पर अन्य देश की गुप्तचरियां होने का सन्देह हुआ था। सूचनाओं के अनुसार तुम्हारा दल महाकालार्चन सम्पन्न करने आ रहा था, हमें भी अभ्यर्चन हेतु आना ही था। मेरा सन्देह निर्मूल हुआ, पर राजकीय औपचारिकताएं आपको अवश्य पूर्ण करनी होगीं। इसके लिए पृथक से राज्याधिकारी पन्थागार में उपस्थित होकर आवश्यक पूर्तिया सम्पन्न कर लेगा।"

कुमार विक्रम के तेजस्वी मुख पर मन की खिन्नता स्पष्ट दृष्टिगोचर हुई। गुणाभिभूत होकर संदेहास्पद व्यक्तित्व पर सत्य का प्रकटीकरण राजनैतिक दृष्टि से उचित नहीं।

–"अवश्य........अवश्य महाकवि, हम राज्य सन्देह को निर्मूल सिद्ध करेगें। हम अभिजात्य कुलोत्पन्न वनिताएं हैं। नियुक्त राज्याधिकारी को हम समस्त

सूचनाएं प्रदान कर राज्यतुष्टि में सहायक होगी।" चित्कला ने उन्हें आश्वासन दिया!

एक अन्य सुकुमार युवक भी विक्रम और महाकवि के सेवक, चरों में सम्मिलत हो महाकाल गर्भगृह में प्रवेश पा गया था, उसने अति गम्भीर दृष्टि से चित्कला का भव्य-भाव लास्य देखा था। उसने महाकवि और नयनचन्द्रिका चित्कला के मध्य हुए वार्तालाप को भी श्रवण किया।

कुमार विक्रम और महाकवि ने भगवान शूलपाणिन को प्रणाम निवेदित कर प्रस्थान किया। चित्कला का सौन्दर्य संपूरित यात्रिन् दल भी सर्पा निष्पन्न कर निवृत हुआ!



कालभैरव कान्तारिक् क्षेत्र के निकष प्रान्त में, स्थित चण्डी आलय में वही त्रिवस्याएं उपस्थित थीं। उन्होंने सश्रद्धा से महाकाली के दिव्य कृत्स्न स्वरूप का दर्शन किया।

–"सखियों इस पावन शक्तिपीठ में मुझे अपने गृहनगर स्थित माँ ब्रह्माण्योत्सर्जिता कामाक्षी के पुण्य दर्शन हुए। निश्चिय ही इस तमःविग्रह में कामरूपिणी का तद्रूपी वैभव है।" चित्कला ने मन्दिर से लौटते हुए कहा।

–"यह सत्य है दैव्या तनु। हम द्वय सखियों ने भी यही मुत्–अनुभूति का अनुभव किया।

उनका रथ संचारित हुआ। कुछ ही दूरी पर........। पथ के तट से समीप ही सघनपाती बरगद तरु के प्राच्छाय में निर्मित एक सर्वतोभद्र चत्वाल बना था। चत्वाल पर एक शिवलिंग की स्थापना थी। उसके समीप ही एक गौरवर्णी ब्राह्मण युवक शास्त्र सहित आसनानीस था! चत्वाल स्थल पर ही शीतल नीर से परिपूर्ण जलकुम्भ स्थित था।

रथागमन देख युवक के नेत्रों में आलोक सृष्ट हुआ। उसका हृदय भी द्रुत्स्फुरण से स्फुरित हो उठा। रथारूढ़ एक सध्रीची ने शान्त-प्रशान्त तरूच्छाँव में नवयौवन कांति की स्च्छच्छच्छटा से पोषित युवक को आसनासीन देखा, उसकी चाञ्चल्य मनोवृति में मोद का संचार हुआ। वह सारथी से बोली–

–"सारथिन्, यही रथ स्तंभित करो। हम तृषा से पीडित हैं। जल भी दैव वस यहाँ इस प्रच्छाय में उपलब्ध है।"

सारथी ने रथ को रोक दिया। स्थानीय नगर सारथी दो दिन से इन संभ्रान्त कुली ललनाओं को अपनी सेवाएं समर्पित कर रहा था! वह सारथी के साथ ही नगर दिक् दर्शक का पद भार भी सम्हाले हुए था। उसकी दृष्टि में रथारूढ़ा स्वतन्त्र रमणियाँ उच्छृकलवृत्ति की मदालसाएं थी। उसे भलीभांति अनुमान था कि रथारूढाओं को तृषित नहीं हैं, वह तो उस रूपवान सुकुमार ब्राह्मण युवक को अपने मनोपरिहास का आखेट बिन्दु बनाएंगी।

–"यहाँ से विक्रान्त भैरव का नित्य चिता क्षेत्र प्रारम्भ होता है, सुकुमारिकाओं। यह महाकाल उपासित शैवों की विहंगम धरा है, कापालिक, कालामुखी, अवधूत, अघोर साधकों का शरण्यस्थल है यह, अतः सावधान रहकर, अतिशीघ्र इन दर्शनीय स्थलों का अर्चन कर इस क्षेत्र से गमन ही श्रेयंकर है" सारथी ने चेतावनी दी, पर दो मधुस्रावी चपलाओं ने उसकी चेतावनी पर ध्यान केन्द्रित नहीं किया, वह रथस्तंभित होते ही कूद पड़ी।

–"तुम तो धीमती हो पुत्री। इन चंचलाओं को सतर्क–सावधान करो।" वृद्ध सारथी ने चित्कला से कहा।

"आप निश्चिंत रहे, कोई अमंगल अथवा कुघट घटित नहीं होगा आदर पात्र।" कहते हुए–चित्कला भी रथ से उतरी। वह वास्तव मे जलपिपासित थी। चित्कला का आगमन निश्चित मान नवयुवक ब्राह्मण के मुख पर सूर्योदय हुआ।

–"देव हम तरंगिणी[23] होते हुए भी तर्षुला[24] हैं। तुम तो त्रिकाधर[25] हो, हमारी तर्षुलेच्छा[26] को पूर्ण करो।" अमाकला ने द्विअर्थी वचन–उच्चारित किए।

–"अवश्य.........अवश्य........यद्यपि मैं जलधर नही हूँ, शास्त्रधर हूँ, तथापि आपकी पिपासा शान्यर्थ नीरानुष्ठान करूंगा देवी।" पुण्ड्रधार्य युवक आसन उठने को उद्यत हुआ।

–"तुम्हें किस संज्ञा से आह्वत करे त्रिपुण्डी[27]।" अमाकला ने उसके अतिसमीप बैठते हुए अपने नेत्रों का मद द्रव युवक पर उढ़ेलते हुए प्रश्न किया।

–"तुम किस विद्या में निष्णात हो युवक। कामशास्त्र की सरसता, रति बन्धों की संज्ञानता से तुम्हारा प्रायोगिक परिचय हुआ है? जटिलजघनाभ्यान्तार्वासिन् जगत्जनित्र स्थल"[28] की तीर्थस्थली में आसनारूढ़ हो तुमने अनुष्ठानार्चन सम्पन्न

किया है, अथवा सद्यःकाल तक वञ्चित हो? गुप्तकला ने युवक प्रत्युत्तर के पूर्व ही अपना प्रश्न गम्भीर मुद्रा में व्यक्ति किया।

सरलमनः युवक लज्जा से आरूणी हो गया। ऐसे काममय प्रसंगित प्रश्नों के विषय में कोई मनोहारिणी विजिज्ञासा प्रकट करेगी उसने कल्पना भी नहीं की थी। उसी समय चित्कला भी वहाँ पर उपस्थित हुई। प्रतीक्षित चित्कला के आगमन पर युवक सम्मान से उठा और स्वागतार्थ बोला–"राजमहिषी का स्वागत है। मैं मालव चन्द्रमौलि देवी के चरण युगलों का सत्वंदन करता हूँ–स्वीकार कर कृतार्थ करें।"

चित्कला सहित अमाकला और गुप्तकला चौंक उठी। क्या ब्राह्मण युवक उनके मूल परिचय से सुविज्ञ है? हाँ, तो किस भांति?" एक क्षण त्र्यसंख्याओं के मुखों पर पाण्डुराभा का विलेपन हुआ।

–"किस आधारास्थ हो मुझे राजमहिषी के अलंकरण से अलंकृत कर रहे हो सखे।" चित्कला ने सहज ही प्रश्न किया–

–"आप आसनासीन हो दैव्यापुस! मैं हस्तसामुद्रिक का अभ्यासी, विद्यार्थी हूँ। आपके सुरतनु में वे लक्षण सहज–प्रकट हैं, जो आपको राजमहिषी के गौरव से गौरवान्वित करते हैं।" चन्द्रमौलि ने चित्कला को सुआसन प्रदान करते हुए आत्मविश्वास से कहा।

–"अनुमान असत्य भी हो सकता है चन्द्र।" चित्कला आसनासीन हो मधु स्वर में बोली–

–"अवश्व देवी, पर विद्या और शास्त्र तो अमोघ सत्य के वाच्य है।" चन्द्रमौली ने संधानक दृष्टि से चित्कला को देखा फिर बोला–

–"देहयष्टि, आवर्त्त, गन्ध, छाया, सत्य–पराक्रम स्वर, गति, वर्ण। इन अष्टप्रधान लक्षणों के आधार पर सामुद्रिक शुभाशुभ कथन करता है। और नारी देहयष्टि के 66 स्थानों में उपस्थित लक्षणों के आधार पर किसी भी सृष्टिजन्मिन् सह योगिनी कुल्या, भार्या, बाला, तरूणी आदि का त्रिकाल भेदन संभव है। कृपया मुझे अपने पादतल का दर्शन करावें।"

अमाकला और गुप्तकला दोनों निर्वाक हो गई। चित्कला ने परिधान को गुल्फ क्षेत्र तक तक उठाया और आवरित पद को निर्वस्त्र किया। चन्द्रमौलि ने निःसंकोच लाक्षा रचित स्निग्ध चरणों को अपने अंक से स्थापित कर पादोर्ध्व क्षेत्र और पादतल का गूढ़ निरीक्षण किया।

चित्कला का पादतल स्निग्ध, मांसल, मृदुल, समतल और अरुणाभा से रोचित था, ऊष्ण और निर्स्वेद था। पादतलीय रेखाओं के आर[illegible] में पद्म और मीना कृति का उत्कीर्णन था। मध्यपादांगुली पर्यंत मे [illegible] विस्तार देख चन्द्रमौलि गद्‌गद् हुआ। उसने फल कथन [illegible]

–"भगवती पादतल सृति वर्ग स्पष्ट कथन करता है कि [illegible] भोग आपका सहचर है। पद्‌माकृति और मीनाकृति का उत्कीर्ण आपका [illegible] होने का प्रमाण है।" चन्द्रमौली ने पादांगुष्ट का दृश्य-अध्ययन किया-

–"भोग्या भगवती आपका यह अंगुष्ट उन्नत, मांसल और वर्तुल है, अंगुल्याएं भी मृदुल, शस्त सघन, समुन्नत, वर्तुल और पांशुपर्वन हैं।" कहते हुए चन्द्रमौलि ने चित्कला के चरण युगल भूमि पर स्थापित किए। अंगुल्लिया दीर्घ, कृश, ह्रस्व और भुग्न नहीं थी, वे विकट और विरल भी न थीं और न ही परस्पर समारूढ़। चित्कला चरणों की कानिष्ठा, अनामिका, मध्यमा भूमि स्पर्शा नहीं थी और न ही प्रदेशिनी का आकार अंगुष्ट से दीर्घ। चन्द्र ने फलित कहा।

–"आप एक पति, सच्चरित्रा और परिणय तक अक्षतयोनि रहेगी।" चन्द्रमौलि ने पादनखों का भी निरीक्षण किया। पादनख, उज्ज्वल, स्निग्ध, आरक्त–ताम्रवर्णी और वर्तुल थे। सम्पूर्ण चरण प्रान्त मसृण, मृदु मांसल और अस्वेदित तथा शिराओं से हीन था। उसने एड़ी को भी देखा, वह मांसल, समुन्नत और सुवर्तुला थी।

–"ये पादलक्षण आपको सुखद और सौभाग्यशालिनी होने के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं धीमती। अब मै आपका हस्तपरीक्षण करूंगा।"

चित्कला ने औत्सुक्य से अपने दोनों हाथ चन्द्रमौलि के सम्मुख किए उसने अन्वेषक दृष्टि से देखा। उसने कर्पूर क्षेत्र से मणिबन्ध तक गहनतर देखा फिर कुछ क्षण नेत्र बन्द कर चिन्तन करता रहा। उसने चित्कला माणीबन्ध को कार्पास सूत्र से परिमापित किया फिर अपनी करस्थ अंगुलियों पर गणण करता रहा। एक निश्चित परिणाम को प्राप्त कर वह बोला–"भगवती, आपकी कटि का मापन चौबीस अंगुल है विस्तारित है–यह शुभप्रद है।"

चित्कला ने उसी क्षण अपनी रत्नविजडित मेखला को कटि से पृथक कर मापित किया। चन्द्रमौलि का कथन सत्य था। इसके पूर्व कि चित्कला कुछ प्रश्न करे चन्द्रमौलि का स्वर पुनः मुखर हुआ।

—"दैवीयगुणाभिभूषणा, कर्पूर से मणिबन्ध की मसृण गणणानुसार, अनुमानतः जंघा, जानु और उरु की संरचना ज्ञात होती है। आपकी जंघा लोमहीन, क्रमवर्तुल, सुचिक्कण और शिराओं से हीन मनोहर है। ये महाराज्ञी के संकेत चिह्न हैं। जानुयुग्म भी वर्तुल निर्लोमस और स्निग्ध हैं। उरुयुग्म गजतुण्ड उपमेय है। वे भी निर्रोमस परस्पर सघन-मसृण है। यह सब उत्तमप्रांगी भोगदात्री वनिता के कान्तपाश है जिनके प्रत्याकर्षण में प्रबद्ध होकर पति कान्ता प्रांगण का ही नित्यनिवासी हो जाता है। कपित्थ[29] फलोपमेय पृथुः, मांसल, नितम्ब बिम्बायित रति प्रवर्द्धन के हेतु कारणों का प्रत्याक्षानुमान रमणी के पोनोतुंग परस्पर संहत स्तनमण्डल के वक्षवार्तुल्य से होता है देवी। आपके ये द्वय देह संस्थान भी शुभत्पूरक और हर्षोत्जना है। दैव्यरूपिणी कृपया मुझे हस्त विनिर्मित योनिमुद्रा बना कर दिखावें।"

प्रसन्नवदन स्मिता चित्कला ने अपने हस्तद्वय की अंगुलियों-अगुंष्ठों के संयोग से विशिष्ट योनिमुद्रा का प्रदर्शन किया, जिसे चन्द्रमौलि निर्मिमेष दृष्टि से कुछ पक्ष्यकाल तक देखता रहा। योनिमुद्रा के विशिष्ट संयोजन को निरखकर चन्द्रमौलि ने शोणरोचिषस्मित-अधरपल्लवों को गहन दृष्टि से देखा फिर आस्थित स्वर में बोला।

—"आरक्ताधर पल्लवों से आपके प्रजनांग[30]-निसर्ग[31] का संरचन स्पष्ट होता है देवी। वह प्रदेश कूर्मपृष्ठ[32] की भांति है। योषांग[33] का दक्षिण भाग गजस्कन्ध के समान उन्नत है। यह पांशु अवस्था पुत्र संतति विशेष का संकेत निरूपित करती है। दैव्यातनु आपके निम्न अधर दर्शनाध्ययन से ज्ञात होता है कि दैव्या का स्मर भवन पद्मपत्रवर्णी और अश्वत्थ पत्राकृति की भांति निसर्गिक है। यह श्रेष्ठतर शुभतर है। देवी आखुलोमा[34] योनि क मणि भी गूढ़ और 'अधरों' में छिपी हुई है, यह विशिष्ट शुभत्व का योग निर्मित हुआ है। देवी का वस्ति[35] भवन प्रशस्त विपुल, मृदु और स्तोक[36] समुन्नत है। यह भी अत्यन्त शुभप्रद है। देवी आपकी दक्षिणावर्त नाभि सुख-सम्पत्ति की प्रदात्री है, पृथु कुक्षि पुत्रवती की संकेतक है तो पार्श्व[37] लक्षण भी शुभकर हैं। त्रिवलयवेष्ठित उदर आपको भोगवती प्रमाणित करता है। विस्तीर्ण तुंग मांसल और मृदुल, दक्षिणावर्त मृदुलोम सज्जित जघन भी श्रेय हैं। देवी, घनपीन, दृढ़ और समस्त पयोधर मण्डल शुभदायी होता है, और इस शुभत्व से आपके यौवन कलश पूर्ण हैं।" चन्द्रमौलि ने कुचाग्रलक्षण, जयुलक्षण, स्कन्ध, कक्षा, भुजाद्वय, हस्तांगुष्ट, पाणितल, करपृष्ठ

हस्तरेखाएं, अंगुष्ठ, अंगुलि, नख, पृष्ठ, कृकाटिका, कण्ठ, चिबुक, हनु, कपोल, मुख, अधरोष्ठ, ऊर्ध्वोष्ठि, दन्त, जिह्वा, तालु, नासिका, चक्षु, पक्ष्म, भ्रू, कर्ण, भाल, सीमान्त, शीर्ष (शिर) मूर्धा, केश लक्षण आदि का फल कथन किया। चन्द्रमौलि का प्रत्येक फल सत्य था। चित्कला चकित थी। आश्चर्य से नयनविस्फारित कर उसने कहा–

–"ब्रह्मवर्य, आपकी सामुद्रिक विद्या चोद्यजनित है। आपने गोप्य को भी अनावृत कर दिया।" पर चन्द्रमौलि नेत्र बन्द किए जैसे अज्ञात देश में कुछ संधान रत था। कुछ क्षण मौनव्यतीत हुए फिर जैसे चन्द्रमौलि की चेतना ने अज्ञात लक्ष्य को प्राप्त कर लिया–

–"देवी! मैं आपके मूल परिचय को जान गया हूँ। निश्चिय ही आप किसी स्त्री राज्य की राज्याधिश्वरी हैं। सम्भवतः वह स्त्री राज्य कामरूप..............।" कहते हुए चन्द्रमौलि का कण्ठ वाष्पित हो गया, वाणी अवरुद्ध हो गई और नेत्रों से अश्रुप्रषत्–पर्जन्य की भांति स्त्रिवत हुए!

–"तुम्हारे नेत्रों से अश्रुवर्षण! अकस्मात् किस शोक से आहत हो आप शोकग्रस्त हुए ब्राह्मण!?"

–"देवी मेरे पितृसहोदर शिपिविष्ट नारी राज्य में आबद्ध हैं। वे सरल, निष्कपट और शुद्धमनः–व्यक्ति हैं। 7-8 वर्ष की अवस्था में ही मैं अनाथ हो गया पर मेरे अनाथ होने के पूर्व ही वह स्त्री देश की किसी मायावनी के वशीपाश में बंधित हो गए। उस कारा से उनकी मुक्ति मेरा नैतिक, सामाजिक और राक्तिक दायित्व है।" चन्द्रमौलि के नेत्रों से अश्रुजाह्नवी वेगवती धारा के समान बह उठी।

–"पर चन्द्र यह किस विधि ज्ञान हो सका कि आचार्य शिपिविष्ट योषित राज्य में बन्धक हैं?" चित्कला ने प्रश्न किया–

–"महात्मा सुरत के मतानुसार मेरी बुद्धि ने ही यह निर्णय किया देवी। स्त्री राज्य संधान हेतु मैंने यात्रा भी की थी पर साफल्य नहीं मिला। इसी क्रम से मैं हिमालयोत्संग वसित पशुपति शिव के दर्शनार्थ उपस्थित हुआ, तब वहाँ महान योगी श्री गोरक्षनाथ का सान्निद्ध भी प्राप्त किया। उस पूरे देश में गोरक्षनाथ ने आध्यात्म की सुरसरि बहा दी है। नाथ हठयोग का प्रशिक्षण देता है, कामिनी कञ्चन और कीर्ति का निरोध करता है। ब्रह्मचर्य ही लक्ष्य प्राप्ति का मूल है,

देह में ही आत्मभोग का उपदेश करता है। योगी कहता है देह में ही उपाय है, देह में ही प्रज्ञा। वह कहता है देहधारी के अन्तःकरण में ही प्रत्यभिज्ञा है, उससे परिचित होते ही ब्रह्माण्य का अनन्त भी अन्तःकरणस्थ हो जाता है। वह योगी गृह प्रतिगृह से नाथ योगी का दान ले रहा है, बाल्यकाल्य से ही बालकों में हठयोग की प्रज्ञा का उदय कर रहा है। उसी के कारण हेतु ही पशुपति शिव पशुपतिनाथ रूप में संज्ञेय होते जा रहे हैं। उसी योगी ने द्रवित हो मुझसे कहा– ब्राह्मणवर्य, अवन्ती जाओ, वहाँ महाकाल वन में मूलाधार को दृढ़ता से दबा कर बैठो, वहीं तुम्हें नारी रूप में कोई सूत्र मिलेगा, पर सावधान भग राक्षसी है उसके फेर में न पड़ना।" चन्द्रमौलि ने अपनी बात समाप्त की।

अमाकला हँस उठी, गुप्तकला के अधरों पर हाँस्य क्रीड़ित हुआ-वह बोली–"आचार्य, भग राक्षसी के मुखदन्तों से स्वरक्षण करना, अन्यथा वह तुम्हें समग्र रूप से भगस्थ कर लेगी।"

चन्द्रमौलि चकित दृष्ट देखता रहा। चित्कला गम्भीर स्वर में कही रही थी-

–"आचार्य, आज रात्रि–महाशिवरात्रि है, भगवान महाकाल के प्रांगण में उपस्थित हो उनका अभ्यर्चन करना, उनकी कृपा से शिपिविष्ट से अवश्य मिलन होगा।"

चन्द्रमौलि के समीप जलपान कर चित्कला सखियां सहित रथ की ओर चली। चन्द्रमौलि ने जैसे स्वयं से कहा–"तुम ही हो..........तुम ही हो..........तुम्हारी प्रतिच्छाय, तुम्हारे देह से निःसृरित गन्ध, तुम्हारी चरण गति, सर्वलक्षण महाराज्ञी सिद्ध कर रहे हैं।

---

1. काल, समय
2. घूर्मण
3. तेजरफ्तार
4. सांसारिक माया से मुक्त
5. कृत्रिभवन
6. यौवन से आलिंगन
7. सम्भोग की इच्छुक
8. बुढ़ापा
9. वृद्धावस्था से पीड़ित
10. शरद् ऋतु
11. भग या योनि क्षेत्र
12. शव भस्म–अभिशेष

13. भस्म आरती
14. स्मरण शक्ति
15. चमकीला विस्तार
16. महासमुद्र
17. शोभित
18. प्रकाश की किरणें
19. भस्म से स्वच्छ किया गया
20. अतिमनोहरगन्ध
21. चारों ओर
22. प्रसन्न से चमकते
23. नदी
24. प्यासी
25. कुँए से पानी निकालने वाले यंत्र विशेष का धारक
26. प्यास की इच्छा
27. त्रिपुण्डधारक
28. जटिल जघन क्षेत्र के मध्य स्थित जगत् जन्मस्थल
29. कैथ फल
30. योनि
31. आकृति
32. कछवा (जलचर)
33. योनि
34. चूहे की रोम
35. नाभि के नीचे और योनि के ऊपर (दोनों के मध्य) का स्थान
36. अल्पपरिमाण
37. शरीर के बगलों के नीचे का भाग, जहाँ पसलियां होती है।

महाकाल मन्दिर के प्रांगण में।

रात्रि का प्रथम चरण सम्पन्न होते ही, भगवान् महाकाल की विशिष्ट अर्चा का क्रम प्रारम्भ हो गया। वेदभाषी ब्राह्मणों ने अपनी यजुर्वेदीय रुद्री का स्मरण किया। ज्योतिर्लिंग का श्रृंगार सम्पन्न हुआ। उस रात्रि में प्रथम-पूजा महाराज भृतहरि और राजमहिषी पिंगला सम्पन्न करते थे।

शंख-निनाद हुआ, सहस्त्र कण्ठों की भावाभिव्यक्ति महाकाल की जय सम्राट भृतहरि की जय के घोष नाद में सहज प्रकट हुई। भृतहरि के साथ ही पिंगला उनके वाम हस्त पर अपने चरण पद्मों पर यौवन संभार का संवहन करती, गजप्रिया की भांति चरणशील थी। जैसे साक्षात नारायण ही रमा के साहचर्य में शिर्वाचन को पधार रहे हो, अथवा घनस्निग्ध कुन्तला मदनश्लाकांक्षिणी सुरनायिका, हविर्भोक्ता सुरसंग होने पर भी अपने लक्ष्य का कामदमन करती, कान्ताकेलिक्रीड़ा को परित्यक्त कर शिवारिभस्मक-महादेव की सपर्या हेतु प्रस्थान कर रही थी। निर्मल यौवनकान्ति से सज्जित पिंगला के स्वरूप में जैसे भक्ति ही साकार हुई थी, भृतहरि के प्रणयकलही गात्र में जैसे धर्म मूर्तिमान था।

चित्कला और उसकी सहचरियां एक निश्चित स्थान पर अपनी कुसुमेषु-ललित चन्द्रमुखच्छवी को अवगुंठन में प्रबद्ध किए एक निश्चित स्थान पर खड़ी थीं। भृतहरि के साथ युवादित्य की तारूण्य प्रभाधारी विक्रम और युवक कालिदास भी थे। उन दोनों के नेत्र अपार जनसम्मर्द में किसी का संधान कर रहे थे, पर नृ-उदधि की उत्ताल तरंगों में जैसे दृष्टि विफल होकर पुनः पुनः लौट रही थी।

भृतहरि ने सधर्मिणी महाकाल सपर्या सम्पन्न की। अकस्मात् भूगर्भ में ही नन्दीवर के समीप एक अद्वितीय सलीलसुर सुन्दरी की रूपसज्जा को लज्जित करती सुकुमार बाहुल्य प्रांगी का अभिर्भाव हुआ। उसके रूपालोक से जैसे भूगर्भ आलोकमय हो गया, उसके नीलमणि खचितताटंक की नीलाभा से ज्योतिर्लिंग नीलतनु होकर दीप्त हो उठा।

–"महादेवी पार्वती ही कैलाशधाम के शुच्य का त्यागन कर पधारी हैं, अथवा महाकाली ही इस नूत्ररूप में अपनी नीलच्छटा सहित प्रकटित हैं। भृतहरि का भक्तिमय उल्लिसत कण्ठ से 'जय महाकाल-जयमहाकाली' का महाघोष हुआ। जैसे पिंगला के कामभवन की रक्षणसज्जा मेखला की मणि कान्तिहीन हो

गई थी, उत्तुंगश्यामल कुचाग्रों का ऊर्ध्व स्पर्श करते गलहार टंकित रत्न भी लज्जित हो उठे।

—"महादेवी आपकी जय हो।" भृतहरि की भक्ति चरम-उत्कर्ष का शीर्ष स्पर्श करती अविर्भवित तेजोमयी सुरांगणा के अलक्त रचित, नुपुरसज्जित पादपद्मों में उत्सर्गित हो गई।

—"मैं महादेवी नही मानवी हूँ राजपुत्र।" उल्लसच्चारूपयोधरा ने अपने पादप्रान्त में भक्ति निमिढ़ भृतहरि को अपनी सुकुमारिक बाहुबल्लरी से उठाने का प्रयास किया। महारानी पिंगला भी भृतहरि की ही भांति सुनत थी।

—"देवी, महिमामयी महाराज्ञी। तुम्हारा कान्त यशस्वी हो, चिरामय हो, कीर्तिवान हो। तमसाकेशपाशिनी, नतांगी सुवृता देवी संवर्त काल तक तुम्हारे रूप लावण्य के आख्यान-चिरामय रहे।"—सत्वैश्वर्य विभूषित, कटाक्षवीक्षणा ने प्रसन्न स्वर में अर्शीवचन दिया!

कुमार विक्रम और कालीदास चकित थे। यही वह सौन्दर्य और सुरूप की घृतचन्द्रिका है जिसे उन्होंने नाट्य-लास्य में लास्यित देखा था-परिसंवाद किया था। अभी वह विचार मग्न ही थे कि दोनों के कर्णपटलों पर ध्वनन् हुआ-

"यह अवतार रूपिणी, ज्ञान की उत्सधरा और निर्मल कामिनी कान्ति है, पुण्य पुरूषों। इसे श्रद्धा से प्रणाम करो।" अदृश्यताज्ञात नारी कण्ठ जनित स्वर तंत्रिका को ग्राह्य कर विक्रम और कालीदास आह्लादविभोर हो उठे। उन्होंने सश्रद्धेय दिव्यवनिता का चरण स्पर्श किया।

—"महाकवि भव, चिरयशस्वी सम्राट भव।" दिव्या के मुख से मुखर हुआ।

पिंगला का मन विकल हुआ। यद्यपि विक्रम उसे पुत्रवत ही है पर देवी का उसे सम्राट भव का अशीर्वचन क्या निष्पन्न करता है? क्या उसके भर्तृ का अमंगल संभाव्य है? अथवा वह अपने स्वगर्भी पुत्र से वंचित रहेगी।

—"सौन्दर्य की प्रस्वच्छ प्रभा पिंगले। तू व्यर्थ अपशोच न कर। प्रसन्न हो, शुभमती हो, कल्याणी, सुचारु के पिंगला तू समाज में नवाध्याय की रचयिता होगी, लोक ख्यात होगी।" अपने कर्णपटल के समीप पिंगला ने नारीकण्ठ निःसृरत स्वर ध्वनि श्रवण की अनुभूति की। पिंगला विषादमुक्त हो प्रसन्न हो गई।

भूगर्भ के एक कोण में स्वयं को अवगुंठावरण में छिपाए चित्कला ससखि खड़ी थी। अमाकला और गुप्तकला भूगर्भ प्रकटित दैव्या रूप का दर्शन कर

चकित थी, जबकि चित्कला के रोणरोचिषाधर पल्लवों पर रहस्य पुटित स्मित क्रीड़ा कर रहा था।

–"देवी! चित्कला, यह कैसा चौद्याश्चर्य? यह कैसा अतिरेक घटन? एक चित्कला की वपुस् संज्ञा तुम्हारे रूप में यहाँ स्थित है और द्वितीय त्वं-तद्रूपिणी ललना अपने रूप ललाम से गर्भ गृह संस्थित महाकाल को भी लोभित-मोहित कर रही है?"

"पुत्री मेखला, पताका। यही कामरूपिणी कामाक्षी का विस्तार है। इसी विस्तार के चक्रावर्त में महादेव भी घूर्मित है फिर, भृतहरि-विक्रमादि तो आवर्तित हैं ही।" अपने समीप्य से ही वाग्ध्वनन् हुआ। अपनी मूल संज्ञा को श्रवण कर अमाकला, गुप्तकला चौंक कर सजग हो गई। चित्कला भी चकित थी, कौन है जिस पर यह परमगोप्य प्रकट हुआ। तीनों सखियों ने अपनी वामदिशा पर दृष्टिपात किया।

सुलम्बि देहयष्टि पर शुक्र सी सिताभा, अजानुबाहु, प्रशस्त ललाट पर त्रिपुण्ड, गज, भुज, कर में रुद्राक्ष माल, नेत्रों में अपरिमित ज्ञान की महाद्युति, एक हाथ में शूल दूसरे में पात्र। कटि पर कौपीन, सर्वांग मे भस्मानुलेपन और जटा संभार से सुसज्जित शिरो देश। अवधूत कोष के पौनीत्य प्रकट का दर्शन कर चित्कला आनन्द-भोर हो गई।

–"अवधूत महात्मन्, साक्षात शम्भु, मैं आपके चरणपद्मों में प्रणाम निवेदित करती हूँ।"

–"चिरयुवै भव पुत्री! मैं अभिपुत्र, अनुसूयानन्दन, स्मरणमात्र से संतुष्ट तुष्टक अवधूत दत्तात्रेय हूँ। महाकाल के दर्शन लाभ हेतु यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। मैं तेरे भवितव्य का सुस्पष्ट दर्शन कर रहा हूँ कामाक्षि...........। तू निखिल ब्रह्माण्ड के सौन्दर्योदार्य का प्रत्यक्ष रूप है पुत्री, तू श्रेष्ठ है, शुभ है, शुभंकरी-श्रेयंसंकरी नित्य नूतना है। तेरे विकसितांगों की उच्चावच्चोर्मिलाओं में महा त्रिपुरा रमण-लास्य करती है। आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थितासि...........।" अवधूत भगवान दत्त प्रसन्न हो गए। माँ त्रिपुर सुन्दरी उनके नेत्रों में महानटन रचने लगी। देखते-ही-देखते अवधूत दत्त का देह आकार परिवर्तित होने लगा। उसके दिव्यवपुस् पर प्रावरितालोक वलय संकुचित होता गया। पक्ष्मकाल में ही उनका स्वरूप बालरूप में स्थित हो गया।

कनक कान्ति से दमकती बाल देहयष्टि, हाथ में कमुण्डल, स्वर्णरज्जु विनिर्मित, स्कन्धक्षेत्र तक विस्तारित कुंचित कुन्तल, पादपद्मों में कास्यमंजीर का बन्धन। जैसे बालसौरि ही उदयाचल से परांगमुख ही महाकाल गह्वर में उदित हुआ हो अथवा कर्पूरक् शिव का कौमार ही मूर्त रूप धर प्रकट हुआ हो अथवा स्वयं ब्रह्म का ही गाढ़ कुमार-साकार प्रत्यक्ष हुआ हो।

एक क्षण, मात्र एक क्षण काल तक भृतहरि, विक्रम और कालिदास, पिंगला को वह बाल अवधूत महाकाल ज्योतिर्लिंग पर बिल्वपत्र अर्पित करते हुए दर्षित हुआ फिर निरामय हो विलुप्त हो गया। इस मध्य जब सभी के ध्यानाकर्षण का केन्द्र बाल अवधूत थे, तभी वह अनुपम सुन्दरी भी दृष्टि लुप्त हो गई।

—"अरे! वह नेत्र सुख प्रवर्द्धनी बाला भी वायलीन हो गई।" ये स्वर था भृतहरि का जो आश्चर्य से कह रहे थे।

उपस्थित पुजारीगण, रुद्राभिशेषी ब्राह्मण भी चकित थे। उनके चकित होने का कारण था, सम्राट, राजमहिषी, कुमार विक्रम और कविराज इस प्रकार आचरण रत थे जैसे किसी प्रत्यक्षमूर्त से संवादित हो। सत्य यह था कि नित्ययौवनवती, लावण्य की सरिता वह सुन्दरी और स्वर्ण बाल्य-अवधूत दोनों ही पुजारी गणों की दृष्टि सीमा में नहीं आए थे। सम्राट ने सकुल सहित अकुदेव का अर्चन सम्पन्न किया! यथावसर कालिदास कुमार विक्रम से बोले-

—"मित्र कुमार, मेरा मन है मैं भी स्थाई रूप से यहीं अवन्ती मे ही निवास करूं।"

"अवश्य मित्र, यह अवन्ति पर आपका ऋण होगा।" कुमार विक्रम प्रसन्न प्रफुल्ल से भर उठे। वे सभी पूजन सम्पन्न कर प्रस्थान कर गए।



चन्द्रमौलि!

वह सुकुमार युवक महाकाल प्रांगण में ही एक स्थान पर चिंतित अवस्था के गहन नद्य में डूबा, अपार जनसम्मर्द में अपने प्रिय परिजन शिपिविष्ट का दृष्टि सन्धान कर रहा था पर न तो शिपिविष्ट दिखाई दिए और न ही चित्कला और उसकी परिहासित सखियों का दर्शन हुआ।

अकस्मात् उसे प्रतीत हुआ कि शिपिविष्ट उसके दृष्टि क्षेत्र में आ गए हैं,

पर नहीं, यह उसका दृगभ्रम ही था। शिपिविष्ट संधान में अर्द्धरात्रि व्यतीत हो गई। महाशिवरात्रि का ज्योतिर्मय-उत्सव उस समय भी यथावत चल रहा था। कोई ब्राह्मण ताण्डव गान कर रहा था तो कोई महिम्न से आदिदेव को रिझाने का प्रयास।

—"तुम किसका संधान कर रहे हो पुत्र।" अकस्मात् ही चन्द्रमौलि के समीप आकर प्रथुलदेही ब्राह्मण ने कहा! चन्द्रमौलि ने देखा और चित्रलिखित स्तब्ध हो उठा। निश्चिय ही आगत-पृच्छक ब्राह्मण कोई अन्य नही शिपिविष्ट ही थे। वे शिपिविष्ट जो उनके मनस् प्रज्ञप्तानुसार नारी राज्य की कारा में बन्धक थे।

—"मैं चन्द्रमौलि हूँ आर्य! चन्द्रमौलि, आपके आग्रज का पुत्र।" चन्द्रमौलि का वाष्पित स्वर मुखर हुआ।

—"पुत्र! मौलि!! आ.....ह..........।" शिपिविष्ट ने उसे अपने पाददेश से उठाकर हृदय से लगाया और मस्तक का चुम्बन किया।

शिपिविष्ट ने अपने पिता का स्वर्गारोहण, उसका अनाथ होना आदि समस्त घटन विस्तार से कहा। उसने अपनी माता का स्वर्गगमन प्रसंग भी कहा।

—"पुत्र मौलि तुम भी मेरे साथ चलो। यद्यपि वह पुष्प धनवन् देश है, पर वहाँ-मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हें भी यथोचित सम्मान प्राप्त होगा ही, राजाश्रय भी प्राप्त होगा।" शिपिविष्ट ने सर्व आख्यान को श्रवण कर चन्द्रमौलि को अपनी सम्मति कही।

—"परन्तु तात वहाँ का निवासी पुरूष तो काराबद्ध है, रतायनी[1]-सुरतार्थिनियों[2] के मराल[3] मृक्ष[4] जाल में कारागत होकर पुनः स्वदेश में प्रत्यावर्तन[5] नहीं कर पाता।" चन्द्रमौलि ने अपना सन्देह प्रकट किया।

—"यह तो सत्य है पुत्र कि स्मर राज्य में रतिरंगांगण[6] विस्तीर्ण है, वहाँ रञ्किाओं[7] का मुक्त यौन दर्शन है, वज्राचार और कुलाचार है, कामातुरी ललनाओं का मिथुनकूजित[8] महाभद्र[9] है, पर मुझे देखो, मैं कारामुक्त हूँ, मृष्ट-मन्तृ ब्राह्मण की ही भांति सम्मानित हूँ। यही नहीं वहां के अन्य पुरूष भी मादृश्य होने का प्रयास कर रहे है, मैं उनका प्रेरणास्पद हूँ, पूर्ण पुरूष समाज को मुक्त करने का प्रयास कर रहा हूँ। मेरे इस मुक्ति अनुष्ठान का उत्स अनंगवज्र है वत्स! तुम भी मेरे सहयोगिन बनो, मेरी ऐसी ही शुभेच्छा है।" शिपिविष्ट उसे विस्तार से बताने

लगे कि किस भांति योनिरञ्जनाओं के यौवत सम्मर्द में वह विजित हुए।

सत्य तो यह था कि शिपिविष्ट को माध्यम मात्र बनाकर अनंगवज्र की सर्व संरचना थी वह। जिसे शिपिविष्ट स्वकर्तृ मानकर आत्मगान कर रहे थे। चन्द्रमौलि धैर्य से श्रवण करता रहा। सकल प्रसंग सुनाकर शिपिविष्ट मन्द और रहस्यलिप्त स्वर से चन्द्रमौलि के कर्ण समीप अपना मुख कर बोले–

–"पुत्र चन्द्र, मेरे साथ अनंग देश की पट्टमहिषी, प्रगाढ़राग की महारक्ति, रजस्विनी महाराज्ञी कामाक्षी एवं उनकी यौवत सखियां भी हैं।" शिपिविष्ट ने रहस्य अनावृत किया।

–"आचार्य प्रवर किस गोप्य का कथन कर रहे हैं?" अचानक उसके समीप ही गुप्तकला का स्वर उभरा। फिर उसी स्वर स्वामिनी का प्रसन्न स्वर पुनः गूंजा–

–"अरे सामुद्रिक शास्त्रिण:! क्या आपको अपने रक्त संवंधी से मिलन हुआ?"

–"हाँ देवी, यही है मेरे पितृ सहोदर आचार्य शिपिविष्ट।"

–"ये तो मेरे आचार्य है विप्रवर, चित्कला और अमाकला भी इन्हीं की शिष्याएं हैं।"

"आचार्य वर। आप अपने पुत्रवत वंशज को भी अपना सहयोगी बनाएं। इस म्लानमनस्[10], म्लास्नु[11] पुष्प की भांति उदासीन पुरूष चन्द्रमौलि को रुच्यरति प्रवीणाएं उत्फुल्ल प्रसून की भांति स्फुटित कर देगी! क्यों शास्त्री, मेरे मराल[12] मन्दिर के पुजारी बन सकोगे? मेरे मदांगन मे प्रतिष्ठित मसृण[13] कामेश्वर का पुर्ण्याचन कर सकोगे?" गुप्तकला ने अपनी अश्लील परिहास वृत्ति को प्रकट किया।

चन्द्रमौलि पुनः लज्जा की लालिमा में डूब गया। चण्डी पीठ पर भी ऐसा अश्लील परिहास गुप्तकला ने किया था। उस समय भी वह व्रीडाब्धि में डूब गया था। चन्द्र की यह लज्जारक्त आननमुद्रा पर गुप्तकला का मुग्धमनस न्यौछावर हो गया। उसने मन ही मन संकल्प किया कि चन्द्रमौलि को अपने स्मरमहोत्सव का अंग बनाएगी ही। उसे अपना मनोऽधिनाथ बनाने के लिए वशीकरण कर्म का प्रयोग भी सम्पन्न करना पड़े तो वह कर्तृ मे संकोच नही करेगी।

रात्रि पर्यन्त महाशिवरात्रि का महोत्सव चलता रहा। चित्कला जो कोई अन्य

नही महाराज्ञी कामाक्षी ही थी और उसके साथ भी मेखला और पताका जिन्होंने अपने परिवर्तित नामों की गुप्तकला और अमाकला संज्ञा दे रखी थी!

रात्रि के अंतिम प्रहर तक कामाक्षी शिपिविष्ट और चन्द्रमौलि के भाव-भंगिमाओं को परखती रही फिर निर्णीत स्वर में मेखला से बोली-

-"मेख! देख, शिपिविष्ट हमारी उपस्थिति को चन्द्रमौलि पर प्रकट कर चुके हैं। प्रातः भास्कर रश्मियों के विस्तारित होते ही समस्त अवन्ति क्षेत्र में हमारो सत्यता प्रकट हो जाएगी। हमारे पास राज्यानुमति जो एक राज्याधिश्वर को राजराट से लेना आवश्यक है, नहीं है। विधि अनुसार हम सब दण्डपात्र होगें। हम यहाँ से पुरूष भी नहीं ले जा सकेंगीं। अतः प्रातः पूर्व तक चन्द्रमौलि पर प्रबल सम्मोहन कृत्य सिद्धि आवश्यक है। मेखला, पताका दोनों ही इस अत्यावश्यक कार्य को सम्पन्न करो।"

पताका और मेखला दोनों को ही वशीकरण कर्म मे प्रवीण्य प्राप्त था। महाकाल प्रांगण से कुछ ही दूर पुण्य सलिला क्षिप्रा कूल पर स्थित अग्नि तीर्थ श्मशान में उन्होंने तीव्र वशीकरण का अमोघ प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। मात्र दो घड़ी में ही अपेक्षित परिणाम प्राप्त हो जाएगें।

अर्द्धदग्ध चिता के समीप स्थित शून्य शिवालय के धनतमिस्त्र में मेखला और पताका नग्नदेह से आसनासीन हुई! मेखला ने एक लवंग यमल अपने सम्मुख स्थापित किया फिर देवी कामाख्या का ध्यान करते हुए अपने रतिभवन की सुचिक्कण मेचक लोमराजि पर हस्त चालन कर एक लोमकच लुञ्च किया। उसे लोम से लवंग यमल का प्रबन्धन कर यूतिक[14] किया फिर रतिकुहर[15] में स्थापित कर जघन संकुचन किया! पताका ने अपनी तन्त्रोक्त पिट्टारी से उड़द निकाले। यह उड़द राका[16] युवती के रजरस से अभिसिञ्चित और विशिष्ट अवसर पर मंत्रो से सिद्ध किए गए थे।

प्रत्येक उड़द पर मंत्रोच्चारण कर पताका तन्मयता से उड़द को मेखला के रतिमन्दिर पर प्रक्षेप्ति कर रही थी। ज्यों-ज्यों, मंत्रो की संख्या में वृद्धि होती जा रही थी मेखला के अक्षत स्मरमन्दिर में भी ऊष्मा का उत्ताप वृद्ध होता जा रहा था। अंतिम मन्त्रावृति में मेखला विकल हो उठी।

पताका ने रतिकुहर में अंगुष्ठ और अंगुली की सहायता से लंवग यमल निकाल लिया। उनका वशीकृत कर्म सम्पन्न हो गया था। दोनों ने वस्त्र धारण किए और पुनः महाकाल प्रांगण की दिशा में गमन किया।

शिपिविष्ट और चन्द्रमौलि पूर्व स्थान पर ही उपस्थित थे, जबकि कामाक्षी ज्योतिर्लिंग गुहा में ध्यानस्थ ही। सूर्योदय में कुछ समय शेष था। अंशुलातगुण्ठन में अपनी चन्द्रमुखच्छवि को छिपाएं मेखला और पताका दोनों के समीप आ गई। मेखला के करस्थ स्वर्ण पात्र में प्रसाद के रूप में पञ्चमेवा और मिष्ठान्न था।

–"देव चन्द्र मैं महाकाल ज्योतिर्लिंग का प्रसाद लाई हूँ। मेरी स्वामिनी के निर्देशानुसार आपको भी प्रसाद प्राप्त करना है, कृपया स्वीकार करें।"

चन्द्रमौलि ने अत्यन्त श्रद्धा से अपनी अंजली मेखला के सम्मुख उत्फुल्ल की। मेखला ने प्रसाद दिया। इसी प्रसाद में वशीकृत लवंग यमल था, जिसे खाने में चन्द्र ने कोई संकोचन नही किया। स्मरभवन का लोम अभी भी मेखला के पास ही था

कुछ समय तक चन्द्रमौलि सामान्य रहा फिर कामकेन्द्र गुहा में सिद्ध लंवग ने अपना प्रभाव प्रारम्भ किया। चन्द्रमौलि को प्रतीत हुआ, मानों उसके नयन पक्ष्मों में भार आता जा रहा है। उसने नेत्र बन्द किए तो समग्र देहयष्टि, पुलकित हो उठी। अवरुद्ध पक्ष्म कपाट के बाह्यदेश में यौवत संकुल लास्य कर रहा था, उस संकुल मे मुग्धाक्षी मेखला भी अपने विधु वदनी यौवनच्छटा से दीप्ति लास्यरत हो नाटन कर नही थी। जैसे मेखला का यौवन प्रसारित देह ही आनन्दधाम बन गया था, उसके नेत्रों में निखिल ब्रह्माण्य की चारु शोभा समाहित हो गई थी, उसके यौवनलक्षणों[17] मे रति अवतरित हो रम्य-रम्य हो गई थी, उसका महस्वत्[18]–मसृण यौवनक[19] कान्ति में ललनालोक धन्य हो गया था।

चन्द्रमौलि ने नेत्र खोले, स्मितवदना मेखला उसी के समीप खड़ी थी रसवती मेखला के अतिरिक्त शेष जगत चन्द्रमौलि को निःसार प्रतीत हो रहा था। उसने घनस्नेह दृष्टि से मेखला की बंसत प्रावरित मनोहर देहयष्टि को देखा और पुनः नेत्र बन्द कर लिए। महा–आनन्द का उद्दाम सागर उसके अंग–अंग में उफन रहा था।

इस वार उसने मेखला की रूचिर रूपराशि का नूत्र रूप देखा। चन्द्र ने मेखला के उत्तुंग मेचक कुचाग्रों के शीर्ष स्थल पर दिव्यालोक से उद्भाषित द्वय सुर गणों को आसनासीन देखा, मेखला के स्फुटित लोचनोत्पलों में महिर[20] और मंयक की झांकी देखी, उसके गहन योषांग के रन्ध्रासन में साक्षात् रतिपति कामदेव को राग बद्धित होते देखा। जिस अंग पर भी चन्द्रमौलि का दृष्टि निक्षेप्य होता वही सुरसत्ता अपने राजिम दर्शन से (उसकी) अक्षि-इन्द्रियों को पूर्ण तृप्ति

का निःसीम सुख देती। मेखला की मुग्ध मध्विजा[21] काया, रतश्रृंगार क्षेत्र से अतीत होकर आध्यात्म के आलोक वलय में प्रविष्ट हुई!

इस तृतीय दर्शन में हेमसिंहासनस्थ, उतुंगकुचा, त्रिनेत्रा, चतुर्भुजी षोडशी का दर्शन मेखला की दैव्या काया में हुआ। चन्द्रमौलि का मनस् गान कर उठा।

"बालार्क्कमण्डलाभासां चतुर्ब्बाहान्त्रिलोचनाम्।
पाशांकुराशरांश्चापन्धारयन्तीं शिवाम्भजे।।"

चन्द्रमौलि के पुण्य मन में देवदुर्ल्लभ सुन्दरी विद्या के षोडशाक्षर[22] मंत्र का अनुगुंजन हुआ।

–"प्रियंकर चन्द्रमौलि, निशाजागरण से तुम क्लान्त हो गए हो, तुम्हारे जागारखिन्न नेत्रों की शक्ति से ऐसा प्रतीत होता है। आओ, अब माधवती[23] में मिहिर–मयुख प्रत्यूष का स्पर्श कर रही हैं। तुम्हें विश्राम–अपेक्षित है।" मेखला ने स्नेहार्द्रस्वर में कहते हुए अपने म्रदु, करपल्लवों से चन्द्रमौलि का सुखद स्पर्श किया!

–"देवी तुम मानवी नही अनन्ताध्यात्म की जाज्वल नीहारिका हो, तुम्हारे मृदु कायथल में साक्षात देव–रमण करते हैं, त्रैलोक्यमोहिनी त्रिपुरा का ही आवास है तुम्हारा देह।" चन्द्रमौलि मेखला के तन्त्रोक्तेन्द्रिजाल में विबद्ध हो मुग्धोत्फुल्ल स्वर में बोला। इसी मध्य उचित समयावसर पर मेखला रतिमन्दिरस्थपन्न[24] को चन्द्रमौलि के शिरोष्णीश[25] में रख दिया।

कामाक्षी अपना ध्यानस्तवन एवं लिंगार्चन निष्पन्न कर उपस्थित हुई। उसका आगमन जान सभी सहचर–सहचरियों का सम्मर्द एकत्रित हो पन्थागार को प्रस्थानित हुआ। मेखला–पताका ने संकेत से अभीष्ट सिद्धि प्राप्ति विषयक कामाक्षी को सूचना दे दी। सूर्योन्दुसंगमतिथि का त्रिसन्ध्यकाल सुखदायी सिद्ध हुआ। उस दिन दर्श तिथि की कुह संज्ञा थी। तमिस्त्र पूर्ण निशीथ काल में कामाक्षी कालभैरव की महासिद्ध प्रतिमा को कारणवारि का नैवेद्य निवेदित करने की आकांक्षी थी। वह सन्ध्याकाल में ही पताका, मेखला सहित कालभैरव निलय पहुँची।

नगर से दूर अरण्य क्षेत्र में स्थित कालभैरव मन्दिर राज्याधीन ही था पर वहाँ का सर्वप्रबन्धन किसी राजप्रेष्य के हस्तगत न होकर स्वयं प्रधान पुजारी के करगत था। प्रधान पुजारी के रूप में कापालिक मातंगपा वहाँ प्रतिष्ठत थे।

मातंगपा को नरास्थियों से निर्मित आभूषण प्रिय थे। वे कपाल में ही भोजन करते, उसी से पान करते और कपाल ही धारण कर्ता थे। उनके स्वभाव में बाल विनोद था तो उनका अमर्ष भी महारुद्र से कम नहीं!

मातंगपा बलिष्ट देहधारी, श्यामवर्णी और कृपागार थे। उनका कण्ठस्वर गगन गंभीर था। वे कभी मन्दिर परिसर में तो कभी नित्य श्मशान की अग्नि शान्त चिता की भस्मवलया में शयन करते-बैठते तो कभी क्षिप्रवेगिनी क्षिप्रा के नीर में पड़े सन्तार करते रहते। कभी-कभी वह क्षिप्रा की तल गम्भीरता में जा बैठते तो धड़ियां व्यतीत हो जाती। जब वह क्षिप्रा नीर तल मे बैठते तो जल के ऊपर उनका धारक नृमुण्ड तैरता रहता। जब भी अवन्ती आवासी बाबा के नरमुण्ड का जलसन्तार देखते, वे जान जाते कि मातंगपा जलदेश में समाधिस्थ हैं।

चालीस-पैतालीस वर्षीय वय का भान कराते मातंगपा रजोरस की अधिष्ठात्री देवी मातृ श्यामा के प्रगाढ़ोपासक थे। कभी-कभी भावातिरेक में वह श्यामा से विविध प्रलाप करते तो कालभैरव की प्रतिमा के सम्मुख वैठ कर उनका पूजन उपचार करते। मातंगपा एक मराल-मेदुर काष्ठ सोठा लिए कालभैरव के सम्मुख जा बैठते फिर उनके मुखरन्ध्र में भातभोग रख कहते-"खा.........खा.........नहीं खाया तो सोठा मारूंगा।" और सचमुच अपने भक्त के स्नेह कोप से बचने-उसके भक्तिपाश मे बद्ध हो कालभैरव भात भोग स्वीकार कर ही लेते। मातंगपा सोठा भूमि पर पटक एक हाथ से भैरव को भोग देते द्वितीय हाथ से स्वयं भी खाते।

कभी उन्हें जब कारणवारि का अभाव हो जाता तो क्रोधित-कुपित मुद्रा में भैरव भगवान से वाक्‌युद्ध करते, उनकी केहरि दहाड से वन्य क्षेत्र गूंज उठता, मन्दिर की प्राचीर में स्फुरन आ जाता, क्षिप्रा की धारा भी आतंकित हो उठी, पुजारी गण भयभीत हो पलायन कर जाते। वे घनगर्जना करते हुए भगवान भैरव से कहते-

-"क्यों रे मद्यप, स्वयं तो मदाकण्ठ हो आनन्द कर रहा है-सहस्त्रों मन मदिरा के चट्ट कर महस्वत्[26] बना बैठा है-और मुझे एक बूंद भी नहीं। ला.. ..मेरा पानपात्र भी भर।"

कभी मातंगपा कालभैरव की विभीषण प्रतिमा पर अश्रु-अभिशेष करते हुए उनके चरण क्षेत्र में विह्वल रुदन करते-करते-"भगवान भोलेनाथ सायुज्य मुक्ति दो प्रभो। श्यामा के श्यामलोक में ले चलो भगवन्" पृथग्विध[27] अनुनय से भी, उन्हें भगवान भैरव की करुणार्द्रता का आभास नहीं होता वे अत्यन्त अश्लील,

असंस्कृत वचनों का कोपोच्चारण करते श्मशान क्षेत्र की ओर दौड़ पडते। ऐसा अद्भुत चरित्र भी मातंगपा का।

मातंगपा की सिद्धियां भी लोकख्यात थीं। उनके समान उनकी सिद्धियां भी अत्याद्भुत थी। एक दिन वे एक लोचनान्दकारिणी स्त्री के शव पर रञ्जित[28] हो उठे। उस समय जब मृतका के परिजन शव को दाह करते उद्यत थे, अकस्मात् मातंगपा चिता स्थल पर आगमित हुए। चिता के समीप ही मुण्डित शिर निर्बोध बटुक हाथ में धृतसिञ्च ज्वलित काष्ठ लिए अपनी जननी को मुखाग्नि प्रदान करने हेतु खड़ा था। स्त्रीमाता का शव चितारोहन कर दिया गया, उसी समय मातंगपा का आगमन हुआ।

चितारोहन के मध्य स्त्री की मनस्[29] मोही मुखच्छटा का किञ्चित दर्शन कर मातंगपा ने उसके अबोध बालक (पुत्र) को देखा फिर शार्दुल[30]अभिगर्जन करते हुए चितादहन का वर्जन किया, पर तब तक पुत्र माँ की चिता को मुखाग्नि दे चुका था। शुष्क काष्ठ भण्डारन् घृत का स्नेह पा ज्वलित हो उठा।

मातंगपा स्वावमानना को नहीं सह सके। उनका अमर्ष वृहद् हो उठा–आरक्त नेत्रों से कोपाग्नि के स्फुलिंग झरने लगा। वे अपनी रदस्पंक्तियों की कट् कट् किट् किट् की कुलिश ध्वनि करते दाहकर्मियों की ओर दौड़े। उन्होंने किसी पर पादप्रहार किया, किसी को मुष्टिकाघात से आहत किया तो किसी को पकड़ कर चक्राकार घूर्मित करते हुए प्रक्षिप्त किया।

भयातंक से चीखते–पुकारते मृतका के परिजन पलायन करने लगे–शेष रहे पति, पुत्र। वे शून्यदृष्टि और भग्नहृदय से चिता को चाटती अग्निशिखा को देख रहे थे।

–"अरे नारकीय कीटों, दुष्ट राक्षसों, मेरी श्यामा माँ को अग्निार्पित कर दिया। मूर्खो वह तो स्वयं कृपीट[31]योनि है, कृशानु[32]–कृशानु को दग्ध नहीं करता।" कहते हुए मातंगपा ने अपने करोट[33] पात्र से द्रव पदार्थ निकाला और चिताभिसिञ्चन किया। परिणमतः कुछ ही क्षणों में चिता दहन प्रशान्त होकर बुझ गया।

"हट, पृथक हो।" गर्जते हुए मातंगपा ने चिताकाष्ठ पर पाद प्रहार करते हुए मेघ गर्जन किया। आश्चर्य! अर्द्धदग्ध चित्याकाष्ठ उछल–उछलकर दक्षिण वाम गिरने लगा। कुछ क्षणों में मृतनारी का देह दृष्टिगत हुआ!

—"आ मेरी श्यामा माँ..........आ........ऽ..........ऽ..........।" कहते हुए मातंगपा ने अपनी श्यामल भुजाएं आमन्त्रणी मुद्रा में प्रसारी। पर शव निश्चल, स्थिर रहा।

आजा माई..........देख तो तेरा बटुक भैरव कैसा व्यथित हो रहा है..........और तेरा यह कापालिक पुत्र!? आ........ऽ........अ......ऽ........।" मातंगपा के निश्छल नेत्रों से अश्रुओं की धारावारि फूट पड़ी।

—"बाबा......! अब इसका जीवन शेष नहीं। इसका अन्तयेष्टि संस्कार सम्पन्न कर इसकी माटी सुधारने दो।" मृत युवती के पति ने अश्रुपूरित नेत्र और अवरुद्ध कण्ठ से कहा। वह मान रहा था, यह अतिरेक भाव मातंगपा का विक्षिप्त[34] भाव है।

—"तू, मौन रह कापुरुष। मेरी श्यामा माँ को हव्यवाहार्पित[35] कर मुझे ही ज्ञानोपदेश करता है।" मातंगपा के नेत्र कोपस्फारित हुए युवती का पति मौन हो सघनपत्री वृक्ष की छाँव में, बालक सहित बैठ गया।

उधर भुजाप्रसारित मातंगपा शव-आह्वान कर रहा था। अकस्मात् एक प्रेतवस्त्र, जो श्मशान में ही एक वृक्ष पर टंगा था, अपने स्थान से उड़ा और शव पर प्रच्छादित हो गया। आश्चर्य था प्रजिन[36]बाहुल्यहीन वातावरण में भी किस प्रकार प्रेतवस्त्र उड़कर शवाच्छादित हो गया? शव में कुछ स्फुरन हुआ और फिर चिताशय्या पर शयनित शव सुप्तावस्था में ही ऊपर आंतरिक्ष मे उठा!

सीमान्तिनी-स्वामी प्रख्यदृष्टि[37] से देख रहा था। आंतरिक्ष में संतार करता प्रणाश[38] को प्राप्त देह मातंगपा की आमंत्रित भुजाओं में आ गया। मृतका की मुक्त सुलम्बि-चिक्क केशराशि मातंगपा के गुल्फ क्षेत्र तक प्रसारित हो रही! मातंगपा शंव को उठाए, श्मशानस्थ शून्य देवालय मे ले गये।

मृतका-कान्त का मन प्रक्षोभण[39] से प्रोत हो उठा। एकान्तिका में कापालिक शव पर क्या क्रियाएं करेगा? वह पुत्र को उठाए शून्य देवालय की ओर बढा, पर मातंगपा के कोप भयभीत हो देवालय में प्रवेश नही कर सका। द्वार से कुछ दूर वृक्षप्रच्छाय[40] में वह मातंगपा के बाहर आने की प्रतीक्षा करने लगा।

अर्द्ध घटी पर्यन्त तक भग्नालय में पूर्ण निःशब्दता छाई रही फिर अकस्मात् कुल्याकान्त ने अपने जीवन का भूरिसमय दृश्य-अवलोकन किया। उस समय तक अनेक जन एकत्रित हो चुके थे, उन्होंने भी उस अविश्वसनीय घटन को प्रत्यक्ष चक्षुः देखा। भग्न देवालय के कपाट हीन द्वार से सौन्दर्य सक्ता वही युवती

निकली जो चितारोहण कर चुकी थी। मातंगपा ने किस क्रिया से उस मुग्धा को जीवन प्रदान किया किसी को ज्ञात नही!

इस प्रकार अनेक बार असम्भव को संभव मातंगपा ने किया। महासिद्ध जालन्धरिपा के शिष्य कण्हपा के कृपाभिशेष सिञ्चित मातंगपा बाल्यवस्था से ही कपाल उपासना में सक्त हो गए थे। मातंगपा का जन्म स्थान कहाँ था, यह अज्ञात था। माना जाता था कि वह शूद्र माता और ब्राह्मण्य पिता के पुत्र थे। जब कभी स्वरंजित होते तो वह अपने माता-पिता के विषय में बताते थे!

अमाकला निशा की प्रथम प्रारम्भिका में जब कामाक्षी सखियों सहित महाकाल नगर के सुरक्षक काल भैरव के प्रासाद में पहुँची तक मातंगपा भैरव वाहन श्वान मण्डल के मध्य बैठे क्रीड़ा कर रहे थे!

जैसे ही उन्होंने रूपमयंका कामाक्षी का कलेवरालोक देखा, वह श्वान मण्डल के अभ्यन्तर केन्द्र से फूत्कारी महावात्या के समान प्रसन्नघोष करते हुए कामाक्षी की ओर दौड़े। और उसके पदपद्मों से लिपट गए!

–"अरे मेरी माता, री जगन्मोहिनी त्रिभुवना। अपने ही श्यामपुत्र की कैसे विस्मृति कर दी थी। अरी बता न, कहाँ थी तू अब तक। स्वयं प्रासाद में निवासित है, और मुझे श्मशान के ज्वलित चित्यागार मे ढ़केल दिया, स्वयं तो सुस्वादु व्यञ्जनों से अघा रही है और मुझे महामांस भक्षी बना डाला। आज..... ......।" मातंगपा के नेत्रों से महाश्रुप्रवाह का स्राव हो रहा था जिसके पुनीत सलिल में कामाक्षी के चरण डूबे जा रह थे।

–"आप कौन है महात्मन्।" कामाक्षी ने अपने लाक्षारस रचित कोमल चरणों पर मस्तक रखे मातंगपा को उठाने का आयास किया।

–"क्रूरा, हन्ता, पापिनी, अपने ही कुक्षिजात् तनय की ऐसी उपेक्षा? पुत्र क्यों नही कहती अंशात्मज क्यों नही कहती? सुत कह.......सुत कह.........। नहीं कहती तो.........।" मातंगपा अभिगर्जन करते हुए कालभैरव के समीप रखे मुगद्र को उठाकर आघात सन्नद्ध हो गए। मेखला और पताका मातंगपा के अमर्ष को देख, तत्क्षण कामाक्षी के सम्मुख आ गई।

–"हटो पिशचिनों। माता और पुत्र के मध्य कौन होती हो तुम?" मातंगपा ने मुगदरहस्त ऊर्ध्व किया।

–"हटो, मेखला, पताका। यह तो महाभावी पुत्र है। पराँम्बा का दुलार राग

है, गौरी का गणेश है, शम्भुबल्लभा का सुत स्यून है।" कामाक्षी के स्मिताधरों पर यमत्व ने क्रीड़ा की! पताका मेखला दोनों ही पृथक हट गई।

पुजारी संवर्ग अनिष्ट-शंका से सहम कर एक ओर खड़ा था। बावले मातंगपा का क्या विश्वास? वह कभी भी किसी को भी कब क्षत-विक्षत कर रक्त नद्य बहा दे? कोई नहीं जानता।

–"तू मुझे नहीं मानती तो आज तेरा मस्तक विदीर्ण करूँगा।" अपने सुदृढ़ हाथों में मुगद्र को उठाए, दन्तपंक्तियां किटकिटा कर मातंगपा कामाक्षी की ओर वेग से दौड़े। कामाक्षी, निर्भय, प्रशान्त, स्नेहातिरेक अक्षि से देखती निश्छल खड़ी रही। मातंगपा ने प्रहार के लिए हस्त ऊर्ध्व किया। उपस्थित जनों ने नेत्र निमुन्द कर लिए।

पर यह क्या? आन्तरिक्ष में प्रहार हेतु तना मुगद्र मातंगपा ने भूमि पर पटक दिया तो वृक्षपाती शाखा के समान कामाक्षी के चरणों पर आ गिरे। उनके नेत्रों मे पुनः अश्रुअब्धि प्रकट हुआ। शिशुवत रुदन करते मातंगपा की करूणा स्वर से वाक् रूप में प्रकटी।

–"महानागिनी तू भले ही अपनी पुत्र-प्रत्यभिज्ञा को नकार दे, भले ही अपने आत्मज का भक्षण कर ले, पर तेरा पुत्र कैसे.......? कैसे तुझे, स्फुर्च्छ्[41] करे? कैसे तेरा मस्तक वैदीर्ण्य करे? तू तो निष्ठुरा ठहरी.............।" मातंगपा के करूण रुदन से जैसे कालभैरव भी द्रवित हो उठे, भैरव प्रासाद की भित्तियों पर उत्कीर्ण चित्रलिखित पुत्तिलकाएं भी आर्द्र हो गई, श्वान दल "कूँ......उ.....कूँ.. ..उ.........।" के करूण स्वरों से अपनी करूणा व्यक्त करने लगा।

कामाक्षी के धंमलनेत्रों में भी प्रजनिका[42] का दिव्य भाव स्फुटित हुआ। उसे प्रख्य प्रतीत हो रहा था कि उसका कुक्षिजात स्तनन्धय[43] शिशु ही उसके चरणागत हुआ हो। उसकी प्रच्छन्न ममता के समस्त अवरुद्ध स्रोत एक साथ ही उद्गमित हुए, स्तनवृन्त[44] सार्द्र हो उठे, स्तनांशुक[45] ईषत-उत्त[46] से क्लिन्न[47] प्रतीत हुआ। जैसे स्तनमण्डल ममत्व के महाभावाह्वान से पूरित हो स्फारमय हो गया हो।

पुनीतावेश से कामाक्षी की स्वर्णाभाषी लोमराजि प्रहर्षित हो उठी। देह अंगों का समस्त सत्व उमड़ कर वात्सल्य के रूप में प्रत्यक्ष हो गया। राजसी कामाक्षी निःसंकोच पृथ्वी पर बैठ गई और कापालिक शिरोष्णीश मातंगपा के कपर्दन सज्जित शिर को अपने उत्संग में स्थापित कर स्नेहाधिक्य से ललाटप्रान्त पर

हस्तप्रचालन करती बोली–"वात्सल्य भाजन, अवधूत पुत्र, निर्परिणयी, अबोध कन्या को भी जगतीजन, कुमारी माता कह कर अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं। नारी तो जन्मजात माँ ही होती है। तू भले ही मेरा योनिज नहीं, पर पुत्र अवश्य है। तेरे भावोन्मेष और भक्ति प्राचुर्य से कपालिक संघ कृतार्थ हो गया पुत्र। क्या स्पृहा है तेरी, बता मेरे अवधूत तनय? आज मैं तुझे त्रैलोक्य वैभव भी देने में सक्षम हूँ। मांग पुत्र.........मांग.............।" कामाक्षी ने अपने प्रवालारक्ताधर पल्लवों से मातंगपा के प्रस्तर पांशु ललाट का चुम्बन लिया।

–"करूणार्द्री, उत्संगमयी माता, त्रिलोकी वैभव तेरी परमपुनीत अंक शय्या के सम्मुख तुच्छ हैं मैं तो तेरा उत्संगाकांक्षी हूँ त्रिलोचने। तू मेरे अवम देह पर आरूढ़ हो शवसाधन कर और मैं तेरे कृत्स्नोत्संग में ही प्राणोत्सर्ग करूं, तेरे ही शतांक का उत्पादशय बनूं।" मातंगपा ने हर्षित कण्ठ से कहा।

–"तू मेरा उत्संगोद्भास बन, पर कपालिन् पुत्र, मेरे कुल गोत्र में पुत्र प्रजनन निषेध है। बता अपने स्तनपान का अधिकार कैसे दे दूं?" कामाक्षी ने मन्द और विवश स्वर मे कहा "ऐसे निषेध को भंग कर दे माता, उद्बन्ध जननी बन, उद्धारिणी सकला।" मातंगपा ने अश्रुसम्पात से कामाक्षी की गोद गीली हो गई।

–"अवश्य........! अवश्य..........पुत्र.....!! मैं इस गर्हित परम्परा को समूल प्रणाश कर एक नूतन परम्परा की आधारशिला रखूंगी। मैं वचन देती हूँ, तू मेरा गर्भस्थ बन, मेरा अंग बन, मेरे ममत्वमय-उत्संग का तीर्थ सुषम बन।" कामाक्षी ने भावावेश से वचन दिया।

मातंगपा का लोमानुलोम पुलक पूर्ण हो उठा। नेत्रों में अमन्दअश्रुपात के साथ ही शर्मन दीप्ति प्रकट हुई। वह कामाक्षी से उठकर प्रसन्नता से लास्य करने लगे!

–"आ......माता......आ........। कालभैरव पिपाशु हैं, उन्हें कारणवारि की तृषा है। अपनी माता के पुण्यकर हाथों से वारि पान कर वे प्रसन्न होगें। वे प्रत्यक्ष शम्भुसुत है भगवती। आज भैरव भूरि प्रसन्न हैं।" अति-उत्साह में मातंगपा ने कामाक्षी के मृदुल, मोहन पुष्प भारित देहयष्टि को अपनी सबल भुजाओं में उठाया और कालभैरव प्रतिमा के सम्मुख उतार दिया।

मातंगपा ने सविधि, शास्त्रविहित-उपचारों से भगवान कालभैरव का पुण्यार्चन सम्पन्न कराया। कामाक्षी सहित मेखला, पतका ने भी अभ्यर्चा की। इस

मध्य मातंगपा समाधिस्थ हो गए। उचित अवसर जान कामाक्षी और सखियां मन्दिर से बाहर आई। मातंगपा को (समाधिस्थावस्था के कारण) ज्ञान नहीं हुआ कि कब उसकी दिव्या माता उसे छोड़ कर चल दी!

मन्दिर परिसर के वाह्य प्रभाग को पार कर कामाक्षी रथ की ओर चली। यहाँ अमावस्या का तमिस्त्र कुछ अधिक था, सम्भवतः किसी कारणवश प्रदीपस्तम्भ का दीप बुझ गया था। अकस्मात् ही उद्भाषित-आलोक पिण्ड त्र्यसख्याओं के सम्मुख उदित हुआ। सखियां चमत्कृत, चित्रलिखित, स्तंभित देखती स्तब्ध रह गई। यह कर्पूर शिव का आलोकी रूप है, अथवा कालभैरव का सत्वरोचिष स्वरूप?

ज्योर्तिमय पिण्ड से पुरूषाकार-उद्भवित हुआ। निश्चिय ही वह त्रिदेवावतार, अभिपुत्र, अनुसूयानन्दन भगवान दत्तात्रेय की अभिरम्य सुषमा थी, कामाक्षी को प्रत्यभिज्ञ हुआ। उसने पदस्तवन किया-

-"तपेश्वर भगवन के पादसमुच्च में मेरा प्रणाम अर्पित है।" कामाक्षी की श्रद्धायुक्त विनयावनत मृणालरूपा अंगयष्टि प्रणम्यभावित हुई।

-"पुत्री........लोक में भले ही तू मुझे पितृस्थान दे, पर वास्तव में तू आदिशक्ति का ही तो दिव्य रूपक है, अस्तु.........पुत्री अपने कपालधारिन् पुत्र के प्रदत्त वर की इतनी शीघ्र स्फूर्च्छा? या उपेक्ष-विस्मृति? तेरे लिलारराजि में शवसाधन-उत्कीर्ण हैं। उस लिखन का सम्भाव्य अब समीप ही है। मातंगपा के शव से श्रेष्ठ और कौन सा श्वासन होगा पुत्री? कपर्दिन के अन्तः स्वरूप की संजाग्रति के हेतु उसके गुणानुरूप होना अत्यावश्यक है। बिना शवसाधन के शिव का निभर्ट-निभर्य शौर्य प्रकट नही होगा पुत्री!"

-"भगवन् क्या मातंगपा.........? उसके जीवन की इहलीला..........?.......।" कामाक्षी ने ससंकोच कहा।

"हाँ, तेरा अनुमान मिथ्या नहीं। वरदानानुसार तेरे ममत्वमय क्रोड़ में ही उसका महाप्रयाण होगा।" भगवान दत्त की गम्भीर गिरा मुखर हुई!

-"पर प्रभु, मैं तंत्रोक्त पद्धति और शवसाधन से अनभिज्ञ हूँ। मैं आचार्य हीना किस विधि से शवसाधन सम्पन्न कर सकूंगी।" कामाक्षी ने अपनी दुविधा प्रकट की!

-"आचार्य तो पूर्व निर्धारित है पुत्री! तू सहर्ष मातंगपा के समीप गमन

कर।" कहते हुए महासिद्ध अनुसूयातनय पुनः अर्चिस् पिण्डकार मे परिवर्तित हुए और गगनोच्च ऊर्ध्वा मे स्थापित हो गए! कामाक्षी और सखियां उन्हें प्रणाम निवेदित कर पुनः कालभैरव मन्दिर की ओर चल पड़ी।

मन्दिर के गर्भगृह में मातंगपा की अघोर समाधि अकस्मात् खण्डित हुई। मातंगपा का जाज्वल्यवदन अत्यधिक गाम्भीर्य मण्डित था, पर अन्तर्मोद की सत्वमयी रागिनी की ज्वलप्रभा से उनका श्यामानन् दीप्ति था।

–"माता......ऽ.......ऽ.........।" मातंगपा का मेघमन्द्र स्वर कण्ठ निर्गत हो ध्वनित हुआ। कामाक्षी उसके समीप ही थी।

–"क्या घटित हुआ रे निष्पाप-अवधूत।" कामाक्षी ने मातंगपा का मुखावरित गम्भीर्य मण्डन और नाभि कुण्डोद्गम्य स्वर ध्वनि से अनुमान किया कि मातंगपा को अपनी 'श्यामा' के वास्तविक क्रोड़ में क्रीड़ा हेतु गमन का अवसर आ गया। कामाक्षी के नेत्र सार्द्र हो उठे। उसने अपना चन्द्रमुख विपरीत दिशा में कर लिया!

–"री.....जगत्प्रभा, अपने ही पुत्र को छलती है? इस कलेवर को परित्यक्त किए बिना मैं कैसे तेरे उत्संगांगन में बाल क्रीड़ा करूँगा?" भला बता तो महामाया? मातंगपा के वाक् ध्वनन् में प्रसन्न प्राचुर्य मुख पर मेघान्त का सूर्य उग आया।

कामाक्षी के नेत्रोत्पल अश्रूपूर्ण हो उठे। सम्भवतः उसकी अद्यकालिक जीवन यात्रा में प्रथम अवसर पर यह अश्रुमेघागम की ऋतु का आगमन हुआ था! मातंगपा पुनः मुखर हुए–

–"अम्लानमती मातु! पुण्यावलीढ़ व्याप्तांगी!! तेरी नयनचन्द्रिका से मृषाश्रुओं का उद्रेकन क्यों? क्यों जगती की भांति वियोग व्यथा कारहणाश्रुपात करती है?" अरे.........मेरे समीप........मेरे प्राणों में द्वन्द्व छिड़ गया है। प्राणापान इत्यादि मरुतगण अपने-अपने आसनों का परित्याग कर पथविमुख हो गए हैं? अपने वर को कार्यरूप दे माता भवानी। मैं तेरे उत्संग-अंग में ही................।" मातंगपा का कण्ठ अवरुद्ध होने लगा। दस वायु वर्ग में संघर्ष प्रारम्भ हो गया।

"माँ.....ऽ..........ऽ.........।" मातंगपा की रवण पुकार के नाद से कालमन्दिर का भूगर्भ गूंज उठा। कामाक्षी ने सत्वरता से मातंगपा के शिर को अपने अंक में ले लिया।

माता का हृदय जैसे शोककुन्त से विंध गया था। कामाक्षी के नयनकोरकों

से धारासम्पात अश्रुवेग मातंगपा के मस्तक पर गिरने लगा। जैसे उसका स्वजात पुत्र ही स्वर्गारोहण कर रहा था। मातंगपा ने अश्रुपूरित नेत्रों से महाकरूणा का प्रसव करते इहदेह का लीलापारण निष्पन्न किया। कामाक्षी ने निजोत्संग में नीलमणी की मेचक आभा से दीप्ति मातंगपा का श्यामल गात्र स्थिर हो गया।

–"हंऽ.....म्........हुँ.........ऽ.......म.........ऽ.......हेरूक...........जय हेरूक.........ऽ.. ....क्या....ऽ............।" कालभैरव की भित्तियां हेरूक नाद के महाघोष से कम्पित हो उठीं। उपस्थित सभी जनों ने देखा, अपने कोमल कर में तडितदामिनी की प्रज्ज्वलाभा से महस्वत्, सिन्दूरलिप्त त्रिशूल को उठाये, नतांगीसुवृता, काञ्चन कान्तिमयी, चञ्चल, केश कपर्दन से सज्जित, मुण्डमालधारिन कपालिनी ने प्रवेश किया। उसके आरक्तायत नेत्र ज्वलित पिण्ड की भांति दह-दह कर दर्शकों को भयभीत कर रहे थे।

–"मातंगपा ने गमन किया? मुझे विलम्ब हुआ।" उसने जैसे स्वयं से कहा फिर उच्चस्वर में वाणीघोष करती हुई वह मुखरित हुई।

–"मैं शवेश्वर, साक्षात हेरूक स्वरूपक गुरो कण्हपा की शिष्या कनखलापा हूँ। मातंग मेरा गुरुभ्रात है, मैं शव को साधने हितार्थ यहाँ उपस्थित हुई हूँ।" कहते हुए कनखलापा ने मातंगपा की गुरुतर मृत देह को उठाकर अपने कोमल कवन्ध पर स्थापित किया और गमनोद्यत हुई।

–"ठहर..........स्तंभित हो, मातंगपा मेरा पुत्र है, इसके शव पर मेरा अधिकार है।" कामाक्षी के नेत्रों में राजस का आरक्त-आगमित हुआ। यद्यपि महासिद्धि प्राप्त कण्हपा की सत्पात्र और सर्वस्व-समर्पिता भगिनी द्वय मेखला और कनखला की कपालिक सिद्धियों की समाख्याति कामाक्षी को कर्णगत थी फिर भी वह वज्रनिर्घोष स्वर में मुखरित हुई।

–"हुँ ऽ........म्..........म्.......।" कनखलापा क्रुद्र, नृशसं अमर्षित स्वर में विषब्याली की भांति फुंकारी।

–"तू वृषस्यन्ती! कालक्षिप्तं, कामजिघत्सुका! तेरी प्रत्यभिज्ञा का कथन कर।" ईषतापांग से क्रुष्ट स्वर में कनखलापा ने ताडन किया।

–"सिद्ध कण्हपा की सुयोग्य शिष्या के श्रीमुख से ऐसे कपूयवचन शोभा नही देते पांशु उरसिला। मातंगपा भले ही मेरा उरस्य पुत्र नहीं पर फिर भी वह मुझे तनुजवत है।" कामाक्षी का कैतवहीन शान्त स्वर मुखरित हुआ।

—"तब हम द्वय इस मृतविग्रह को अस्त्रिविशीर्ण कर परस्पर बंटन कर लें।" कनखलापा कुछ शान्त हुई।

—"असंभव! शव प्राप्ति की स्पृहाशर्वाणी भी करें तब भी यह आमनस्यप्रद कर्तृ सम्पादन सम्भव नही। इस अर्वच चिन्तन का परित्याग कर मृतदेह को यही रख दो देवी कपालिनी। यह तुम्हारा पराभव नही, अपितु मुझ पर कृपावर्षण होगा।" कामाक्षी का जलद गम्भीर स्वर कण्ठ निर्गत हुआ।

अकस्मात् शव में भार वर्द्धन प्रारम्भ हुआ। कनखलापा का स्कन्ध अतिभार से उत्पीडित हो उठा। उसने शव को आंतरिक्ष में ही छोड़ दिया। "धम्मऽऽ...." ध्वनि गुंजार से धरा ध्वनित्व हो उठी।

"ले तू इसका उपगूहन कर। स्नेहोद्दान से उद्दित कर अपनी वुभुक्षा शान्त कर। इसकी प्रवेणी पीठ पर अवर्ण शयन कर, इसके कुलिश केतन पर पाद प्रहार कर शवोत्थापन कर। पर मैं इस त्यक्तप्राण से शवकेलि अवश्य करूंगी, इसके खड्डु-डू यान पर चामुण्डा नहीं मैं आरोहन करूंगी, मैं तेरे मृदुलकाय बेश्मन् में प्रविष्ट हो, इस श्यामादत्तोपग्राह्य का परिरम्भण करूंगी।" कनखलापा क्रोध पूर्वक अपने चरणों से धरित्री पर विकलपद प्रक्षेप्य करती महावात्या के समान मन्दिर से चली गई!

विक्रान्त भैरवाटवी का निर्जनी चित्या क्षेत्र। अनेक स्थानों पर गगनगामी चिताग्निकेकिन्[48] अपनी दहन केलि से शवाभिसार कर चट् चट्, चिट् चिट के अश्रुतप्रिय शब्द संचार रच रही थी। एक अर्द्धोषित[49] चिता से कुछ ही दूरी पर मातंगपा का मृतदेह रखा हुआ था। शवसाधन की समग्र वस्तुएं जुटा ली गई थी। नित्यश्मशानावासी एक अघोर साधक के सहयोग और निर्देश से वांछित वस्तुओं का संग्रह किया गया था।

जब अघोर साधक को यह ज्ञात हुआ कि शवसाधन मृणाक तनुयष्टि धारिणी, शम्पेय यौवन द्युति की सुषमोत्सा सुन्दरी, निष्पन्न करेगी, तो वह चकित हुआ। उसके मन में विचिकित्सा[50] भी उत्पन्न हुई—क्या तनुदरी रामा की भीत वृत्ति और कोमल कलेवर का स्नैग्ध, शवोष्मा की तपिश सह सकेगा। इस तपिस्त्रशंबरी[51] में क्या वामलोचना अपने साहस से शवविजय सिद्धि साध सकेगी। परन्तु वह अपने सकल सन्देहों को निर्मूल कर शवसिद्धकाचार्य बनने के लिए सहमत- संनद्धित हो गया।

सहसा समीपस्थ चिताग्नि मे विक्षोभ[52] हुआ। दग्धकाष्ठीय ज्वलित-अंगारे

यत्र-कुत्र उछल-उछल कर गिरने लगे। शव साधन के पूर्व ही उत्पात? निर्देशक-अघोर साधक सजग हुआ उसने पूर्व सिद्ध सर्षप[53]-अन्न के दाने अभिमन्त्रित कर उत्पातीचित्या को लक्ष्य कर फेंके किन्तु..............।

अकस्मात् ही मन्द्रघोषी विस्फोट ध्वनि हुई। ज्वलित चिता के अभ्यन्तर विदग्धित शव के दग्धार्द्धदग्ध खण्ड उछल कर दूर जा गिरे। चिता के मध्य से सर्व हिरण्यावयवी बाला अग्निसुता की भांति प्रकट हुई। अघोर साधक सभी ने देखा, प्रकटित काञ्चनकायी रमणी के एक हाथ मे रजतीय आभा से दीप्ति त्रिशूल तथा द्वितीय हाथ में प्रज्वलित कपाल खप्पर था। मेखला और पताका सहित कामाक्षी ने उसे पहचाना! वह कोई अन्य नही कनखलापा थी!

कामाक्षी सजग हुई। मन्दस्मयच्छटा से सज्जित कनखलापा गजगति से चलती कामाक्षी के समीप आई। कामाक्षी ने अभिवादन किया।

–"मत्तकाशिनी[54] देवी, कामाक्षी का प्रणाम स्वीकारे।"

कनखलापा ने कोई उत्तर नही दिया। उसने अघोर साधक को आग्नेय दृष्टि से देखा और अक्षिकटाक्ष से उसे चले जाने का संकेत किया! उसके गमनोपरांत कनखलापा सस्मित बोली–

–"नारी निर्ग की सम्फुल्लित[55] यौवना, वरवर्णिनी[56] महराज्ञी कामाक्षी! तेरा कल्याण हो, तेरा मनोरथ पूर्ण हो। यद्यपि तू मेरी स्नेहशीला पुत्री की भांति वात्सल्य की अधिकारिणी है, तथापि मैं तुझे सम्मानित करती हूँ।" कामाक्षी का ललाट-चुम्बन करते हुए कनखलापा ने वात्सल्य रस का भाविक निर्झर प्रस्रवणित किया।

"पर माता भैरव मन्दिर में आपका घोर व्यवहार और चेतस्-अमर्ष? वह रौद्र रूप क्यों–दर्शित हुआ था?" कामाक्षी ने विनययुत वचन कहे।

–"पुत्रिका, शवसाधक में अभय और आत्मनिर्भरता के गुण आवश्यक हैं। तुझमें इस पात्रता का विकसन भूरि उपस्थित है अथवा नहीं? मैं अपने भीषण व्यवहार से परीक्षण कर रही थीं। कनखलापा ने अपने भीम रूप और अमर्ष का रहस्य प्रकट किया फिर कामाक्षी को आसनासीन साधन प्रारम्भ किया। कनखलापा ने निर्दिष्ट स्थान चयन कर पूर्वोमुखी हो 'फट्' मन्त्र से स्थानाभ्युक्षण किया। पूर्व दिक् में गुरु, दक्षिण मे गणेश, पश्चिम में बटुक तथा उत्तर में योगिनी की अभ्यर्चना का उपदेश कामाक्षी को दिया।

कामाक्षी द्वारा उपर्युक्त दिशाओं में मन्त्रार्चना सम्पन्नकरण के पश्चात शवशायी भूमि शकल को प्रोक्षित कर भूमि में "हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं कालिके घोरदंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान दारय हन हन शव शरीरे महाविघ्न छेदय छेदय स्वाहा हूँ फट्" यह मंत्र लिख मंत्रस्थापन किया।

"ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः
पिशाचाः सिद्धयो यक्षा गन्धर्वास्परसां गणाः
योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचराः स्त्रियः
सिद्धिदाता भवन्त्वत्र तथा च मम रक्षकाः।"

उपर्युक्त मन्त्र प्रार्थना का त्रिवाचन कर इसी पुष्पाञ्जली प्रदान कराते हुए कनखलापा ने कामाक्षी से पूर्व में श्मशानाधिपति, दक्षिण दिशा में भैरव, पश्चिम में कालभैरव तथा उत्तर में महाकाल भैरव का पूजन व बलिक्रम निर्विघ्न निष्पन्न कराया।

"सहस्त्रारे हुँ फट्" का उच्चारण कर कनखलापा ने कामाक्षी के शिरोदेश में शिखाबन्धन कर उसके हृत्पद्मस्थल पर अपना ऊष्ण हस्त स्थापित किया!

कामाक्षी को प्रत्यक्ष प्रतीत हुआ–मानो कनखलापा की करजनित ऊष्मरश्मियां उसके हृदय में प्रवेश कर उसे संरक्षा बल प्रदान कर रही है। कनखलापा के मृदुस्वर में अधोर मंत्र उच्चारित हो रहा था–

–"ओम ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तनुरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट्"

"आत्मानं रक्ष रक्ष" का उच्चारण कामाक्षी मुख से कराकर कनखलापा ने प्राणायाम भूतसिद्धि और विविध न्यास संपादित कराए। तत्पश्चात जयदुर्गा मंत्रोच्चारण करते हुए चतुर्दिक सर्षप विक्षेप्य किया। इसके पश्चात–"ओम् तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवस्तृप्तिकारकः। पितृणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानां मम रक्षकः! भूत प्रेत पिशाचानां विघ्नेशु शान्तिकारकः।" उपर्युक्त मन्त्रार्चन से तिल विक्षेप कर कामाक्षी ने मातंगपा के शव समीप गमन किया।

शवस्नान के पश्चात् त्रिपुष्पाञ्जली और फिर कामाक्षी ने शवस्पर्श कर इस मंत्र से प्रणाम किया–

"वीरेशपरमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर।
आनन्दभैरवाकार देवी पर्यंकशंकर।
शिवोऽम त्वं प्रपद्यामि उतिष्ठ चण्डिकाचने।।"

शव के समीप ही कनखलापा ने कामाक्षी को आसनासीन कर 'ओम फट्' उच्चारण से शवप्रोक्षण, 'ओम हुँ मृतकाय नमः फट्' से सुवासित नीर द्वारा स्नान करा कर नूतन, स्वच्छ कार्पास वस्त्र से मार्जन दूधादि द्रव्यों से पोषित शोधित और चन्दन द्रव्य से अनुलेपन किया।

कुछ क्षणों तक कनखलापा सन्धानक दृष्टि से शव का सूक्ष्म निरीक्षण करती रही फिर निर्णीत स्वर में बोली।

—"शव निर्विकारवर्णी हे कामाक्षे। यह शुभ और सिद्धिप्रद है। आरक्तवर्णी होने पर शव साधक भक्षी होता है। रक्तवर्ण हीन होने से सुग्राह्य है। शव को कटि स्थल से ग्राह्य कर इसे पूजन स्थल पर.स्थापित करो।" कनखलापा ने आदेश दिया।

प्रत्यक्षतः शव भारी था। क्या उसकी कमल-कोमल देहवल्लरी मातंगपा के भारी शव का वहन कर सकेगी? कामाक्षी के मनस् नभ में यह विचार चिंतन भूधर मेघ की भांति छादित हुआ, किन्तु उसने अपना मनो चिन्तन भंग कर शव को उसके कटिदेश से उठाया। अल्पश्रम से ही शव उठ गया, उसे प्रतीत हुआ शव पुष्पभारित हो गया हो।

इस मध्य मेखला और पताका ने शव स्थापन भूमि पर शवशयनार्थ कुशा शय्या का निर्माण कर उसे व्यवस्थित कर दिया था। कामाक्षी ने ऊर्ध्वमुखी कर शव को शय्यारूढ़ कर दिया। शव का सिर पूर्व में तथा पाद पश्चिम दिशा को इंगित कर शयनित था।

शवसाधन स्थान की दश दिशाओं में द्वादशांगुल प्रमाण की अशवत्थ काष्ठ कीली भूमि में बाढ दी गई। इन्हें आधार मान कर ही दश दिक्पालो पर पूजन-' बलि कृत्य सम्पन्न होना था।

शव को मुख विकसित कर उसने जातिफल, कर्पूर, खादिर, इलायची आदि से युक्त ताम्बूल पत्र रख दिया गया, तत्पश्चात शव को अधोमुखी कर स्थापन किया।

कनखलापा ने शव पीठिका को पुनः चन्दनदि से लिप्त कर बाहुमूल से कटिक्षेत्र पर्यन्त चतुरस्त्र मण्डल, उसके मध्य में अष्टदलपद्म अंकित कर चतुर्द्वार अंकन किया फिर प्रत्येक कमलकर्णिका में ॐ ह्रीम् फट् तथा मध्य में भी ॐह्रीम् फट् का लेखन किया। उसी क्षण कनखलापा ने अपना कल्पोक्त मंत्र कामाक्षी को उपदेशित कर उस जपनीय मंत्र को मण्डल मध्य में अंकित किया।

पूर्वादिक्रम से दश दिक्पाल, इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋताधिपति, वरूण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त इत्यादि को सामिषान्न बलिदान और पाद्यादि से कनखलापा ने कामाक्षी से निष्पन्न कराएं।

किञ्चित दूरी पर मेखला और पताका को शस्त्र सज्जित कर सुरक्षा हितार्थ नियुक्त किया, पश्चात कनखलापा ने मूलमंत्र से शवपर्युषण सम्पन्न कराया, पुनः 'ह्रीम् फट्' उच्चारणपूर्वक अश्वारोहण सदृश्य कामाक्षी सवारूढ़ हुई। उसके चरणतल के नीचे कुश व्यवस्थित था।

कामाक्षी ने शव के केश प्रसरित कर शिखाबन्धनपूर्वक गुरु, गणपति और दैव्या को प्रणामार्पित किया। प्राणायाम, करांगान्यास कर वीरार्दन मंत्र से कामाक्षी ने दश दिक्न्त मे लोह निक्षेप किया।

कनखलापा ने संकल्प सम्पन्न करा कर 'ह्री' आधार शक्ति, कमलासनाय नमः से आसन सपर्या की फिर शव के समीप अर्घ्य स्थापन पर षोडशोपचार से पीठ प्रज्ञा की। इसके पश्चात सुगन्धित जल से शवमुख में उसने तर्पण कृत्य किया।

कनखलापा के निर्देशानुसार कामाक्षी ने शवमुखोन्मुख स्थिरचित से खड़े होकर **"ओम वशो मे भव देवेश वीर सिद्धि देहि देहि महाभाग कृताश्रय परायण।"** मंत्र का पठन किया। मंत्र पठनोपरांत कामाक्षी ने पट्ट सूत्र द्वारा शव के चरण द्वय का बन्धन किया और मूलमंत्र-अभिमंत्रण से शव देह का बन्धन भी किया।

"ओम् मद्वशो भव देवेश वीरसिद्धिकृतास्पद।
ओम भीम भवभयाभाव भवमोचन भावुक।
त्राहि मां देवदेवेश शवानामाधिपाधिप।।"

उपर्युक्त मंत्रोच्चार पूर्वक शवपादमूल में त्रिकोण यंत्र लिखा फिर कामाक्षी शवारुढ़ हो शव के दोनों हाथों का विकसन् कर उन पर कुशा स्थापन किया फिर आस्तृत कुशोपरि स्वपादस्थापन कर प्राणायाम किया।

शिर स्थित शतदल कमल में गुरुदेव का हृत्पद्म में अपनी आराध्या कामाख्या देवी का गाढतर चिंतन ध्यान करते हुए, अपने आरक्ताधरों को पूर्ण सम्पुटित कर महाशंख माला से कामाक्षी ने जपश्चर्या प्रारम्भ की।

कनखलापा ने पूर्ण सुरक्षाहितार्थ शवस्थानिक चत्वाल क्षेत्र को कीलित कर

दिया था, फिर भी सजग हो एक स्थान पर विघ्न प्रशमन के लिए सन्नद्ध थी। मेखला और पताका भी अपने सुकोमल करों में खड्ग-अस्त्रिका आदि को धारण किए, सजग-सचेत थीं।

प्रथम माला के जपकाल में ही कामाक्षी की अन्तःवसित चेतना की ऊष्म-उर्मिलाएं उसे तप्त करने लगी। जैसे नवयौवनावलीद् सुरतार्थिना अपने प्रिय के प्रथम आलिंगन काल में प्रैय-प्रैय हो रजरञ्जित हो उठी हो वह प्रत्यक्षानुभव कर रही थी कि प्रालेयशव की तौषारिकता एक विचित्र ऊष्मा में प्रत्यावर्तित होती जा रही है। प्रथम माला निष्पन्न-पश्चात् कामाक्षी के रतिकहर में भी दिव्योष्मा का संचार हुआ। शनैः शनैः यह ऊष्मा रसिकों के परमाराध्य मसृण भग देव को महोत्ताप से तप्त करती कामाक्षी के कटिप्रोथ फिर अन्य यौवनोल्लसित अंगों में ऊष्म प्रसारण करती शिरोदेश तक आ गई।

कामाक्षी की मराल तन यष्टि महामद्र के मुग्धाब्धि में डूबने लगी। उसकी नेत्र रक्ति में प्रगाढ़ स्थैर्य्य आता जा रहा था-मृष्ट तन में देहातीतता का समावेष्टन होता जा रहा था। पद्म अक्षिद्वय कपाल कुहर को परिलक्षित कर चेतना ऊर्ध्व दिक्-दृष्टा होती जा रही थी।

कनखलापा मन्द दीपज्वाल में कामाक्षी के देहगत परिवर्तनों को गूढ़ दृष्टि से देख रही थी। कामाक्षी के निर्स्फुरित अधर सम्पुटन में दृढ़ता थी। कनखलापा की साधिका दृष्टि देख रही थी कि कामाक्षी की जिह्वा में उलट कर कण्ठ गुहा को अवरुद्ध कर रखा था-रदर्स्पंक्तिया भी एक दूसरे से पृथक थी!

कामाक्षी के गम्भीर नाभि क्षेत्र से महस्विन् बीज, दिव्य आलोक का प्रसार करता कण्ठ तक यात्रा करता फिर पुनः उसी का महस्वित् ज्वालरूप प्रत्यावर्तन करता।

पञ्चशत मंत्र जपश्चर्या सम्पन्न होते ही..........। अकस्मात् कामाक्षी के गौरमार्जित तरूण अंग प्रसारण में कांचन वर्ण की हिरण्य-उज्ज्वलता विकसित होने लगी। उसकी देहयष्टि की निर्मल कान्ति में उद्दित भानु की पूषन् प्रभा का हार्द्रोद् भाषन हुआ। यह प्रकाशित-उद्भाष निरन्तर वर्द्धन को प्राप्त हो मध्यमार्तण्ड की भांति जाज्वल्यवत हो उठा।

कामाक्षी का अंग विलग्न आरक्तक कुष् चीवर, (जो उसकी देह के कुन्दनाभित अंगों पर आच्छादित था) अकस्मात् ही 'भक्' से जल उठा। कामाक्षी की यौवन प्रफुल्ल देह शवासन पर बैठी जल उठी। अग्नि की पांशुली

जिह्वा उसके समग्र तन विस्तार को चटित करने लगी। एक क्षण तो कनखलापा भी हत्प्रभ हो, विकल हो उठी पर द्वितीय क्षण वह सहज हुई।

उधर शवासनारूढ़ कामाक्षी को स्निग्ध, चन्द्रिकास्रावी देहबल्लरी हव्यवाहन की सप्तार्चिन जिह्वाओं की लक्षलीला की लालसा का पावकाखेट बनती जा रही थी। रक्षिताएं द्वय पताका और मेखला का हृदय भयभीत हो उठा। वे नग्ननेत्रों से अपनी स्वामिनी और प्रिय सखी का देहदाह देखकर उद्वेलित हो उठीं। वे उसके संरक्षण हितार्थ प्रत्सत्वर गति से शवासन की ओर भागी।

–"वही ठहरो। स्थान वितर होकर हम कामाक्षी के प्राण संरक्षण नहीं कर सकेगें।" कनखलापा ने तडित स्वर में वर्जन किया। दोनों के चरण वहीं स्तंभित हो गए। "वापस अपने स्थान पर जाओ।" पूर्ववत स्वर में कनखलापा ने कापालिक गर्जन किया। विवश मेखला, पताका पुनः अपने स्थान पर आ गई।

अग्नि ज्वालाएं प्रशान्त हो गईं। कामाक्षी की महस्वत् देह ऐसे प्रतीत हो रही थी मानो तप्तकाञ्चन विनिर्मित प्रतिमा को शवासन पर आरुढ़ कर दिया हो। कामाक्षी की वसनहीन, स्वर्णालोक से उद्दीप्ति देह, निवार्त निष्कम्प दीपशिखा की भांति अविचल-स्थिर और स्तब्ध थी।

अकस्मात् मेघाध्वन से मेघविस्फूर्जित ध्वनि का घोर गुंजन हुआ। जैसे दो तडित्वती मेघमालाओं का परस्पर महाघोर संघट्टन हुआ हो। इस मध्य कनखलापा अपनी आंतरिक शक्तियों से तथा उसके कपालपात्रस्थ निवासी सूक्ष्मात्माओं से यह ज्ञान कर चुकी थी, कि कामाक्षी के प्राण पूर्णतः सुरक्षित हैं। यह कामाक्षी की अतिदिव्य साधकावस्था थी!

कुछ समय तक धरानभ सम्फाल संघट्ट की घोर ध्वनि से उत्पन्न अनुगूंज गुंजित होती रही फिर मेघपथ से पुरुष कण्ठी स्वर ध्वनन् हुआ–

"बलि.........बलि.........।"

कनखलापा ने मन्दस्वर में अदृश्य वाग्कर्तृ को उत्तर दिया–

"यत् प्रार्थय बलित्वेन दातव्य कुञ्जरादिकम्।
दिनान्तरे च दास्यामि स्वनाम कथयस्व मे।।"

आंतरिक्ष की उच्चता से अदृश्य शाक्तेय ने अपना परिचय प्रदान किया। कनखलापा उसका परिचय ग्राह्य कर अभय भाव से पूर्ववत स्वर में बोली–

—"तुम कामाक्षी को अभीष्ट सिद्धि प्रदान कर सदैव उसकी आज्ञा के अनुगामी रहोगे?" उत्तर में कनखलापा ने स्वीकृति सूचक स्वर श्रवण किया।

शव साधन निष्पन्न हो चुका था, पर कामाक्षी की महातन्द्रा समाप्त नहीं हुई। वर प्राप्ति आदि कृत्य कामाक्षी के ही थे पर उसके देहातीत होने के कारण कनखलापा ने ही उसका कृत्य सम्पादन किया।

चतुर्थ प्रहर की प्रारंभिका में कामाक्षी की दिव्यतन्द्रा भंग हुई। उसकी दृष्टि के सम्मुख विराटाकार, भूधर छाया थी। आकार लघुवत होकर बोला–

—"देवी तुम्हें अभीष्ट सिद्ध होगा।" वह महाकार लुप्त हो गया।

—"सुभगा कामाक्षी, तेरा कल्याण हो। यह साक्षात् भगवान कालभैरव ही थे। अब उठो और लोक व्यवहार को पोषित करो। मैं भी अपने गुरुदेव की सेवा में गमनातुर हूँ।" कनखलापा ने आशीर्वचन कहते हुए कहा! साथ ही उसने अपना चीवर भी प्रदान किया।

कामाक्षी अपनी नग्नता का अनुभव कर लज्जारक्त हो उठी। उसने चीवर धारण किया फिर शवासन का परित्याग कर खडी हुई। उसने श्रद्धा से कनखलापा के चरण स्पर्श किए। कापालिका ने उसका ललाट–चुम्बन करते हुए चिर यशस्विनी होने का मंगल वर दिया, फिर दिनान्तर में सम्पन्न बलि आदि के कर्म सम्पादन हेतु आवश्यक निर्देश प्रदान कर कनखलापा गमनोद्योतित हुई।

—"ऋतुभुवती रूपसी कामाक्षी, यद्यपि नारी मात्र को शवसाधन निर्दिष्ट नहीं, तथापि मैंने तुझे यह साधन सम्पन्न कराया। तेरे हितार्थ मैंने सिद्धियों की वाञ्छा की और तेरे पुनीतमनस में आत्मकाम का निष्काम सिद्धन् हुआ। निश्चय ही तू, स्त्रियों की यशकीर्ति, देवत्व और जगत्प्रसूता कमला किंवा कामाख्या की ही संमूर्त अवतार रूपिणी है। जब भी मेरा स्मरण करेगी मैं अवश्य उपस्थित होऊँगी। लोलापा मेरी सखि है, मेरे दिव्य गुरोवर्य की उज्ज्वल कीर्ति है–उसे सस्नेह मिलन अवश्य कहना।" और कनखलापा अपने कार्यों का निष्पन्नीकरण कर गमन कर गई।

प्रातः होने के पूर्व ही कामाक्षी ने शवादि के संस्कार किए फिर दिनान्तर में कनखलापा द्वारा निर्देशित अन्य कर्मों से मुक्ति पा, ब्राह्मण भोज्य आदि सम्पन्न किया। इस प्रकार अवन्ती प्रवास में भगवती कामाक्षी का शवानुष्ठान पूर्ण किया।

..

1. वेश्या
2. कामुक स्त्रियां
3. स्निग्ध
4. कपट, छल
5. वापसी
6. रति का नाट्यमण्डल
7. प्रेमिकाएं
8. मैथुनकालीन शब्द (सिसकारी आदि)
9. महाआनन्द (आनन्द का ऐसा स्वरूप जिसमें गर्व हो)
10. उदास मन
11. मुरझाया हुआ
12. स्निग्ध, चिकना
13. मनोहर
14. सम्मिलत
15. योनिगुहा
16. प्रथमवार रजस्वला युवती
17. भगगुहा
18. स्त्रियों के कुच-आदि अंग
19. चमकीला
20. युवावस्था
21. सूर्य
22. श्री राजदेवनन्दनसिंहवहादुरनराधिपैः संगृह्य एवं रचित 'शाक्तप्रमोद' में षोडशाक्षर मन्त्र इस प्रकार लिखित है-"ह्रींकएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं"
23. नशीली
24. पूर्व दिशा
25. रोम का बाल
26. पगडी जो सिर में बांधी जाती है।
27. चमकीला
28. विविध
29. प्रसन्न
30. मनमोहिनी
31. सिंह गर्जना के समान
32. अग्नि
33. अग्नि
34. नर-खोपडी
35. पालगपन
36. अग्नि को अर्पित किया गया
37. वायु की अधिकता न होना
38. स्पष्ट
39. मृत्यु
40. घबराहट, बैचेनी
41. छायादार स्थान
42. भूलना, विस्मरण होना
43. माता
44. स्तन से दूध पीने वाला (पुत्र)
45. स्तनाग्र (निपिल)
46. स्तनों के बाँधने का वस्त्र
47. गीला, नम
48. चिता की अग्नि
49. अधजली
50. सन्देह
51. अन्धेरी रात
52. उत्पात
53. सरसों
54. अत्यन्त रूपवती स्त्री (विजयी के समान आचरण करने वाली)
55. प्रफुल्लित यौवन से सम्पन्न
56. अतिसुन्दर वनिता (युवती)

कामाक्षी एक सप्ताह और भी अवन्ती में प्रवासित रही। उसने वहाँ के सभी स्थान, मन्दिर और तीर्थों का दर्शन किया। इस मध्य पुनः कुमार विक्रम से भी उसकी भेंट हुई। अथक प्रयासों के पश्चात् भी भृतहरि के गोप्यसूचक भेदिया कामाक्षी के मूल परिचय को प्राप्त नहीं सके, पर अंशतः तदविषयक उन्होंने जान लिया।

कामाक्षी और उसके दल ने अवन्ती का विविध अध्ययन किया। लोक संस्कृति और शिक्षा संस्कृति को आत्मसात किया फिर अवन्ती से विदा ली। चन्द्रमौलि सहित अनेक पुरूष कामाक्षी की दलवनिताओं के भ्रमरालक पाशों में बंधकर उनके अनुगत हुए। दल की इन्दु वदना कामनियों ने कामित्र पुरूषों को अपनी कामप्रवीणता, कुसुम सौन्दर्य और रूप की मृदुल अस्त्रिका से आहत कर सुरत भोग का पंचसर सुख भोग किया।

अवन्ति से प्रस्थान की पूर्व सन्ध्या में एक राज्याधिकारी, अरिकुलदलन यशःश्रेष्ठ नृप श्री भृतहरि का अत्यावश्यक सन्देश लेकर कामाक्षी के पास आया। वह अपने साथ महाराज्ञ भृतहरि का सन्देश पत्र भी लाया था, जिसमें भृतहरि ने कामाक्षी को अपने राजप्रसाद में आमंत्रित किया था। कामाक्षी के लिए एक पृथक सुन्दर स्वर्णमण्डित रथ भी राज्याधिकारी के साथ था।

नृपराट का आमंत्रण पत्र प्राप्त कर सर्वावयव सुन्दरी कामाक्षी ने कुछ क्षण चिंतन कर अपनी परामर्थदात्री विदुषी महिला से विचार विमर्श किया फिर मेखला और पताका के साथ रथारूढ़ हो राजप्रासाद को गमन किया। मेखला और पताका अपने परिधानेय वस्त्रों में तीक्ष्ण गरल लिप्त और महाविष रस से संलेपित क्षुरिकाएं सयत्न छिपा कर ले गई थी।

स्वयं राज्याधिश्वर और विधु वन्दना महाराज्ञी पिंगला ने कामाक्षी का स्वागत कर आतिथ्य प्रदान किया। कामाक्षी उनके शील और शुभाचरण से प्रभावित हुई! मंत्रणा कक्ष में महाराज ने गम्भीर स्वर में कहा–

–"यह सत्य है कि मेरे सूचक भृत्य अथवा राज्य राज्यप्रेष्य पूर्णतः यह संधान में समर्थ नही हो सके कि आप किस देश की सुमन कांति है पर यह निश्चित सत्य है कि आप राजरमणी का अशेष शोभन है, जैसे सूर्य के संग–आलोक, जीवन के संग प्राण, साधु के साथ सज्जनता और पुरूष के साथ

प्रकृति अभिन्न है उसी भांति आपके साहचर्य में राजत गरिमा पोषित है, पल्लिवत है। आप अवन्ती में क्यों गोप्य हुई यह रहस्य है। हमारे गुप्तचरों ने आपके प्रत्येक कृत्यों का सूक्ष्मावलोकन किया है। आपके रथ का वृद्ध सूत राजगुप्तचर हमारे गुप्तचरों ने आपके प्रत्येक अनुष्ठानिक कृत्यों की सूचनाएं एकत्रित की। नित्यश्मशान में निष्पन्न आपकी शवानुष्ठानी सपर्या को मैंने भी प्रत्यक्षचक्षु देखा। आपकी दिव्य साधना सुसिद्धि यह सिद्ध करती है कि आपके अवन्ती आगमन से राज्य का कोई अहित नहीं। शवासनासीन अवस्था में मैं आपके हिरण्य सौन्दर्य का दर्शन कर चिन्तन वाध्य हुआ कि आप सामान्य और जगती ललनपा नही अपितु गौरी देवी की ही नूतन अवतारणा हैं। आप कौन हैं देवी, मेरी जिज्ञासा को पूर्ण करें।"

—"बल-वीर्यवान ही विनयी होते हैं, राजेश्वर। यद्यपि आप पूर्ण समर्थ है फिर भी आपने विनयाचरण मैं स्वतः ही पराभूत हो गई। मेरे आगमन और गमन से कोई राज्याहित नहीं होगां मेरी सहचरियों के मोह और यौवनिकपाशों में आपके कुछ कामित्र प्रजाजन बंधक हैं, मैं उन्हें मुक्त करने पश्चात् ही प्रस्थानित होऊंगी। हाँ, आचार्य चन्द्रामौलि को अवश्य आपसे उपहार स्वरूप मांगती हूँ। वह विद्या-निष्णात विद्वान है, उनकी मुझे आवश्यकता है। मैं अपनी कुलदैव्या की वचबद्धता के कारण अपनी प्रत्यभिज्ञा-परिचय नही दे सकूंगी। मेरी विवशता और दृष्टता के लिए क्षमा करें राजन, परन्तु वचन देती हूँ, इस देश के सीमान्तोल्लघन के पश्चात् आपको मेरा मूल परिचय अवश्य ज्ञात हो जावेगा।"

मैं प्रसन्न हुआ देवी। आप राज्यप्रघूर्णा के रूप में प्रासादावास करे। भृतहरि ने सविनय कहा।

—"नहीं राजेश, अब प्रातः ही हमारा सार्थवाह दल प्रस्थान कर रहा है। यह सुनिश्चित है कि हम भवितव्यः अवश्य मिलेगें।"

रूपराज्ञी पिंगला और यौवन भुविस् तरंगना कामाक्षी बहुत समय तक परिचर्चा रत रही। महाराज्ञी पिंगला ने उसे प्रासाद भ्रमण कराया, अतिथि सत्कार किया और विदा से पूर्व, पारद शिवलिंग विद्रूम गणपति, गन्धक और पारद के संयोग से निर्मित अर्द्धनारीश्वर की प्रतिमा तथा अनेक प्रकार के रत्न उपहारार्पित किए।

प्रातः की पुण्य प्रीत्यूषी बेला में कामाक्षी के दल ने प्रस्थान किया। चन्द्रमौलि के अतिरिक्त सभी मोहमुग्ध, योषास्मर चक्र में बंधित अवन्ती के

कामित्र पुरूषों को छोड़ दिया गया।

ऋषि गालव की तपस्थली के आगे इन्द्रप्रस्थ के समीप से निकल कर सार्थवाह दल कुरुक्षेत्र फिर जालन्धर पीठ, वज्रेश्वरी पीठ, धवलगिरि की नित्य चैतन्य चामुण्डा का नित्य श्मशान। हिमालय के पाददेश में.......सिंगल या कदलीवन और कदलीवन से पूर्व में कामरूप। भोटदेश या भूतस्थान के समीप स्थित अपने देश में कामाक्षी को पहुँचने से लगभग दो माह व्यतीत हुए।

अवन्तिका के पश्चात अन्य राज्यों के जनपदों से कामाक्षी दल की रूपवती चंचल सुरतक्रीड़ाओं में दक्ष-प्रवीण लावण्यधरित्रियों ने लगभग शत पुरूषों का कामकर्षण कर अपना बन्धक बनाया।

कामाक्षी को इस यात्रा में विविध अनुभव-अनुभूत हुए। उसे अनेक सिद्ध पुरूष, तपस्वी और देवात्माएं तथा उपदेवों ने दर्शन दिए। अनेक सिद्ध पीठों पर उसने अर्चन कर आत्मलाभ प्राप्त किया।

कामाक्षी ने स्थान-स्थान पर कुपात्र, कथित कौलाचारियों का स्त्रियों पर अत्याचार, तुर्कों की रक्तपाती हिंसा, राजपुरूषों का नैर्वीर्यत्व और साधना के नाम पर व्यभिचार भी देखा और आर्त पीडित हुई। क्या कोई महापुरूष भरत भूमि के उद्धार हित अवतरित होगा? क्या साधना के नाम पर पाखण्ड और अनाचार से मुक्ति प्राप्त हो सकेगी?

योगनिभृत मत्स्येन्द्र! ज्ञान, यौवन, संयम, निग्रह और तपश्चर्या की प्रतिमूर्ति!! लोकोपकार और ब्रह्माण्ड शर्म्मण्य को सन्नद्ध!!! मत्स्येन्द्र का हृदय करूणा, क्षमा का प्रत्यक्ष सागर था।

हिमांगन के बादरिकाश्रम में वायु साधन करते हुए आदिनाथ शिवराधनाभ्यन्तर भवानीपति की इच्छा से महागुरु भगवान दत्तात्रेय करूणार्द्र हो मत्स्येन्द्र के सम्मुख प्रकट हुए और उन्हें अपने प्रियशिष्य के रूप में स्वीकार कर नवीन पंथ प्रवर्तक के रूप में दीक्षा प्रदान की।

करूणानिधि भगवान गुरु दत्तात्रेय ने ही कृपा कर आदिनाथ भूतभावन, पार्वतीकान्त भगवान शिव के निःशेष दर्शन की प्राप्ति मत्स्येन्द्र को कराई आदिनाथ के आदेश से ही उन्होंने सृष्टि की उत्स, पोषिका और ज्ञान, सिद्धि की अनूनक प्रदात्री भगवती की द्वादसवर्ष कठोर तपश्चर्या सम्पन्न की। आद्या ने भूरि प्रसन्न हो उन्हें ऋषित्व प्रदान किया। त्रिगुणी सृष्टि की नियन्ता आद्येश्वरी ने मत्स्येन्द्र को मंत्र रचना की प्रेरणा दी क्योंकि मत्स्येन्द्र ने वैदिक मंत्रों के कीलितावस्था के कारण लोक जनों की निरीह अवस्था का वर्णन कर उनके सर्वविधाभ्युत्थान की प्रार्थना की थी।

साक्षात् जगदात्मिका ने ही मार्तण्ड गिरि के महाश्मशानस्थित दिव्य तरु अश्वत्थ के सघनच्छाँव में विविध देवताओं के स्वरूपक बीजाक्षरों की आहुतियां, चितांग्नि निवासित भगवान हव्यवाह को अर्पित की। वैश्वानारी ज्वालाओं से अरुषित हो दिव्यतरु हिरण्यगात्र हो गया। तरु आवासित, हनुमान, भैरव, भैरवियां, शाकिनी, डाकिनी, वैतालादिगण प्रसन्न हो प्रकट हुए। सहस्त्रों देव-उपदेव ने मत्स्येन्द्र को आशीषाभिसिक्त कर उन्हें अल्पसाध्य, अपनी-अपनी निष्कीलित मंत्र संरचना का अमोघवर प्रदान किया।

इस प्रकार मत्स्येन्द्र गुरु ने शाबर मंत्रों का ऋषित्व प्राप्त किया। और लोक शर्म्मण्य में जुट गए। वे निःस्पृह, निर्लोभ और सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हो देशाटन करने लगे। अनेक देवोपासकों को उन्होंने अपने साधना-सिद्धि बल से परास्त किया, असम्भव चमत्कारों का यथासमय लोक हित में प्रदर्शन किया। उन्होंने कंचन और कामिनी का स्पर्श नही किया पर कीर्ति मत्स्येन्द्र की चेरिका बनी रही। उचित अवसर पर जब, अभिपुत्र और भगवती अनुसूयोत्संग-पोषित प्रभु दत्तात्रेय ने उन्हें

कौलज्ञान का सिद्धोपदेश दिया तब इस परमोच्च सिद्धि की प्राप्ति और प्रशिक्षण हेतु गुरुदत्त ने मत्स्येन्द्र को हिमालयीन स्थित, दृष्टि से परे एक आश्रम का आवासी बनाया। उसी दिव्यतर-आश्रम में मत्स्येन्द्र को आयुस्तम्भन, कायाकल्प, मृतसंजीवन विद्या, गगन गमन के अतिरिक्त सभी अष्टसिद्धियां प्राप्त हो गई।

मत्स्येन्द्र का देह आदिशक्ति की सुकृपा से चिरामर हो गया। स्वयं आद्या ने ही विविध औषधियों के अर्क का विधि सम्मत कर्पण कर अपने ललामपुत्र को पान कराया।

वर्षों तक मत्स्येन्द्र कुलाचार साधन करते रहे पर अपेक्षित सुफल उनसे दूर ही रहा। अतः उन्होंने अपने आराध्य गुरु भगवान दत्त का आह्वान कर असफलता का कारण क्या है? निवेदित किया! उनके प्रश्न पर बालपिशाच अवधूत अत्रिनन्दन सस्मित पुण्य गिरा से बोले-

—"पुत्र मत्स्येन्द्र 'शक्त्या विना परे शिवे नाम धाम न विद्यते'। तेरा सन्तापोदभव कारण एकमेव यही है। शक्ति की अनुपस्थिति में शिव तो शव मात्र है पुत्र। भला बता तो तेरी शक्ति कहाँ है? वह शक्ति जो शिव का आत्मविमर्श रूपी चित् है। वह शक्ति जो सच्चिदानन्द, परम या पूर्णसत्ता, एक समरस और निष्कल है, वही अखण्ड, निरञ्जन और अलख तत्व ही नहीं अपितु तत्वातीत है, कलातीत है, वही परमशान्ति है और इस परम शान्त स्थिति की संज्ञा ही कुल है। समग्र विश्व उसी पूर्णसत्ता से उद्भूत है, उसी में संस्थित है और कल्पान्त में उसी मे लय हो जाता है। विश्वजनक और विश्वजनयित्री भी इस अव्यक्त कुल से प्रकाशित हैं। विश्वजनक शिव अकुल है और जननी शक्ति ही कौलकी है, तुझमें शिव हैं पर शव रूप में। उनकी जागृति की हेतु शक्ति का प्रत्यक्ष संघात जब तक तेरे अन्तरतमी शिव पर नहीं होगा, तब तक तू कुलानन्द से वञ्चित रहेगा।" "मैं शक्ति संधान किस विधि करुं भगवन्? कहाँ प्राप्त होगा यह तत्व?" मत्स्येन्द्र ने अबोध की भांति जिज्ञासा प्रकट की।

—"वह जो सकल कुल की ललाम सत्वा है, साक्षात पार्वती की ही प्रतिच्छाय है, तेरी समग्र स्निग्धता का सार रूप है, तेरी ही चिद्रूपिणी चर्चिका है, तेरे चिन्मय रूप की स्वच्छ प्रभा और प्रत्यक्ष स्नेह की चितिधरा है।" भगवान दत्त के निर्निमेष नेत्र प्रस्तर व्योम की निःसीम विराटता के नीलाम्बर में टंग गए।

और.......इस प्रसंग को व्यतीत हुए अनेक वर्ष हो गए। मत्स्येन्द्र की यशः कीर्ति और आरत्र गान से दिक्न्त गूँज उठे। उन्हें अनंगवज्र सा आयोनिज भी प्राप्त

हुआ, जिसका अयोनिजी जन्म उनकी कृपा से हुआ था, जिसे उन्होंने गोरक्षनाथ का नवनाम प्रदान कर नाथपंथ का योगी बनाया। इसके अतिरिक्त मत्स्येन्द्र के शिष्यों में अतिसिद्धि प्राप्त अन्य दिव्य सिद्ध भी थे जो अजस्रवत: अपने लक्ष्य का संधान करने आध्यात्म की उच्चता का स्पर्श करते ज़ा रहे थे, पर मत्स्येन्द्र का लक्ष्य अभी भी उन्हें प्राप्त नहीं था।

मत्स्येन्द्र को अनेक तमसाकेश पाशिनी, उत्तुंग कुचाग्र विभूषिताएं लोहिता-धरधारिणियां, नतांगी सुवृत्ताएं, तेजोमयी लावण्यवतियां, उत्फुल्ल यौवन की हर्षित चन्द्रिकाएं स्त्रियों के रूप में प्राप्त होती रही। इनमें तपस्विनी, तेजस्वनी, मुग्धा, मध्या भार्या, पुरन्ध्री, प्रेष्ठा मनस्विनी, मुक्ता, विलासिनी, अभिसारिणी आदि विभिन्न रूपी कामनियों से साक्षात हुआ पर इन सबमें उनकी कौलाचार की आधार रूपिणी शक्ति या कुलशक्ति कोई भी नही थी। इन आनन्द विलोचनियों में उन्हें कभी माता का वात्सल्यरूप-आभाषित हुआ तो कभी पुत्री का आनन्दानन।

मत्स्येन्द्र की गति अबाध रही। उनके चरण कालचक्र की भांति ही चरित थे। गोरक्ष अब तक लोकश्रुति के नायक रूप में स्थापित हो गए थे। पशुपति शिव के देश की महाअलख का समाचार समस्त भरत खण्ड में पवन की भांति प्रसारित हो रहा था। गोरख का भरत भूमि पर आगमन हो चुका था, जहाँ भी उनका पदार्पण होता, गगन महि और दिक्न्त 'अलख निरंजन' के महाघोष से ध्वनित्व हो उठे थे। नगर-नगर में गोरखनाथ योगियों का विराट दल बनाते जा रहे थे। युवकों में उत्साह का संचार हो रहा था, मल्लालय निर्मित होते जा रहे थे, उनमें शस्त्र और सैन्य प्रशिक्षण के साथ ही हठयोग की योग क्रियाएं भी प्रारम्भ हो रही थी।

मत्स्येन्द्र के चरण युग स्तंभित नही हुए, वे संचरित रहे, गोरक्ष से भी नही मिले, गोरक्ष की कीर्ति और साधना से वे तुष्ट थे। ज्योतिर्लिंग, पीठ-उपपीठ, तीर्थ आदि को अपने तप से प्रकाशित करते, अनायास ही मत्स्येन्द्र सप्तपुरियों में से एक कलिंग देशीय स्थित भगवान जगदीश और विमला पीठ तीर्थ पर पहुंचे।

मत्स्येन्द्र का योगमण्डित और तपश्चर्या से तपिश भव्य व्यक्तित्व जगती के लिए दिव्य चमत्कार था। उनकी सुलम्बि, हिरण्यमयी काया ब्रह्मचर्य के महाओज से आदित्य की भांति भास्वित थी।

मत्स्येन्द्र की वाणी ही मंत्र थी, पूजा ही कर्म और उसका शुभाशीष ही फल। उनकी योग निभृत दृष्टि में ही विश्वामित्र निवसित थे, क्योंकि जहाँ भी उनका दृष्टि निक्षेप होता, वहीं नूतन संरचना उद्भूत हो जाती। उनके दिव्य देह में वशिष्ठ का निःशेष साम्राज्य था, तो व्याख्यान में शेषावतार ऋषिवर्य पातञ्जली का कृत्स्न शब्द शास्त्र। प्रकृति ही उनका आश्रय थी और वसुधा ही उनका प्रतिश्रय[2], प्रत्यभिज्ञान ही उनका श्रेष्ठ सहचर और ब्रह्मज्ञान ही उनका प्रकर्ष[3] था। बहुसिद्धि प्रचाय चिरकिंकर की भाँति उनकी सेवार्चना करता पर वे प्रायः प्रणिधान[4] में ही मग्न रहते।

उनकी रक्तिप्रसन्न[5] योगकाया में समयानुकूल देव दर्शन देते क्रीड़ा करते अपनी प्राणरागिनी[6] का संवर्धन कर रतकूजित[7] होते, मत्स्येन्द्र उनके रति लास्य को निर्पेक्ष अक्षि से देखते, रति-उद्भूत रणितनाद[8] को श्रव्य कर उनके अधरों पर स्मित का शोभन प्रकट हो जाता।

अब उनकी संविति[9] चतुर्दिक संवीक्षण[10] कर ध्यान्नालोक में संवेक्षण करती तो मत्स्येन्द्र की संवेदधरा[11] पर वह प्रज्ञा ललामिका, हर्परास करने लगती। तब रस की प्रत्यक्ष स्रोतस्विनी, योगेश्वर कृष्ण की मूर्त चेतना और रतिसुन्दर[12] कुशला रासाधिष्ठात्री राधा अपने महानायक रासेश कृष्ण सहित, उनके नित्यवृन्दावन में ऐसा अद्भुत रास-लास्य करती कि स्वयं मत्स्येन्द्र भी कृष्ण बन जाते उनके रन्ध्र-प्रति-रन्ध्र से मोहन का मुरली निनाद गूंज उठता, अंगोर्मियो से सहस्त्रों राधिकाएं प्रभूत हो-हो कर अपने कृष्ण को रिझाती, रासरमण करती, उनके भृगुपादांकित वक्ष पर लास्य श्रम से क्लान्त, प्रस्वेदित[13] सुमनमृदुल काया को वक्षारूढ़ कर अपने सुरभित श्वासोच्छवास से उन्हें प्रेम-प्रेमिल कर देती। मत्स्येन्द्र धन्य-धन्य कह उठते। यही गोपिका कभी अवधूती के रूप सौन्दर्य को धारण कर महावधूत, शवभस्मविभूषक विभीषण, पर भद्रंकर भैरव के भानु-भास्वत[14] वक्ष पर महापद संचारी घूर्मणा कर गिर जाती तो उसकी कायोद्भूत प्रस्वेदवारि से भैरव का भस्मलिप्त वक्ष स्वेद भुविस्[15] हो उठता, जिसकी निष्पंक, स्वेदलावणी स्रवन्ती[16] में मनोस्नान कर मत्स्येन्द्र मनोरम हो जाते।[17]

कभी मत्स्येन्द्र के पुण्य मनस् में तोषारिक हिमालय को हिममण्डित तुहिन श्रृंखलाओं की उत्तुंगता का उदय होता तो उनके सकल वपुस् में अवश्याम[18] की शरद चन्द्रिका आ उतरती। उस हिमधरा में अक्षर शिव-शिवा की पाटलकान्ति को बाहुबद्ध किए हिमक्रीड़ा करते, मानिनी शिवा हिमशुभ्रांगन में अकुलदेव से

मुक्त हो महाचंचल मृगी की भांति दौड़ती और क्षणप्रभा की भांति अदृश्य हो जाती। प्रकृति पुरूष की लीलासाधना में मत्स्येन्द्र मग्न होते।

निम्लोच[19] मुहूर्त में मत्स्येन्द्र रथवीथि[20] से निकलकर, लघु पण्वीथिका को पार कर एकपदी पर गमन करते हुए उदन्पान[21] रोध[22] पर पहुंचे। रथवीथि और पण्यवीथिका के दोनों ओर जीर्ण भवन, कुटी, वसित नैर्धन्य नागरिकों की सीमान्तनियां, बालाएं उन्हें उत्सुक और वाञ्छनीय दृष्टि से देखती रही। युवातन्वी, प्रौढ़ा और कुलकामिनी, सभी महिलाएं अर्द्ध नग्न थीं। वे मात्र परिधान धारेयी थी, उनके उरोभुमण्डल[23] पर आवारित वस्त्र अत्यन्त न्यून थे। सम्भवतः इस देश में अत्याधिक घनाभाव था। विभु जगतपति के निःशेष साम्राज्य की पत्तन पुरी में ऐसा अभाव? मत्स्येन्द्र को अधिक सोचने, का परिचिन्तन का अवकाश ही कहाँ था। उन्हें तो सरित्पति[24] की उच्छ्रूकल उल्लोलनाएं अपनी मृणाल भुज पसारे आह्वित कर रही थी। अतः मत्स्येन्द्र प्रसत्वर वेग से अपाम्पति[25] के कूल पर पहुँच गए।

पूर्णिमा की निर्तमिस्त्र राका।

प्राची में दिक्वधु के ललाम रंजित अपिधान[26] का विच्छेद कर निशापति का शुभ्र तनु वलय गगनवर्त्म[27] मे उत्तरोत्तर अग्रगम्य हुआ। प्राची नभस् शकल रजत भास से दीप्ति हो उठा। शनैः शनैः शुभ्रांशु की सित शिशिर किरणों का रजतप्रसार क्षौणितल[28] सहित अर्णव[29] देव के दिक्न्त प्रसारित नीरास्तरण पर लास्य करने लगा। उदधि उर्मिलाएं मद मुत्[30] हो हर्षातिरेक से नभस् संचरित मृगांक[31] को ग्राह्य करने ऊर्ध्वायास करने लगी, मानो वे तरंगे धौत चन्द्रिका की किरणों को थाम कर कलनिधि[32] को प्राप्त कर ही लेगी।

मत्स्येन्द्र रत्नाकर[33] की निःसीम जलराशि पर ज्योत्स्न आस्तरण का धवल रूप देखते रहे, उस पर नृत्य करती क्षपाकर[34] की किरणों को देखते रहे। अकूपार[35] के पुलिन[36] में खडे मत्स्येन्द्र के चरणयुगलों को सागर पखारता रहा। सिन्धु[37] सलिल द्विजराज[38] के प्रबल कर्षण के कारण निरन्तर वर्द्धन को प्राप्त हो रहा था। मत्स्येन्द्र पुलिन देश से निकल कर कुछ दूर बैठ कर यादःपति[39] की फैनल लीला देखने लगे। रजतीय बालुका के कोमलास्तरण पर सुखासनस्थ मत्स्येन्द्र के ज्योत्स्न मनस् में कोई-मनन, चिंतन नही था। बस वे तो पारावार[40] का पुलक प्रहर्षण देख रहे थे, चन्द्रमस्[41] की चान्द्रिकच्छटा में पुलिन् में एकत्रित फैनिल के घौत रस को देख रहे थे, पूर्णिमापूर्त[42] शशि और सागर की आनन्द

पृक्ति[43] का नीरनिधि के महाविस्तारित, ज्योकोज्ज्वल वक्ष पर रच रहे महोत्सव को देख रहे थे।

ज्यों-ज्यों धवल राका संवर्द्धन को प्राप्त होती जा रही थी, त्यों-त्यों फूत्कारी मरुत का महासंचार और अर्णव[44] का अभिगर्जन भी संवद्धित होता जा रहा था। अनंत विस्तारित अभ्यस्[45] निधि के दुग्ध धवलित पयस् में उत्तुंग लहरें अर्णाद गर्जन करती हुई कूल को निमग्न करती रही।

मत्स्येन्द्र ने धनरसग्राह्यी[46] की कौतुकी क्रीड़ा और उच्छ्रित लहरों की कूर्दन लीला दर्शन के अभ्यन्तर कूलंकषधिपति[47] के विस्तार वक्ष पर दिव्यालोक से उद्भाषित नील वलयमण्डल को देखा। नीलपिण्ड निरन्तर क्षीरनिधि[48] के वक्ष को नीलालोक से भासित करता तट की ओर आ रहा था।

मत्स्येन्द्र ने यत्र-तत्र निहारा। तोयस्वामिन्[49] का तट निर्जन था। उन्होंने निर्जन तट का ही चयन किया था। उन्होंने नभोमण्डल को देखा, ज्योत्स्नाकान्त[50] अपनी शुभ्रच्छटा का निःशेष प्रसार करता गगन मध्य में संचरित था। मत्स्येन्द्र पुष्करपति[51] को स्वच्छ निर्णेक दीप्ति बालूकास्तरण के रजतीय पर्यंक पर बैठ गए और गहन दृष्टि से क्षीर तलागत नीलालोकोदभासित पिण्ड को देखने लगे।

नीलज्योति पूरित पिण्ड वारिनिधि[52] के पुलिन क्षेत्र तक आकर स्थिर हो गया। आलोक किरीट मन्द-मीलित हुआ, पिण्ड अभ्यान्तर में एक नीलावेष्टित तनुधरित्री तन्वी का प्रार्दुभाव हुआ। वह नवयौवन सज्जित द्विभुजी, मुक्तकेशी, नग्ना, यज्ञोपवीतधारिणी, सर्वसुखावबोधा, सुरूपिणी दैव्या के दक्षिण हस्त में डमरुक और कर्तरी, वाम हस्त में खट्वांग तथा कपाल स्थित था[53]। और..... आश्चर्य..........!.उस ललाम यौवना ने मत्स्येन्द्र को प्रागाढ़ालिंगित कर रखा था। पर मत्स्येन्द्र तो जलाधिपति[54] के पुलिनतीर पर बैठे थे। कोटवी दैव्या वारम्वार आलिंगित मत्स्येन्द्र देव का मुख चूमती कभी अधरोष्ठों का पान करती।

दृश्य परिवर्तित हुआ। इस वार नीलप्रावरणावेष्टित, कृत्स्न यौवन की मधुस्त्रावणी, सुरांगना का कायवर्ण गौरीयाभा से भासित था। उल्लसच्चारुस्तनी, तेजोमयी, सघनलावण्यमयी ललना, द्विभुजी, उत्तुंग पयोधरी, स्फुटित पद्म सी प्रफुल्लित नेत्रावलिधारिणी, अपने विद्रुमवर्णी अधरों से अंगस्थ मत्स्येन्द्र का मुख चुम्ब कर रही थी। उसकी मेचक स्निग्ध कुन्तलराशि वितान के मध्य मत्स्येन्द्र अर्द्ध निर्लिप्त नेत्रों से समाधिस्थयोगी की भांति ध्यानस्थ थे।

पुलिनस्थ मत्स्येन्द्र की सर्व गोपिकाएं भड़भड़ा उठी, रक्त के प्रत्येक कण से शक्ति का आह्वान नाद हो रहा था। मनस्, प्राण, चेतना और देहस्थ चक्रों से प्रत्यभिज्ञा का ध्वान्नन् कह रहा था–

–"यही है........यही है...........वह प्रहल्लनकारिणी, युति रञ्जनी, आह्लाद् की अम्लान सरितसत्ता, योगयुति का मसृण, मुग्ध, महस्वत् और मन्दनमय[55] निर्मृषित[56] रूप।

मत्स्येन्द्र त्वरा से उठे। पर..........पर यह क्या? दिक्पालों को चलाय मान कर देने में सक्षम, गगनस्थ निहारिकामण्डल को भूतल पर उतारने में समर्थ, ग्रह–गति के आमूल परिवर्तन में कुशल, मत्स्येन्द्र सप्रयत्न भी नही उठ सके। क्या वह आलोकाच्छादिता, नीरतल पर लास्य रचा रही परमसुन्दरी उनकी अपेक्षा कहीं अधिक बलवती कौलकामिनी है? अथवा स्वयं सागरीय लक्ष्मी ही कुल कामिनी के परिमृष्ट रूप में प्रकटित हो उन्हे प्रसन्न प्रावरित कर रही है, अथवा शुभ्रिदेव ने ही शुभ्र चन्द्रिका के साररूप को संकलित कर इस नवनीत लेपित ललना का शुभ सृजन किया है, या हिमवान सुता हेमवती और हर के रज, बिन्दु से प्रकट रूप ही इस मह[57]–हर्षिणी के मद मे मुग्ध हो उन्हें मदिरोन्मत्त बना रहा है।

मत्स्येन्द्र ने अपने 'कुल' बल का स्मरण किया, परन्तु बलधिषणा की दीप्ति तो परिस्रुता स्राविणी, द्योकामनी[58], कामाक्षी में विश्रामित थी। देह जैसे जड़ हो चुका था, शव की सन्नशून्यता से उनके अन्तर्यामी निःस्तब्ध हो निःसंज्ञ हो गए थे, वे मात्र साक्षीभूत थे।

अंकस्मात् दिव दीधिति कौलकी, आप्पति[59] के तल से उठी। उसकी महस्विनी काया से प्रकाशात्मन किरणच्छटा फूट रही थी। हिमोस्र[60] ज्योत्स्नालोक में संतार करती सुरांगणा कौलकन्या पक्ष्मकाल में ही मत्स्येन्द्र के वाम दिशा में आ स्थिर हुई। कुलनी के मृणाल भुजपाश मे प्रबद्ध एक अन्य मत्स्येन्द्र आकाशपाती ज्वलनक्षत्र की भांति पतित हो पुलिनस्थ मत्स्येन्द्र पर आच्छादित हो कर उनके रन्ध्र–प्रति–रन्ध्र मार्ग से उनमें विलयी हो गया।

मत्स्येन्द्र की कुलसंज्ञा सजाग्र हुई, महोल्वण के शाम्पेयोद्दीपन से उनका समग्र तनु विस्तार आलोकात्मिन् हो उठा। उनके तनुरोहों से भी दिव्योत्भाषितालोक झरने लगा, स्वमेव ही भुजाएं आमंत्रणी मुद्रा में उठ गई, और वह कुण्डलनी रूपिणी कुलकन्या, कुलात्मक मत्स्येन्द्र के पुरूषांक में आ गिरी। जगत निरामय,

निःस्तब्ध, निर्गुणी हो निरञ्जन की नैःश्रेयसिकी[61] सत्ता में निष्पन्न हो नैष्कर्म्य[62] हो गया।

(यद्यपि मात्र जगजड़त्वकारिकावस्था ही नैःश्रेयसी नहीं, उसकी सूक्ष्मतर गतिगम्यता का पूर्ण समापन और शवातीतता ही श्रेयस्प्रद है, तथापि जड़त्व की स्तब्धिता भी उपलब्धि से कम नहीं)

मत्स्येन्द्र के प्राण, वायु से अभिमर्षित हो कूठस्थ कुहर की ओर क्षिप्र गति से बढ़े, पर कुलात्मिका ने प्राण और वायु को मध्य में ही स्तंभित कर दिया। अकल्कता[63] किलक पूर्ण स्वर में संराधन[64] करती मुदित मुखरित हुई!

"अवधूत........ऽ.........अवधूत......ऽ............ऽ.........[65]" उसका कण्ठ स्वर था या वीणातन्त्री का मृदु-प्रभूत्यनाद[66]। नदनध्वनि अधिक समय तक प्रशान्त चेतना से मिथुन रचाती रही। मत्स्येन्द्र उस नादानन्द से पृथक हो भी नहीं सके थे कि वह कुलमानिनी सौन्दर्यवसित दिव्य वर्ष्मन्[67] सावत्तिकी[68] ने अपना मायामय गुण का प्रदर्शन किया। पक्ष्मकाल के पूर्व में ही वह मत्स्येन्द्रचिति समाकर्षिणी[69]-समीचकावस्था[70] से परांगमुखी हो सर्वशस्[71] वातामण्डल में विलय हो गई। मत्स्येन्द्र ने सविभ्रम[72] पुरुष की भांति विकल हो उसे पुकारा-

"मनस्विनी........इ......ई........ई...........।" उनका पुकार स्वर सरिलपति[73] की अर्णादगर्जना और क्षिप्रवात्या की महाध्वनि में घुल गया।

"पुण्य मनस् महात्मन्, निश्चिय ही आप धन्य हैं। मैंने भी त्रिकोणमयी का सद्यःघटित लीला अवलोकित किया। आप निश्चिय ही कौलपुरुष अथवा वज्रयानी हैं। प्रकटित शक्ति या प्रज्ञा अथवा मुद्रा के स्थूल सेवन-साधन का समय अब समीप है। यह एक हिमधौत वस्त्रावरित, शुक्लकेशी, सुलम्बि देही, वृद्ध ब्राह्मण थे जो अकस्मात ही मत्स्येन्द्र के निकट आए थे!

मत्स्येन्द्र चौकें, कारण था कि निर्जन सागरीयतट पर जनोपस्थिति! वृद्ध ब्राह्मण कह रहे थे-"इच्छा, ज्ञान और क्रिया ये तीन त्रिकोण के रूप में परिगत है पुत्र यथा-

"त्रिकोणं भगमित्युक्तं वियत्स्थं गुप्तमण्डलम्।
इच्छा ज्ञान क्रिया कोणं तन्मध्ये चिञ्चिनीक्रमम्॥"

विसर्गरूप पराशक्ति किस विधि क्रिया शक्ति का रूप धारण करती है, सिद्धान्तः तू अभिक्षित है पुत्र। वस्तुतः यह आनन्द-उदय के माध्यम से इच्छा और

ज्ञान की व्यवस्था को भेदित करती है और यही क्रिया शक्ति का रूप है, त्रिकोण का उल्लास भी इसी का द्योतक है। अतः उस नित्योदिता, परमानन्दमयी त्रिकोण रूपिणी शक्ति का संधान कर स्थूल यजन कर।"

–"आप कौन है भगवन्?" मत्स्येन्द्र संयतांजली बोले। यद्यपि उनकी साधक दृष्टि ने प्रथमद्रष्टतः ही जाना था कि आगत ब्राह्मण मानवेत्तर सृष्टि है।

–"मेरा इस महाप्रज्ञा से पूर्ण परिचय है पुत्र। वह मात्र तेरे हितार्थ ही जन्मिनी है। उसी के सुवासित पद्मालय अथवा निसर्ग रूपी भगस्थ त्रिकोण के मध्य अजरामर, गगन की निर्मलकान्ति से युक्त, अनवकास और प्रकाशमय वज्रासन में स्थापित हो, सत् चित् धर्मी बन।" धवलित पुरूष ने कहा।

–"मैं उसका स्थूल संधान कहाँ प्राप्त करूं दिवि ब्राह्मण?" मत्स्येन्द्र ने प्रश्न किया।

"यहाँ से दक्षिणकाली पीठ जा वत्स। उसी तमोपयी की श्यामच्छाय में आसनासीन हो पीतवर्णी चतुष्कोणीय आकार में आधार स्थल स्थित कामरूप पीठ का सिद्धन चिन्तन कर। इसी पीठ पर जब बिन्दु चैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है, तो यही स्वयम्भुलिंग की पुण्य संज्ञा से संज्ञेय होता है। यह पीठ (कामरूप) महात्रिकोण किंवा अग्नि कोणस्वरूपक है, यही भगपीठ है। इस कामरूप पीठ की प्रत्यक्ष उर्मि है महाराज्ञी, पुष्पेश्वरी कामाक्षी। वह मेरी वात्सल्यभाजिनी कन्या की भांति है। शेषतः दिक् निर्देश तुझे समयानुसार प्राप्त होते रहेगें। मेरा शुभाशीष तेरा कल्याणकारण है योगी पुत्र मत्स्येन्द्र।" कहते हुए ब्राह्मण का हिमधौत कलेवर घनसार की भांति वायुमण्डल में घुल गया। मत्स्येन्द्र की चेतना ने तत्क्षण ग्राह्य किया और वे चकित हुए–मन ने निर्णय दिया इस ब्राह्मण के रूप में कोई अन्य नहीं, स्वयं एकादशरुद्र भगवान वज्रांगदेव ही थे, जो अपनी मुक्तिमार्गणी गुणवृत्ति के कारण उनके श्रेयस् हित प्रकट हुए थे।

मत्स्येन्द्र को हिमालयनी सिद्धचर वज्रधर का स्मरण आया, उनके द्वारा कथित सूचनानुसार पुष्पभोगी देवी कामाख्या का ही अवतारण राज्ञी तिलोत्तमा के गर्भ से प्रकाशित हुआ है। वह हिरण्यकांति की समृद्धि और निर्मल कांतिक यौवन की प्रत्यक्ष उत्सधरा, महादेवी हरप्रिया गौरी की प्रतिच्छाया, कस्तूरिकागन्धा, वज्रधर तनया, तिलोत्तमा–उत्संग की सुषमा ही उनकी अपनी कौलशक्ति अथवा महामुद्रा या महाप्रज्ञा है? वह कुलीना तो नारी निर्ग निवासिनी है। महाराज्ञी तिलोत्तमा सुता कामाक्षी का यत्किञ्चित महिम प्रसंग उन्होंने वज्रधर और गोरक्ष

के मध्य परिचर्चा में भी श्रवण किया था। उस प्रसंग के अनुसार गोरक्ष को सुरत–आश्रम के सन्निकट, नित्यश्मशान में द्वय दिव्य वनिताएं दृष्टिगोचर हुई थीं, उनमें एक कुसुमसुकुमार प्रांगी कामाक्षी की तद्रूपणी थी।

मत्स्येन्द्र की स्मृति पट्टिका पर महाराज्ञी तिलोत्तमा भाषित हुई–उनकी मति ने निश्चिय निर्णय किया–"तिलोत्तमा तनया कामाक्षी ही वक कुलकन्या है जिसके लक्षण महागुरु आदिनाथ–अवतार भगवान दत्तात्रेय ने निर्देशित किए थे।

मत्स्येन्द्र के मनस् पटल पर उनके अत्युत्साही शिष्य अनंतवज्र की मूर्ति भी मूर्त हो गई, जो अमन्दोत्साह और पौरुष शौण्डीरवश, उनकी आज्ञावहेलना कर नारी देश में योनि पूजा आदि सर्पया पद्धति के विनाश किंवा अन्त हितार्थ प्रविष्ट हुआ था और वज्रयोगिनी लोलापा की पद्मपुरी की पाटल भूमि में अपने शुक्ल बिन्दु का अधोपात कर गर्भ मोचित हुआ था।

मत्स्येन्द्र के चिति मण्डल में दिव्य भाष्कर–उदित हुए, जिनके प्रखरालोक में उन्हें अपना कर्त्र, अपनी भवितव्य योजनाएं दर्शन होने लगी। उन्हें गोरक्ष का हठाभियान दर्षित हुआ। इस महायज्ञ की पूर्णता के लिए आवश्यक है कि गोरक्ष का सामाजिक, नैतिक और धर्मपरक सम्मान अपने गुरु से भी वृहद्त्तर हो। गोरक्ष का महिमामण्डन तब ही संभव होगा। जब गोरक्ष अपने पंथ सिद्धातों मे गुरु से भी उच्चतर शीर्ष पर लोक जगत को दिखाई दें। ऐसी परमोच्च गुरु अवस्था को प्राप्त कर गोरक्ष विनयी और गुरु के प्रति पूर्ण निष्ठावान बने रहे तो उन्हें पूर्ण शिवत्व दीक्षा सिद्धि की पात्रता भी सिद्ध हो सकेगी।

मत्स्येन्द्र को जगतालोकी अपने पंथ नाथपंथ की सर्व मान्यता और लोकप्रियता की स्थापना, मलेच्छ आतंकियों के बर्बर जन अत्याचार और ममत्व से संपूरित नारी अभ्युत्थान हित, उन्हें कुपात्र, कुत्सित कथित अघोर, कालमुख, कापालिक और वामाचारियों की भोगहिंसा से सुरक्षण के हित गोरक्ष को गुरु से भी श्रेष्ठत्तर रूप में निरूपित, स्थापित करना ही होगा, भले ही इस हेतु उन्हें लोकावमाना का पात्र बनना पडे, अपवादित बनना पड़े।

मत्स्येन्द्र ने अपनी योजना को विस्तार रूप देने का निश्चिय कर लिया। उनकी योजना और पूर्णत्व की साधना के लिए केन्द्र बिन्दु मात्र कामाक्षी ही थी। वे अपारनीर के सानिद्ध और साक्षी में लोक हित चिन्तन में मग्न हो गए। उनकी योग दृष्टि में ज्ञाताज्ञात–प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष पात्र नृत्य करने लगे। सागरीय नीर साक्षी में उन्होंने भरतभूमि के सर्वाभ्युत्थान के लिए उन्होंने संकल्प लिया।

प्रीत्यूष के मुहूर्त में ही उन्होंने भुवनेश्वरी विमला, जगत्पति जगन्नाथ, भगिनी सुभद्रा और हलधर दाऊ से विदा ली और चल पड़े, उनका लक्ष्य कलिकाता की दक्षिणकाली का जागृत पीठ था फिर वहाँ से कामरूप।

---

1. अंगरक्षक
2. आश्रम
3. विस्तार
4. समाधि
5. प्रेम प्रसन्न
6. प्राण को आनंदित करने वाली ऊर्जा अथवा शक्ति
7. मैथुनकाल में मिथुनरत युगल के सीत्कार स्वर (सिसकारी)
8. शब्द, गुंजार
9. चेतना
10. खोजना
11. अनुभव, बोध
12. कामशास्त्रानुसार एक रतिबन्ध-यथा नारीपाद् द्वयं कामीधारयेत हृदये यदि। धृतकण्ठो रमेत् कामी बन्धः स्यात इति सुन्दरः।।
13. पसीने से तर-बतर
14. सूर्य की भांति चमकते
15. पसीने का सागर
16. नदी
17 दिव्य साधक के भाव लोक में ऐसा घटित होता है। वस्तुतः यह रहस्यवाद है, इसे स्थूल जगत से न जोड़ें।
18. शीतल, ठण्डक
19. सन्ध्या
20. मुख्यमार्ग
21. समुद्र
22. किनारा
23. स्तनमण्डल
24. समुद्र
25. समुद्र
26. अन्तर्धि
27. आकाशमार्ग
28. पृथ्वीतल
29. समुद्र
30. मुख
31. चन्द्रमा
32. चन्द्रमा
33. समुद्र
34. चन्द्रमा
35. समुद्र
36. जल का तुरन्त बाहर निकला किनारा
37. सागर
38. चन्द्रमा
39. चन्द्रमा
40. समुद्र
41. चन्द्रमा
42. पोषित-पालित
43. मिलाव, स्पर्श, योग, सम्बन्ध आदि
44. समुद्र
45. समुद्र
46. समुद्र
47. समुद्र
48. समुद्र
49. समुद्र
50. चन्द्रमा
51. समुद्र
52. समुद्र
54. समुद्र

53. बौधकापालिक सम्प्रदाय अथवा पंथ में श्रव्य भगवान हेरुक और उनकी प्रज्ञा चित्रसेना से तुल्य।

55. प्रशंसाकारी

56. छल से रहित

57. उत्सव

58. स्वर्ग सुन्दरी

59. समुद्र

60. चन्द्रमा

61. मोक्ष देने वाली

62. गीता मे योगेश्वर कृष्णोपदेशित आसक्ति और फल की कामना त्याग कर किए जाने वाला कर्मानुष्ठान

63. पापशून्य

64. आराधना करके प्रसन्न करने की क्रिया

65. निर्वाणतंत्रवर्णित अवधूत-

"............अवधूतो........यथा भवेत्।
वीरस्य मूर्ति जानीयात सदा तत्वपरायण:।।
यद्रूपं कथित सर्व संन्यासधारणं परम।
तद्रूपं सर्व कर्माणि प्रकुर्यात् वीरवल्लभम्।।
दण्डिनो मुण्डनं चामावस्यामाचरेद्यथा।
तथा नैव प्रकुर्यात्त वीरस्य मुण्डने प्रिये।।
असंस्कृतं केशजालं मुक्तालम्बि कच्चोच्चयम।
अस्थिमाला विभूषा वा रुद्राक्षानरि धारयेत्।।
दिगम्बरो वा वीरेन्द्रश्चाधवा कौमिनी भवेत्।
रक्तचन्दनसिक्तांगं कुर्याद् भस्मांग-भूषणम्।।"

प्राणतोषिणी तन्त्र में भी अवधूतों के चार प्रकार उल्लिखित है-

1. ब्रह्मावधूत 2. शैवावधूत 3. भक्तावधूत 4. हंसावधूत

66. देह

67. मायामयी

68. भली भांति कर्षण करने वाली

69. संयोग-अवस्था

70. सब ओर, सर्वत्र

71. रसिक

72. समुद्र

हिमाचल के पाद प्रान्त, हिमाच्छादित श्रृंखला धवलगिरि की उपत्यका स्थित वज्रेश्वरी नगर के वाह्य उपवन में। शीत ऋतु का अस्थि कम्पन वातप्रवाह मन्द हो चला था। गोरक्ष नेपाल से भोट देश में पहुँचे थे। वहाँ चीनाचर का प्राधान्य था। लामा साधक एवं उनके साधक हीनयान–महायान में बटे हुए थे तो पृथक से कापालिक बौद्धो का भी प्रभाव था। वज्रयान, मंत्रयान, सहजयान सम्मत साधनाओं का प्रभाव पूरे भोट देश पर ही नहीं अपितु अन्य देशों में भी था। वे अतिशीघ्र भरतभूमि के शर्म्मण्याकुल थे अतः अपने शिष्य तत्कालीन नेपालराट से विदा ले, इस दुर्गम हिमाच्छादित श्रृंखलाओं को पार कर किन्नरप्रान्त से होते हुए, महाश्मशान अत्युग्रपीठ चामुण्डा और छिन्नमस्ता पीठ का दर्शन लाभ ले त्रिगर्त–प्रदेशान्तर्गत नगर कोट स्थित तारिणीदेवी के सजाग्र विग्रह वज्रेश्वरी धाम में पहुँचे। गोरक्ष के साथ उनके दो शिष्य महालंग और आलंग थे।

उन दिनों नगर कोट वज्रयानियों के प्रबल प्रभाव में था। योनि पूजन पंचमकार की सार्वजनिक साधनाएं भूरि मात्रा में सर्वमान्य थी। नागर जन योगी, यतियो और शाक्तावधूतों का सम्मान कर उन्हें साधना हितार्थ समस्त उपादान प्रदान करने में संकोच नहीं करते थे। यह नगर भी मलेच्छ आक्रान्ताओं, तस्कर, आदि से मुक्त नहीं था।

वीर्यवान दैव्याराधकों पर अंधविश्वासी थे। उनका अन्ध चिन्तन था कि मलेच्छों से दैवशक्ति रक्षा कर उन्हें यथोचित दण्ड देगी, अतः वे निवीर्य की भांति आचरण कर पाषण्डरचिकों पर पराश्रित थे। गोरक्ष ने यहाँ भी अपनी अलख हुंकार से नवचेतना का सूत्रपात किया।

रात्रि का प्रथम प्रहर प्रारम्भ हुआ। नगर के बाह्योपवन में काष्ठ संचयन कर महालंग और आलंग ने धूनी चैतन्य कर दी फिर सिंगी नाद किया। दूर–दूर तक हिमाच्छादित श्रृंखला और घाटी सिंगीनाद (एक वाध्य यंत्र) की अनुगूंज से गुंजित हो उठे। इसके साथ ही महालंग और आलंग का गगनघोषी 'अलख निरंजन' के महानाद से घाटी ध्वनित्व हो उठी।

गोरक्ष आधारी पर आसीन हुए। महालंग और आलंग गोरखवाणी का गान करने को सन्नद्ध हुए पर गोरक्ष मध्य में ही बोले–

–"महालंग, आलंग!

–"आज्ञा गुरुदेव" दोनों ने अंजलीवद्ध हो उत्तर दिया।

–"यहाँ क्या अनुभव हो रहा है?" गोरक्ष का विचार पूर्ण प्रश्न था।

–"गुरुदेव यहाँ भी वज्रयान पुष्पित पल्लिवत है। अपितु यहाँ भगवती वज्रेश्वरी की सुकृपा वर्षणा प्रत्यक्ष दर्शन देती है।" महालंग ने अपना विचार व्यक्त किया।

"गुरुदेव भिक्षावृति के समय मैनें वज्रेश्वरी मातृ पीठ पर आगत एक सिद्ध की चमत्कारित गाथा श्रवण की। उन सिद्ध की संज्ञा एक गृहस्थी ने जालन्धरपा कही!" आलंग ने सविनय सूचना दी फिर कुछ सहमते हुए मन्द स्वर में विनयावेदन प्रस्तुत किया।

–"गुरुदेव की आज्ञा हो सकी तो हम भी प्रातः प्रत्यूषी लग्न में वज्रेश्वरी का पुण्य दर्शन करें। महालंग की भी ऐसी ही स्पृहा है।"

–"हाँ गुरुदेव वज्रेश्वरी तो वज्र (वीर्य) रक्षिता है, उसके पुण्याशीष से हमें आत्म लाभ अवश्य होगा।" महालंग ने सविनय निवेदन किया।

".." गोरक्ष निरुत्तर रहे, उनकी अनिमेष दृष्टि धूनी कुण्ड से ऊर्ध्वगम्या वैश्वानरी पीनशिखा पर स्थिर थी, इस शिखा में वे जालन्धरिपा का तपोमय स्वर्ण गात्र देख रहे थे। जालन्धरिपा उन्हें गुरुवत हैं, उनके शिवरूप गुरुदेव मत्स्येन्द्र के गुरुभ्राता।

शिष्यगण उनकी ताली (तन्द्रा) देख, मौन हो गए। क्या गुरुदेव नागिन[2] का प्रताडन करने मे अभ्यस्त हैं अथवा उलटा[3] के परमानन्द में चेतना को स्थिर कर आनन्दातीत होते जा रहे हैं?

कृष्णा चतुर्दशी के सूच्ची भेद अन्धकार के परिवेष्टन में हिममण्डित श्रृंख तमिस्त्र तद्रूप हो गए, आलोकित थी तो धूनी ज्वला और गोरक्ष की तपःमण्ड योग काया। सर्वत्र निशीय निःस्तब्धता..........मात्र पवन का सर्रर......सर्रर शीतल स्वर।

अन्धकार में उद्दीप्त धूनी कुण्ड की अग्नि शिखा। अग्नि शिखा है अथवा ज्योतिर्लिंग? हाँ, ज्योतिर्लिंग ही तो है–पाताल से उद्भूत, धरित्री के वक्ष को विदीर्ण कर गगनमण्डल तक आलोक का महाप्रसारण करता ज्योतिर्लिंग। मूलाधार से ज्ञानालोक की उल्का और उससे निःसृरित प्रकाशमय लिंग का महालोक! वही तो सत्य सुरा है, वही तो एकमेव है। महालंग गा उठा–

न चतुरानन ब्रह्मा है, न चतुर्भुज विष्णु। न त्रिनेत्र रुद्र हैं और न ही सहस्राक्षी इन्द्र। न सर्वभक्षी अग्नि है, न सर्वाभिव्यापी वायु और न ही क्षमाशीलधरिणी। न विस्तारित व्योम है, न दिशा और न ही जीवभक्षी काल। न समग्र विज्ञान के अनुदेशक वेद हैं, न पंक भस्मी यज्ञ और न ही विश्वात्मा रवि और रससंचरी शशि भी नही है। न विधि है, न विकल्प। सत्य है तो अनहदनाद, सत्य है तो स्वज्योति (आत्मा) सत्य है तो नाथ, सत्य है, बस अनहद.......अनहद........अनहद ....सोऽम्..........सोऽम्.......हँ ऽ सो..........हँ ऽ......सो...............।" महालंग के साथ अलंग भी गा उठा।

महालंग की दृष्टि अकस्मात् ही आंतरिक्ष की ओर उठी। गगन में दीप्ति स्मित निशीथ नक्षत्र मण्डल के निम्न देश मेघप्रान्त से अद्भुत-आलोक से आलोकित उल्कापिण्ड को निरन्तर भूतल दिक् से समाकर्षित होते देख महालंग ने धूनी सेवित गुरु गोरख की ओर देखा। स्वयं गुरु भी भूतल से आधारी आसन सहित ऊर्ध्वस्थ थे।

–"मित्र आलंग ऐसा प्रतीत होता है कि कोई तेजस्वी शक्ति आकाश पथ से गमन कर धूनीधरणी की ओर आगत हो रही है। गुरु का आसन भी आंतरिक्ष में अवस्थित है, वे संभवतः आगत शक्ति के स्वागतार्थ ही धरित्री तल से उठकर ऊर्ध्व स्थित हुए हैं।" महालंग ने पुलक प्रहर्षण से कहा–

–"ऐसा ही सत्य प्रतीत हो रहा है।" आलंग भी प्रसन्न चित्त हुआ।

आलोक पिण्ड धूनी के पास, ठीक गोरक्ष के सम्मुख आ स्थिर हुआ। जैसे गोरक्ष की तन्द्रा भंग हुई, उधर आलोक प्रसारी पिण्ड का दिव्याकार स्पष्ट हुआ। गोरक्ष ने सश्रद्धेय स्तवन किया।

चित्त की परमगुह्य में वसित, उन्मनी मुद्रा प्रजनिका, नगरकोट की अधिष्ठात्री अम्बा। जीवमात्र की सृष्टि संरचिका, पराप्रकाश की मूलोत्सा, तुझे प्रणाम है–

सत्त्वे सत्त्वे सकलरचना संविदेका विभाति।
तत्त्वे तत्त्वे परमरचना संविदेका विभाति।।

ग्रासे ग्रासे बहलतरला लम्पटा संविदेका।
भासे भासे भजति भवता वृंहिता संविदेका।।[4]

महिमामयी नील तनुधरित्री वज्र संरक्षिका जगदेश्वरी नीलसरस्वती माता।

आदिनाथ की नाद कुलीय परम्परा में पोषित गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का चरणचंचु किंकर गोरक्षनाथ का प्रणाम प्रतिवेदन स्वीकार करे"

उज्ज्वलालोक से नीलवसन प्रावरिता तनुयष्टि का प्रादुर्भाव हुआ। द्विहस्ता, त्रिनेत्रा, संहतस्तनी, नीलालोकस्त्रावी अंगना, घनमेचकी मुक्त केशराशि से सज्जित दैव्या मन्द्र वेग से हँसित हुई।[5]

–"पुत्र............। मेरे यशस्वी तनय..............ममपयोधर पाथन वत्सल, तेरा शुभ हो। पुत्र तेरे आगमन का स्वागत है–मैं मन्दिरालय में स्थिर नहीं रह सकी, अपने प्रिय पात्र जालंधर को वहीं छोड अपने पुत्र के समीप आई हूँ। अरे निष्ठुर गोरक्ष, अपनी माता के पास भी नहीं आया रे।" नीलालोकनी माँ तारा विपुल हुई और अपने नील पुंज के दिव्य क्रोड़ में गोरक्ष का तनुभवन समेट लिया।

गगन वक्ष में एक दिव्यपिण्डी आलोक पुंज और उद्भाषित हुआ। वह प्रकाशपुंज भी धूनी के समीप आ स्थिर हुआ। आलोक पुंज से अभियुत प्रातः पुण्य स्मरणीय भगवान दत्तात्रेय–उपदेशित जालन्धरनाथ का उदीप्ति देह पिण्ड प्रकट हुआ। नीलालोकवसिता माँ तारा वज्रेश्वरी का नीलपुंज गोरक्ष को आशीषवर प्रदान कर आन्तरिक्ष में उठा और लुप्त हो गया। जालन्धर मृदु वचनों से गोरक्ष के भस्मलेपित तनुविस्तार को बाहुबद्ध कर प्रेमाश्रुओं का विमोचन करते कर रहे थे–

–"रे जगती के कल्याणकारक अवधूत पुत्र। तेरी ही प्रतीक्षा थी। मत्स्येन्द्र के मूलज्ञान, रे गोरक्ष संसार का कल्याण कर पुत्र, कल्याण कर।"

–"माता मयनावती के दर्शन नहीं हो रहे प्रभु।" गोरक्ष ने विहँसि जिज्ञासा की।

–"मैं यहाँ हूँ रे वावले, अवधूत।" शून्य से स्वर उभरा।

–"मेरी माता महासिद्धा है, महामानिनी भी।" गोरक्ष बोले–

मयनावती का चिर सौन्दर्य प्रकट हुआ। गोरक्ष ने चरण रज ग्रहण की फिर मन्द स्वर में रूप ही हीरक उज्ज्वला मयनावती से कहा–

–"प्रभु पर कृपा करना भगवती–इन्हें सुरक्षित.............।"

–"गोरख............।" मयना ने स्नेहमयी, कृत्रिम अमर्ष से नेत्र विस्फारित किए। जालन्धर हँस उठे, गोरक्ष उनके पीछे आ छिपे। योगियों का योग

वातावरण-हास्य प्रमोदित हो उठा। महालंग और चकित-भ्रमित से योग क्रीड़ा देखते रहे।

हास्य-आमोद विश्रामि भी नहीं हुआ था कि आकाश में पुनः चपलालोकी पिण्ड स्फूर्ज हुआ। जालन्धर सहित उपस्थित सभी की दृष्टि का केन्द्र बना आलोकोदभाषित पिण्ड पुंज धरित्री से आ टिका।

–"ये मेरे गुरुभ्राता मत्स्येन्द्र का ही ज्योक-ज्योत्स्न रूपालोक है।" जालन्धर मुदित हो बोले मत्स्येन्द्र के चरणों में गोरक्ष ने अष्टांग प्रणाम किया, जालन्धर उनसे सम्मिलाप किया, मयनावती ने भी मत्स्येन्द्र को यथोचित सम्मानार्पित किया और महालंग-आलंग दण्डवत भूशयी हो मत्स्येन्द्र को स्वार्पित हुए। कुछ क्षण परिचर्चा के पश्चात, मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, जालन्धर और मयनावती एकान्त परिचर्चा के हेतु, एक गहन हिमघाटिका में उतर गए।

महालंग और आलंग ने धूनी में काष्ठाहुति दी फिर उसकी साक्षी में गोरख के पदों का गान करने लगे।

गुरु आदेश का पालन करते हुए गोरक्ष एक पक्ष पर्यन्त वज्रेश्वरी पीठ पर रहे। उन्होंने वहाँ आलंग को अपने प्रतिनिधि रूप में नियुक्त किया। जालन्धर कुछ समय त्रिगर्त प्रदेश निवास कर पूर्व दिशा में जाने के इच्छुक थे।

गोरक्ष ने ज्वालापीठ पर भी एक लघु केन्द्र की स्थापना की फिर पंचनद देश से होते हुए मध्य देश के मालवा को अपना लक्ष्य बनाया। पंथ की पुर्नस्थापना हेतु उन्होंने स्थान-स्थान का भ्रमण कर निश्चिय किया कि धर्माभियान की सफलता के लिए राजभोगियों को राजराटों को, नाथपंथ में दीक्षित करना होगा। इस प्रकार राजा की अनुगत प्रजा स्वमेव ही नाथानुयायी हो जाएंगी। राज्याधीशों को भोग-विमुख करना होगा, उन्हें यौन साधनाओं की कुत्सा से भी मुक्ति सिद्धि हेतु विरागित कर योगोन्मुखी करना होगा। इसके लिए गोरक्ष ने अपनी सिद्धियों और विद्या का, योगनीति और मानवकल्याण हित कूटनीति का प्रयोग भी सुनिश्चित किया।

---

1. हिमाचल प्रदेशस्थित कांगडा नगर
2. कुण्डलनी
3.. अजपा जप हंस (सोऽम)
4. सिद्ध सिद्धान्त संग्रह
5. यद्यपि माँ तारा का यह स्वरूप शास्त्रीय नही है, तथापि लेखन के समय लेखक के चित्ताकाश में यही स्वरूप उदय हुआ।

रक्षोजननी[1] का अर्द्ध काल। कामाक्षी की हेमन् काया के अंग-प्रत्यंगों में प्रसन्नस्फुर पुनः पुनः स्फुरित[2] हो रहा था। उस दिन प्रत्यूप मुहूर्त से ही उसके मनस् व्योम में स्त्रीत्व भाव का स्पृहणीय रंजन उदय हो रहा था। कभी उसकी कर्णेन्द्रियों में रतकूजन[3] नाद श्रवण होता तो कभी स्तनांशुक[4] के मध्य स्तनवृन्तों[5] का स्फुटन[6] वे पुरूष स्फालन[7] ईहा[8] से स्फुल[9] हो उठते। कभी कासृती[10] के गाम्भीर्य में प्रिय-आलिंगन का तृषोदय होता तो दीर्घ समय तक उस गोप्यतम गोपी का समग्र विग्रह मद्र रस से आप्लावित होता रहता। अनेकों वार उसे पुष्पिणी[11] होने का मिथ्याभाष हुआ।

उसे भुवि-आश्चर्य हो रहा था कि कामदेवन की रंगधरा यह यौवन प्रभूत्य, परिमलकाया[12] क्यों रतार्थिन[13] हो रही है, मन का देवता क्यों काम रवण[14] कर रहा है? चितोवसित रागिनी क्यों रतिपति के रतपर्जन्योत्सपुरूष का मुग्ध गान कर रही है?

वासर काल में वह राज्यकार्यों में सव्यस्त रही, पर उस व्यस्तता में भी स्मर भाव भावित होता रहा, रात्रि ध्यानचर्या में भी प्रसृत्वर प्रसारित अनंग उसके विकसित यौवन अंगों से आनन्द रस का परिस्पन्द करता रहा। अन्ततः वह विकल होकर वज्रांग-विभु के शरण्य हुई।

–"ऊर्ध्व रेतस् प्रभो, कामस्पृहा की महावात्या का घोर घूर्मण मुझे रतिरसेच्छा[15] के लिए विकल कर रहा है, क्या आज इस महोद्दाम वेग से देह विशीर्ण हो जाएगा, अथवा इस कामाग्नि में देह ही नहीं प्राण भी भस्म हो जाएंगे प्रभो। काया के रन्ध्रों में आकाश निवासित है और नारी की मोहक कलेवरी कामाक्षी में महाकाश रमता है। वातवेग के महाघात से पुरूष-रेतस् की आहुति का भी वही एकमेव रजस् कुण्ड है जिसका शुभ्र सुफल गर्भ में धारण कर नारी निखिल ब्रह्माण्य प्रस्वती बनती है। आप स्वयं महाकाश के मण्डल हैं और महाघाती वात के पुत्र भी। आप अपने संभार को संभालिए प्रभो, अथवा महाघाती वात (प्राण) धारक और सोमस्त्रवी पुरूष का आदान करे भगवन्।" कामाक्षी के कर्ण विस्तारित स्वच्छ नेत्रों से अश्रुवारि झर उठी।

जैसे व्रजांगदेव में विक्षोम हुआ। सपर्याकक्ष में सौरम्भ प्रसारित हुआ-आलोक का एक विस्फोट सा हुआ, और...............और एक दिव्य मानवेत्तर सत्ता प्रकट हुई।

—"पुत्री..........! ऐसा क्षोम...........? ऐसा अधैर्य्य.........?" कक्ष में शान्त स्वर मुखर हुआ। कामाक्षी के रुद्ध नेत्र स्फुटित हुए, उसके सम्मुख उसके जनक ....वज्रधर स्मित भाव से खड़े थे। कामाक्षी का मन प्रसन्न हो उठा।

—"माता, शुभ-मंगलमय है पूज्य चरण?" कामाक्षी ने तिलोत्तमा के समाचारों की जिज्ञासा की।

—"हाँ वह शुभमयी सप्रसन्न है।" वज्रधर आसनानीन हुए। फिर गम्भीर स्वर में बोले—

—"तेरी विकलता मुझे ज्ञात है तनया। ऋतु कृत संवेग और आयुकृत स्पृहाएं युत होती हैं तो स्मरसंवेग प्रबल हो जाते हैं, यह सामान्य सिद्ध है पर जब साधक चिति साधना के चरमबिन्दु की ओर प्रसत्वर गमन करती है, तब कामदेव विघ्नरूप ग्रहण कर दिक् भ्रमित करने का प्रयास करते हैं। काम के संवेग को शिव ने तृतीय नेत्र विस्फारित कर भस्म कर निर्देही बना दिया था, यह आख्या प्रत्येक साधक को मंत्रवत ग्राह्य होनी आवश्यक है। काम को मात्र ज्ञान से ही पराजित किया जा सकता है अस्तु एतर्हि काल में तुम्हारे अंगों में कामदाह का कारण सम्पूर्णतः आध्यात्मिक है। देहस्थ अवयव शिव के आगमन का संकेत ग्राह्य कर उत्फुल्ल-प्रफुल्लवरित हो रहे हैं-उचित आचार का शुभ समय समीप है। उस समय तक मैं अपने तपःबल के माध्यम से इस वेदना का हरण करूंगा।" वज्रधर ने कामाक्षी को आसनासीन कर कामाक्षी में, दृष्टि द्वारा, हस्तचालन द्वारा, स्पर्श द्वारा क्रियाएं सम्पन्न की। कामाक्षी के देहांगन में शीत उतर आया, मंन बुद्धि के आधीन हो ज्ञान के क्षेत्र में गमनोद्यत हुआ। कामाक्षी को शवासन का स्मरण हुआ, शवेश्वर का तेजस स्मृत हुआ, उसकी चेतना काम लोक से मुक्त हो परमानन्द में हस्तांतरित हुई। ध्यानालोक में उसके नेत्र मुंदने लगे। उसे ज्ञात ही नहीं हुआ कि कब वज्रधर ने उसके कक्ष से गमन किया।

बंग देश की निर्मल यशः कान्ति और शाक्तों की श्रद्धा तथा साधना का सिद्ध पीठ, दक्षिण काली का श्याम विग्रह। मत्स्येन्द्र रात्रि के प्रथम प्रहरान्त में माँ के प्राकृत विग्रह के समीप पहुँचे। प्रतिमा के मूलस्थापन-स्थान में उन्होंने नवयौवन से सम्पन्न श्यामांगी नवयुवती को देखा। आश्चर्य की बात यह कि मन्दिर में जन शून्यता थी, गर्भ गृह के कपाट पट्ट भी खुले थे। न मन्दिर का दैव्यार्चक और न साधक दर्शनार्थी?

इसके पूर्व भी मत्स्येन्द्र इस पीठ का सेवन कर चुके थे, पर इसके पूर्व

उन्होंने मन्दिर में प्रतिमा का ही दर्शन किया था। उन्होंने गम्भीर दृष्टि से देखा तो प्रतीत हुआ, श्यामा का आच्छादन कर श्यामा युवती खडी है!

युवती का अत्युदभव स्वरूप और अवधूत श्रृंगार का दर्शन कर मत्स्येन्द्र मुग्ध हुए! युवती ने कटि पर मालचर्माम्बर धारण कर रखा था। अनावृत स्तन समेरुओं से संघर्षण करते ग्रीवा के गलहारी नरमुण्ड भले प्रतीत होते थे। श्यामांगी की घनमेचक मुक्त और नितम्ब प्रसारिणी केशराशि की सुषमा भी अनोपमेया थी। उसके एक हाथ में ज्वलित कपालपात्र और द्वितीय कर की सिन्दूरलिप्त त्रिशूल की शम्पाद्युति का दर्शन कर मत्स्येन्द्र का कौलमन भूरि प्रसन्नता से प्रफुल्लित हो उठा।

—"आदि प्रकृति के प्रतिम विग्रह को अपने प्रतिच्छायाच्छन से मुक्त कर भगवती।" मत्स्येन्द्र उसकी मेचकच्छटा का रसपान करते हुए बोले—

—"मैं ही आद्य प्रकृति हूँ पुत्र, फिर प्रतीक चिह्न के चिह्नांकित प्रतिमा से मोहवशता क्यों? मैं प्रतीक्षारत थी, तेरे आगमन की हेतु रूप भी मैं ही हूँ, मेरे शोणित में स्नान कर फिर अरूण-तरूण रूप में अपना लक्ष्य साध। आ मेरा अनुगमन कर.............।" कहती हुई मुण्डमालिनी त्रिशूल कम्पिन की दीप्ति से मन्दिर में दामिनी तेजस् बिखेरती कूर्दन क्रिया कर गर्भगृह से बाह्य क्षेत्र में आई। पार्श्व ये माँ दक्षिण कालिका का असितविग्रह अनावृत हुआ।

मन्दिर के कक्ष और गोप्य स्थानों पर भयातंक से पूर्ण अनेक दर्शनार्थी साधक स्वयं संकोचन न कर कालविग्रही तरूणी की दृष्टि से छिपने का प्रयास करने लगे। काल्यीअर्चक पुजारीगण भी छिपे हुए थे।

अकस्मात् एक तरूण युवक स्तम्भ पार्श्व से मुण्डमालधारिणी, विकराल वेषा के सम्मुख आ कूदा और उसके चरण पद्मों पर लुंठित हो गा उठा।

"काल की कराल काल मुण्डन गलमाल लिए।
छाजन की छाल पहन ठाड़ी विकराल है।।

नेत्र तीन भाल-भाल भाला विकाराल गाल।
भस्म भंगि भूधर सी भावित मराल है।।

भृकुटि विशाल बाल बांके विकराल जाल।
गालन के गर्हण पर नाचत भूचाल है।।

कहे कौल कूजित कपाल माल पूज-पूज।
काली तू काल की भी काल विकराल है।।"

युवक के स्वरचित कवित्त पर श्यामा का मुख दीप्ति हो उठा। उसने अति प्रसन्नता से पद्मप्रान्त लुण्ठित तरूण को उठा कर वक्ष से लगा लिया और उसके प्रशस्त ललाट पर शौणाधरों से चुम्बन कर बोली-

—"अरे बाबले..........जगत्मोहिनी को ही मोहता है, रस मे भी रस का संचार कर रहा है, श्मशान वासिनी को ही सुर-सरणी बना रहा है। बता तो.... ....कौन कवि है तू?" श्यामा ने स्नेह प्रदर्शन किया।

—"मैं चन्द्रमौलि शर्म्मण हूँ माता!" तरूण के नेत्र कोरकों में पुनीत अश्रुनीर उमड़ा श्यामा चौकी, उसके ललाट पर उसने अनिमेष दृष्टि कुछ क्षणों के लिए स्थिर की, जैसे श्यामा ने भालोल्लिखित भविष्य पढ़ा हो।

—"तेरा शुभ हो पुत्र........तू यही विश्राम कर फिर इस देवपुरूष का सहचर बन त्रिया राज्य का गमन करना।" श्यामा ने आदेश दिया।

घनतमिस्र काल। वह मत्स्येन्द्र के आगे-आगे वातवेग से चल रही थी, जैसे वह वात संचारित हो। मत्स्येन्द्र की गति मन्द थी, वह पिछडने लगे, अन्ततः उन्होंने अपने योग बल का स्मरण किया। प्रसत्वरता से मत्स्येन्द्र आगे बढ़े!

नागरिक सीमा समाप्त हुई, गंगा के तटीय श्मशान में पहुंच कर श्यामा की गति स्थिर हुई। उसने एक ज्वलित चिता से अर्द्ध दग्ध शव ग्राह्य किया और श्मशानस्थ सघनपाती वट वृक्ष की छाँव में शवासनासीन हो मत्स्येन्द्र से बोली।

—"मच्छन्द[2], यही मेरी वृत्ति है और यही मती। मैं ही सर्वभूतों में समान व्याप्त महाभूता हूँ और अपने ही आकार-प्रकार के भूतप्रस्वनी भी मैं ही हूँ। तू कौल है और मैं उसकी जन्मदात्री अतः अपने तेजस को आयत्त कर मैं तुझे सम्पूर्ण बनाने की आकांक्षी हूँ। यद्यपि तूने आतान-वितान-वृत्त्यात्मक जाल को छिन्न कर लिया है, तथापि कुछ शेष अब भी कर्त्र है।" श्यामा एक क्षण रुकी फिर पुनः मुखरित हुई।

—"पंच[3] पवित्र को साधना और पंच[4] उत्तम भोगों को भोगना फिर अद्वैत में स्थापित हो महाकौल बनना, क्योंकि तुझे यही मार्ग श्रेष्ठत्तर है। कौल पंच उत्तम भोगो के बिना व्यर्थ है। जो कौल नित्य गोमांस भक्षण नहीं करता वह कुलघाती है।[5] यह गोमांस गायादि पशु का मांस नही अपितु पृथ्वी में उत्पन्न फलादि का मांस (गूदा) है। इसी भांति 'गोघृत' को गोघृत तो मान ही, साथ ही आकाश से पतित नीर भी मान। जो कौल साधक के चित्त को पृथ्वी से मनोहर,

प्रिय, सुन्दर और क्रीडाप्रिय प्रतीत हो, उसका भोग्य, भोज्य ही गोरक्त है। गो क्षीर के रूप मे गो दुग्ध के साथ ही पृथ्वी पर उत्पन्न दुग्धदायक वृक्ष का दुग्ध विशेषत: कौल ग्राह्यी है।"

पंच उत्तम भोज्यों के विषय में लेखकीय अभिमत

संभवत: कौलाचारियों ने पंच पवित्र और पंचभोज्य जैसे पदार्थों को रहस्य रूप में कीलित किया है। पंच भोज्य का सभी पदार्थ कायक-मानस विज्ञान की दृष्टि से अत्योपयोगी है। ऐसा प्रतीत होता है कि कौलाचार्यो ने गोमांस से आशय पृथ्वी में उत्पन्न फलों के गूदे से लगाया हो। 'गो' शब्द के अनेक पयार्यवाची मिलते हैं। पुल्लिंग में गो का अर्थ, सांड, बैल, लोम, रोम, इन्द्रिय, वृषराशि एवं सूर्य है, तथा पशु (गाय) है। स्त्रीलिंग में इसका प्रयोग, गाय, पृथ्वी, वाणी, सरस्वती, माता, दिशा, दामिनी, जिह्वा आदि के रूप में मिलता है। नपुंसकलिंग में यह गो से उत्पन्न कोई भी वस्तु, दूध, चर्म आदि। नक्षत्र, आकाश, इन्द्र का वज्र, किरण, हीरा, स्वर्ग इत्यादि।

मांस का पर्यायवाची 'फल का गूदा' है। मेरे विचार से केला (कदली) का गूदा ही यहाँ भोज्य होना संभव है, क्योंकि केला आयुर्वेद दृष्टि से शीतल मधुर, वीर्यवर्द्धक पुष्टिकारक, रुचिकर्ता, मांसवर्द्धक, प्रमेह, नेत्ररोग, तृषा, रक्तपित्त, उदररोग, हृदयशूल, सोम रोग एवं गर्मी से उत्पन्न रोगों का नाशक है। यह (केला) गुरु, स्निग्ध, मधुर, काषाय, शीतवीर्य युक्त वातपित्त शामक, कफकारक, योनिस्राव रोधक एवं दाह मूत्रकृच्छ योनिदोष वस्ति उत्तेजना से उत्पन्न रोग आदि का परिहारकारी है। केले में प्रोटीन 1.3 भाग, स्नेह 6 भाग, श्वेतसार 22 भाग, जल 74.3 भाग एवं समान रूप से खनिज तत्व का समावेश होता है। केले में विटामिन ए, बी तथा ई अधिक मात्रा में और विटामिन सी साधारण मात्रा में रहता है जबकि विटामिन 'डी' की अवस्था केले में परिवर्तन शील होती है। 100 ग्राम केले से शरीर को 153 केलोरी शक्ति प्राप्त होती है। (प्रतिशत दृष्टि से इसमें प्रोटीन 13%, कार्बोहाइड्रेट 26%, चर्बी 0.2%, खनिज 0.7%, लोहा 0.4% होता है।)

केले के विविध उपयोग आयुर्वेद मे वर्णित है। सर्व ज्ञातव्य है कि स्वस्थ देह में स्वस्थ मन निवासित होता है, और किसी भी साधना के हित विशेषकर वामाचार/कौलाचार साधना के हेतु तो सम्पूर्ण स्वस्थ अत्यावश्यक है।

द्वितीय भोज्य पदार्थ में 'गोघृत' वर्णित है। गो का एक अन्य अर्थ आकाश भी है। आकाश से पतित नीर (वर्षा का जल) के भी अनेक स्वस्थप्रद प्रयोग कहे जाते हैं। (घृत का अर्थ नीर भी है) गोघृत का एक जुगुप्सापरक अर्थ भी मनस् में आता है। गो अर्थात्, पृथ्वी और पृथ्वी मूलाधार का तत्व है। मूलाधार का स्थान योनि क्षेत्र में कहा जाता है। द्वितीय 'गो' का अर्थ इन्द्रिय भी मान लें तो भी योनि की गणना इन्द्रिय में भी है, तृतीय जहाँ-जहाँ रन्ध्र हैं, वहाँ-वहाँ आकाशतत्व है। योनि रन्ध्रिवती है, अतः उससे प्रक्षरित अथवा पतित नीर ही गोघृत है।

सिद्ध परम्परा में श्री जालन्धरपा या जलन्धरनाथ के कापालिक शिष्य श्री कृष्णवज्रपाद या कन्हपा के चर्यागीतिकोष के टीकाकार ने उनके एक चर्यागीति पद की टीका करते हुए आगम से एक श्लोक उद्धत किया है-जिसका अर्थ है-

बहुत संभव है पद्मपात्र से प्रस्नावित मदननीर स्वस्थ की दृष्टि से गुणवान हो, अथवा अन्य कोई साधनात्मक गुणों से परिपूर्ण हो। अस्तु, जो भी हो पंच भोज्य पदार्थों में साधना उन्नति के तत्व अवश्य हैं।

तृतीय भोज्य पदार्थ में 'गोरक्त' है। यह भी 'गोमांस' 'गोघृत' के समान ही रहस्य प्रच्छन्न है। रक्त के अर्थ भी भिन्न हैं। विशेषण रूप में इसका अर्थ रंगा हुआ। लाल, अनुरक्त, अनुरागवान, प्यारा, प्रिय, मासूक (प्रेमी) मनोहर, क्रीड़ाप्रिय, खिलाड़ी आदि है। पुल्लिंग अर्थ में लालरंग, कुसुंभ, लालसहिजन, लालचन्दन तथा नपुंसकलिंग में शोणित, खून, तांबा, कुम्कुम्, सिन्दूर, पुराना आँबला, लालकमल, लालचन्दन, का अर्थक है।

उपर्युक्त पर्यायवाचियों में लालसहिजन और पुराना आँबला ही भोज्य है। आँबला के गुण-धर्म और उपयोग से सभी परिचित हैं। सहिजन स्वादिष्ट, काषाय, वात कफ नाशक है। यह शूल, कुष्ठ, क्षय, श्वास और गुल्मरोग नाशक है। सहिजन के पंचांग का औषधि रूप में प्रयोग होता है। बहुत सम्भव है कि कौलाचार्यो ने 'गोरक्त' के रूप में पृथ्वी की वनस्पति लालसहिजन आँबला आदि का कथन किया है।

'गोक्षीर' से आशय (क्षीर का अर्थ (पु.न.) जल, किसी वृक्ष का दूध, नीर) मेरे मत से गो (पृथ्वी) में उत्पन्न बरगद वृक्ष के दूध, अथवा अन्य दुग्धप्रदाता वृक्षों के दुग्ध से है। वट वृक्ष का दूध, बलवीर्यवर्द्धक और स्तंभनकारी है।

'गोदधि' का विशेष अर्थ दृष्टि में नहीं आता, अतः गोदधि को गाय के दही (जमाया हुआ दूध) के रूप में ही लेखक मानता है। आयुर्वेद की दृष्टि से दही भी अत्यन्त उपयोगी और स्वास्थ्यप्रद है।

अनेक विद्वानों ने गोमांस का अर्थ खेचरी मुद्रा से माना है। गो=जिह्वा और उसे उलट कर तालूदेश मे ले जाकर क्रिया करना, उस क्रिया के फलरूप जो तालु से स्राव होता है, वही गोमांस है। इसी प्रकार अन्य भोज्य भी योगपरक रूपों में ग्राह्य हैं।

इसी भांति पंच पवित्र के अर्थ भी रहस्यावृत है। स्थानाभाव के कारण उनका उल्लेख नहीं किया जा रहा है। पञ्च पवित्र है–

विष्ठा, धारामृत (मूत्र-योनि स्रावित रतिजल), शुक्र, रक्त, मज्जा!

उन वृक्षों में बरगद का दुग्ध श्रेष्ठतर है, उसका भोज्य ग्राह्य करना। गोदधि गाय के दुग्ध से विनिर्मित दधि ही है, वह भी कौल भोज्य है! पैष्टी, माध्वी और गैण्डी सभी मदों में श्रेष्ठ मद है।" श्यामा पुनः विरामित हुई फिर बोली–

–"मैं महागौरी प्रदत्त शाप का तुझे स्मरण कराती हूँ।" कहते हुए भगवती श्यामा ने अपने रजसिक्त पद्मपात्र से रससंकलन कर उसका मत्स्येन्द्र के ललाट देश पर स्वकर से मर्दन किया और भ्रूमध्य स्थित आज्ञाचक्र को अपने शक्तियाघात से ताडित किया। ललाट देश ही नहीं, मत्स्येन्द्र का सर्वांग एक विचित्र शून्य से पूरित हो उठा। दृष्टि के सम्मुख कैलाश का हिमाच्छादन था। वहाँ गौरी और शिव की संवादचर्या सम्पन्न हो रही थी।

गौरी आदिनाथ से आग्रह कर रही थी। कि चार तपस्वी सिद्धों को वंश वर्द्धन हेतु विवाह का आदेश दें। आदिनाथ का कथन था कि सिद्ध काम-विकार से परे अथवा अतीत हैं। मानव देह में निवास कर काम-विकार से अतीत होने की बात श्रवण कर गौरी चकित हुई, उन्होंने आदिनाथ की आज्ञा प्राप्त कर चार सिद्धों के परीक्षण का निश्चिय और संकल्प लिया।

आदिनाथ ने अपने ध्यान बल किंवा योगबल से पूर्व से हाडिफा, दक्षिण से कानफा, पश्चिम से गोरक्ष और उत्तर से मीननाथ का कैलाश पर आह्वान किया। माँ गौरी ने विकट लीला पारण किया। उन्होंने भुवनमोहिनी का रूप धारण कर सिद्धों को भोजन कराया।

चारों ही महासिद्ध चकित, विस्मित! इसके पूर्व उन्होंने चतुर्दश भुवनों को सम्मोहित कर देने वाले मोहिनी रूप का शुभ दर्शन नही किया था। वे माँ की रूप सुषमा पर मुग्ध हो उठे। मीननाथ के मनस में उदय हुआ, ऐसी विमला सुन्दरी मुझे प्राप्त हो तो मैं आनन्द केलि से रात्रि सुख भोगूं। हाडिफा ने ऐसी सुन्दरी के आवास का झाडूदार होने में कृतार्थ होने की कल्पना की तो कानफा ने मन ही मन ऐसी सुन्दरी प्राप्त करने का मनस् बनाया, जबकि गोरक्ष के चित्त में परम पौनीत्य का उदय हुआ। उनकी योगनिष्ट प्रज्ञा ने तत्क्षण अपने गुरु के हृत्पद्म में उदित काम्य भाव को जान लिया। गुरु की शय्या सुखदात्री तो उनकी माता ही हुई, अतः उन्होंने मनः कामना की–ऐसी परम सुन्दरी माता को प्राप्त कर उसके उत्संग का स्नेह पाऊँ और स्तनपान करूं।

महादेवी ने सभी के मनस संकल्पों को जाना और यथानुसार शाप और वर प्रदान किया। मीननाभ को शाप प्राप्त हुआ कि वे नारी देश में सोलह सौ सुन्दरियों के साथ कामकौतुक में रत हों। हाडिफा शापानुसार रानी मयनावती के निकेतन के झाडूदार बने और कानफा तुरमान देश में डाहुका हुए।

गोरक्ष के दिव्य भाव की महादेवी ने कठोरतम परीक्षा की। महादेवी ने बकुल वृक्ष के नीचे समाधिस्थ गोरक्ष को, वहुविधि योगभृष्ट करना चाहा, पर गोरख अडिग रहे। एक समय महादेवी वसनहीन देह से उस मार्ग पर निद्रित हो गई, जिस मार्ग पर गोरक्ष आ रहे थे। गोरक्ष ने उनके नग्न देह को विल्वपत्रों से आच्छादित कर प्रणामार्पण कर गमन किया। एक समय मक्षी (मक्खी) रूप धारण कर वे गोरक्ष के उदर में प्रविष्ट हो उन्हें पीडा देने लगी तो गोरक्ष ने योग क्रियाओं से उनकी गति अवरुद्ध कर दी।

अन्ततः महादेवी राक्षसी रूप धारण कर नर बलि लेने लगी तो गोरक्ष ने अपने गुरुप्रदत्त मंत्रो से योगबल से उसका कीलन कर दिया। स्वयं आदिनाथ के आग्रह पर गोरक्ष ने उन्हें अपने कीलन से मुक्त कर बंग देश के कलिकाला में महादेवी की प्रतिष्ठा काली के रूप मे प्रतिष्ठत कर अमोघ वर प्राप्त किया।

मत्स्येन्द्र सकल प्रसंग का दर्शन कर चैतन्य हुए। श्यामा ने उनकी घी स्मृति को पुनः वर्तमान में प्रतिष्ठित किया फिर बोली–

–"तूने अपना विगत दर्शन किया। अब उस शाप के पूर्ण होने का समय आ गया है, पर मैं उस शाप को साधना किंवा कौल–आचार में परिवर्तित कर तुझे सर्वश्रेष्ठ महासिद्धियों की प्राप्ति का वर प्रदान करती हूँ।" श्यामा का स्वरूप

परिवर्तित हुआ।

नीलमणी के समान उद्दीप्त देह कांति, समस्त-अंगों में दिव्याभूषण, दस हाथों में खड्ग-चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिध, शूल, भुशुण्डि, मस्तक और शंख, अग्नि शिखा की भांति दीप्ति त्रिनेत्र, दशमुख और दशपाद धारिणी महाकाली के नील चरणों में मत्स्येन्द्र ने स्वार्पण किया। महाकाली उन्हे आशीर्वचन प्रदान करती शव सहित महाशून्य मे तिरोहित हो गई।

मत्स्येन्द्र पुनः मन्दिर की ओर चल दिए, जहाँ कवि चन्द्रमौलि उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। श्मशान द्वार पर ही उन्हें वह ब्राह्मण मिल गया जो पुरी के सागर कूल पर उनसे संवादित हुआ था। ब्राह्मण के मुख पर दिव्य स्मित का आलोक था और उस ब्राह्मण के साथ थे, हिमालयीन वज्रधर, जिनसे मत्स्येन्द्र की भेंट हिमालय में हो चुकी थी।

मत्स्येन्द्र ने ब्राह्मणरूप में भगवान वज्रांग का अभिज्ञान ग्राह्य कर उनकी अभ्यर्चा की। ब्राह्मण बोले–

"प्रिय मत्स्येन्द्र, मैंने कामाक्षी को वर दिया था कि उसके अनुरूप पुरूष का मैं संधान कर उसकी बिन्दु साधना की पूर्णता में सहायता प्रदान करूंगा। कामाक्षी के अनुरूप एकमेव तुम्ही पुरूष हो। कामाक्षी विमला का अवतार रूप है, यही कारण था कि मेरी अदृश्य इच्छा से प्रबद्धित हो तुम पुरी स्थित विमला पीठ पर पहुँचे। सामान्यतः प्रत्येक कौलाचारी को पुरी का विमला पीठ आधार पीठ है। विमला ही कौलोत्स शक्ति है, और विमला ही कामाख्या। विमला की कृपा प्राप्त कर योगेश्वर कृष्ण भगदायिनी सहित वहाँ स्थित हैं। यहा भागिनी सुभद्रा की उपस्थिति महापातक का विनाश करती है, क्योंकि सुभद्रा ही भद्र विमला है। जब यही विमला वहाँ उपस्थित किसी भी नारी देश में प्रकट होती है तो कौल का आचार स्वमेव ही प्रकट हो जाता है और इस नारीवसित विमला का साधन मानव को पापाचार से मुक्त कर निष्पंकी बनाता है+मानवीय कलेवर को मानवेत्तर बनाता है।"

–"मेरे जीवन का एक नवाध्याय प्रारम्भ हुआ है, भगवन्!" मत्स्येन्द्र ने कहा–

–"यद्यपि वज्रधर पूर्ण मुक्त हैं और निःस्पृह भी, फिर भी वह लोकमर्यादा के पालन हित अपनी पुत्री कामाक्षी को तुम्हें अर्पित करते हैं।" ब्राह्मण ने कहा–

–"हाँ प्रभु, कामाक्षी को स्वीकार करें।" वज्रधर ने विनय की और आरक्त पद्मपुष्प उन्हें प्रदान किया जिसे मत्स्येन्द्र ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। आवश्यक परिचर्या के पश्चात वज्रधर और ब्राह्मण ने स्वस्थान को गमन किया। गमन के पूर्व वज्रधर ने कहा–

–"भगवन् यह आरक्त पद्म प्रसून चिरोत्फुल्ल रहेगा। इसमें कामाक्षी के कृत्स्न स्मरतत्व की सद्यसुवास सदैव रहेगी, इसके पदमपत्र में नारित्व मह-मह करेगा जो कामाक्षी की दिव्य काया ही सुवास से ही निसृरित है। यह पुष्प चिरकाल सद्यरूप रहेगा।"

दक्षिण कालिका के मन्दिर में मत्स्येन्द्र ने पुनः तमः मण्डित श्यामा के श्री विग्रह के दर्शन कर आभार व्यक्त किया फिर चन्द्रमौलि की ओर उन्मुख हो, परिचय आदि की जिज्ञासा की। चन्द्रमौलि ने अपने गुलगोत्र का परिचय और शिपिविष्ट से अपने आत्मीय सम्बन्ध का कथन कर अवन्ती प्रसंग कहा फिर नारी देश से की आनी यात्रा का वर्णन करते हुए बोला

–"भगवन् उस भव्य नारी देश में पहुंचते ही देवी कामाक्षी ने मुझे दक्षिण कालिका विग्रह के दर्शन हेतु प्रेरित कर निर्देश दिया–"चन्द्र कालिकार्चन करो, तमः प्रकृति की पूर्यषणहीन अवस्था में तुम नारी निर्ग के आवासी नहीं बन सकते। सत्पात्रर्ता की हीनावस्था में तुम्हें सामान्य पुरूष बन्धकों के समान नारीयोनाकांक्षाओं की कारा में रहना होगा।" उनके आदेश से ही मैं-माँ तमः प्रकृति की अनुज्ञा प्राप्ति हित आया था। अब भैरवी मात के आदेशानुसार आपको त्रिया देश में ले जाने को वचनबद्ध हूँ।"

अब मत्स्येन्द्र विभु ने नारी राज्य को लक्ष्य कर गमन किया।

---

1. रात्रि
2. फडकना
3. मैथुन से उत्पन्न नाद
4. स्तनों के बांधने का चमकीला वस्त्र
5. चूचक (स्तनाग्र)
6. विकसित होना
7. सहलाना
8. इच्छा
9. कांपना, धडकना
10. गुप्तांग
11. रजस्वला
12. सुगंधित शरीर
13. रति की इच्छा
14. चिल्लाना
15. मैथुन की इच्छा
16. लेखन के मध्य निशा काल में उपर्युक्त वर्णित प्रसंग लेखक को स्वप्न में दृष्टिगोचर

हुआ, जिसे लेखक ने जस का तस लिख दिया। उक्त कवित्त भी जो तरुण युवक ने गया था, अपनी स्मृति अनुसार लिखा।

17. अभिनव गुप्त ने अपने ग्रन्थ तन्त्रालोक में 'मच्छंद' के रूपात्मक अर्थ की व्याख्या इस प्रकार की है–यथा–
रागारुणं ग्रंथिविलावकीर्ण यो जालमातान वितानवृत्ति-
कलोम्भितं बाह्यपथे चकार स्यामे च मच्छन्दविभुः प्रसन्नः।
18. विष्ठा, धारामृत, शुक्र, रक्त, मज्जा।
19. गोमांस, गोघृत, गोरक्त, गोक्षीर, गोदधि।
20. गोमांस भक्षयेन्नित्यं पिबेदमरवारुणीम्।
कुलीनं तमह मन्ये इतरे कुलघातका:।। –हठयोग
21. जो कक्कोल (पद्म) के प्रेमी बोल (वज्र) के मेलन अथवा संयोग से उदित आनन्द से स्फुरित होकर द्वीन्द्रिय संयोग करने वाले हैं, सद्यः शुद्ध किए शालि से जिनके हाथ शोभित हैं, जो कलिंजर और चक्री हैं, दिव्य कमलपात्र (पद्म अर्थात् योनि) में गिरते हुए मदन (योनिजल या योनिरज)–द्वारा जिसके दन्तक्षत व्यालुप्त हो रहे हैं। ऐसे श्मशान के निवास में नित्यरस लेने वाले योगी कोई और कहीं ही मिलते हैं।) (उक्त श्लोक इसी रूप में सर्व श्री डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय जी ने अपने वहु प्रशंसित और खोजपरक ग्रन्थ 'वौद्ध कापालिक साधना और साहित्य' में भी कृष्णवज्रपाद के कापालिक तत्वसम्पन्न चर्यापदों की व्याख्या में उद्धृत किया है।)
22. 'पद्म' योनि और वज्र लिंग के प्रतीक शब्द हैं।

नारी राज्य।

पूर्व की ओर सुदृढ़ प्राचीर के रूप मे पार्वत्य श्रृंखला थी, जैसे नारी राज्य की सुरक्षा हेतु रूपिणी प्रकृति स्वयं प्रतीहारी रूप में चिर स्थायित्व लिए खड़ी हो। यह पार्वत्य श्रृंखला पूर्व से उत्तर की ओर तक समृद्ध थी।

सीमा सुरक्षा अधिकारी महिला ने मत्स्येन्द्र को तृषित अक्षि से देखा और राज्य प्रवेश का विरोध करते हुए प्रश्न किया।

–"तू कौन, किस देश का आवासी है पुरूष? और किस प्रयोजन की सिद्धि हितांर्थ नारी राज्य प्रवेश का आकांक्षी है?"

–"मैं अगम्य विस्तार का अन्वीक्षक हूँ देवी। मैं इसी देह देश का आवासी हूँ और विशिष्ट प्रयोजन हेतु नारी राज्य में प्रवेश का आकांक्षी हूँ।" मत्स्येन्द्र ने युवा महिला अधिकारी को गूढ गम्य उत्तर दिया।

–"राज्य में पुरुष प्रवेश निषेध है पुरुष। पर मैं तुझे अपने भृत्य के रूप में नियुक्ति प्रदान कर तेरी मनोकामना पूर्ण कर सकती हूँ।" कामस्पृहा से पूर्ण नारी अधिकारी ने लोलुप दृष्टि से देखते हुए मत्स्येन्द्र से मन्द स्वर मे कहा।

–"देवी, यह महापुरूष महाराज्ञी कामाक्षी के विशिष्ट अथिति हैं। राज्य मे मेरा प्रवेश पत्र और अनुमति पत्र का निरीक्षण कर हमें प्रवेश करने दें।" चन्द्रमौलि ने अपना प्रवेश एवं राजाज्ञा पत्र अधिकारी को दर्शनार्थ देते हुए कहा।

–"मैं विवश हूँ, बिना राजाज्ञा के इस पुरूष का प्रवेश संभव नही।" युवती ने सद्वेष कहा एक क्षण पश्चात वह सदाशय स्वर में बोली–

–"यह पुरूष मेरा भृत्य बनने को तत्पर हो तो मैं इसके प्रवेश पर विचार करूंगी।"

मत्स्येन्द्र के तेजस्वी मुखमण्डल पर निर्विकारता रही, जबकि चन्द्रमौलि के मुख पर चिन्तन की मुमचानी रेखाएं उभरी! मत्स्येन्द्र ने चन्द्रमौलि को आश्वासन देते हुए कहा–

–"तुम प्रस्थान करो युवा कवि। मै नारी राज्य की अन्तःसीमा में तुम्हें अवश्य मिलूंगा।" कहते हुए मत्स्येन्द्र ने अणिमा सिद्धि का प्रयोग किया, तत्क्षण ही उनका स्थूल देह सभी की दृष्टि से परे हो अतीत हो गया।

–"अरे..........यह क्या? सीमा पर उपस्थित महिला-अधिकारी और उनकी सहायिकाएं तथा चन्द्रमौलि आश्चर्य देखते हुए चीखे।

चन्द्रमौलि का प्रवेश पत्र और आज्ञापत्र को सामान्य दृष्टि से देख महिला अधिकारी ने उसे गमनानुमति प्रदान कर दी। सीमा प्रतिहारी दल की नायिका ने उससे पुनः पुनः मत्स्येन्द्र तद्विषयक प्रश्न अधिकार पूर्ण स्वर में पूछे, पर चन्द्रमौलि विशेष कुछ नहीं बता सका। मात्र उसने मत्स्येन्द्र का नाम श्री गौडीश देव बताया जो मत्स्येन्द्र ने ही अपने परिचय में उससे कथन किया था।

अणिमा से अदृश्य हो मत्स्येन्द्र ने स्वयं को लघिमा सिद्धि से भारहीन किया फिर प्रकाम्य सिद्धि की सहायता से आंतरिक्ष गमन करते हुए, नारीराज्य की सीमा के अन्तःभाग में कल-कल नाद कूजित तरंगिनी तट पर स्वयं को प्रकट किया। वे नीर वाहिनी के सुरम्य कूल पर चन्द्रमौलि की प्रतीक्षा करने लगे।

अकस्मात् एक ऊष्ण वात प्रवाह का प्रवहन हुआ। मत्स्येन्द्र सजग हुए, यह सामान्य पवन प्रसारण नहीं था, अवश्य कोई शाक्तेय सत्ता का ओजस् तत्व ग्रहण कर वायु प्रसारित हो रहा था। वे उसका अन्वेषण कर ही रहे थे कि कृपालु आगारा कृष्णा की स्मितरूपराशि द्युलोक से प्रकट हुई। कृपामयी कृष्णा के चारुअधर स्फुरित हुए-फिर स्वर ध्वनन् की अनुगूंज श्रवणगोचर हुई।

–"कीर्तिनाम, वीरानन्दनाथ, ऐक्य साधना की सिद्धि हितार्थ यहाँ तुम्हारा आगमन हुआ है। सिद्ध नहीं सामान्य पुरुष के रूप में स्वयं को स्थापित करो। विमलावतारिणी की स्पृहा वज्रांग देव से महाबिन्दु साधक पुरूप की है, अतः उन्ही की भांति सिद्धियों के विस्मरण का आचारण करो। सिद्धियों से बिन्दु क्षरण अथवा बिन्दपात होता है। कामाक्षी के कामचक्र से रजक्षरण तब ही संभव है, जब तुम ऊर्ध्व रेतस् रूप में स्थित हो क्रियागामी रहो। रजक्षरण ही रजनी (नारी) का महासौख्य है, उसकी नारित्व गरिमा है, उसके देहधारण का यह भी एक लक्ष्य है। पुरुष वज्र के हितार्थ अनेक द्यूलोकी देवियां भूलोक पर अवतरित होती हैं। यद्यपि कामाक्षी मात्र देह अवयवों के संघर्षमय संसर्ग हेतु ही अवतरित नहीं है-उसका इहावतरण तो तुम्हें नित्यमुक्ति के समग्र सोपान प्राप्ति हित ही हुआ है, इस कारण भी तुम ऊर्ध्व रेतस् बनो। सिद्धियों को श्मशान में विचरने दो, जब तुम्हें कोई सिद्धियों का स्मरण करावे, तब तुम अपनी सिद्धियों को पुनः ग्राह कर लेना।"

करूणामयी कृष्णा मत्स्येन्द्र का करणीय कथन कथ्य कर पुनः शून्य

तिरोहित हो गई। जैसे मत्स्येन्द्र का पुनर्जन्म हुआ, उन्हें स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि त्रियाराज्य का सीमानिकष कदलीवन में निवासित रामाराधन करते हनुमान का वीर्यवान कलेवर उनमें प्रकट होता जा रहा है–वे साक्षाततः हनुमान का स्वरूप ही बन गए हैं। आंतरिक्ष से जैसे आंजनेय "हूप ऽ......हूप...ऽ........" का वानरी नाद करते, अपनी भक्ति सिक्ता का नाद करने लगे। मत्स्येन्द्र के अन्तःकरण में अग्निबीज उद्दीप्ति हुआ और चेतना राँ....ऽ......म्........की सुख सरिता में स्नान कऱने लगी।

–"गौडीस देव! आप यहाँ ध्यानचर्यारत है? आह! यह आपगा[2] तट कैसा मनोहर और सम्मद[3] दात्र है।" यह स्वर था चन्द्रमौलि का जो मत्स्येन्द्र को ध्यानस्थ देख कह रहा था। मत्स्येन्द्र ध्यानचर्यानन्द भंग हुआ।

–"आपका आचरण सिद्ध अथवा योगी की भांति है महोदया आप कौन है योगी या यति?" चन्द्रमौलि अन्ततः अपने अन्तःकरण के भावों को अधरोष्ठों पर लाया। मत्स्येन्द्र सरल मन चन्द्रमौलि की बात सुनकर मन्द्रवेग से हँस उठे। उनका हास्य ध्वान् हादिनी[4] के कल-कल नाद में घुलने लगा। मत्स्येन्द्र के चितिमण्डल पर कुलधर्म ने प्रस्फुरना की और उनके अधरों का स्पर्श करती बैखरी प्रकट हुई?

नाहं कश्चिन्न मै कश्चित् न बद्धो न च बन्धनात्।
नाहं किञ्चित करोमीति मुक्त इत्यभिधीयते॥

गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्जाग्रद् भुंज्यमाने च मैथुने।
भवदारिद्र्य शोकैश्च, विष्ठामूत्रादि भक्षणे॥

विचिकित्सा नैव कुर्वीत इन्द्रियार्थैः कदाचन।
आचरेत् सर्व सर्वानि न च भक्षं विचारयेत॥[5]

चन्द्रमौलि उनकी छन्दबद्ध परिचय परता पर मुग्ध हो उठा। उसने अपने भागधेय[6] को सराहा, स्वान्त[7] की ज्ञप्ति[8] क्षेम[9]–पुरूष मत्स्येन्द्र के पाद पदमों पर श्रद्धा से समर्पित होने लगी।

–"आप निश्चिय ही देवशोचिष्[10] हैं, आपके संग लाभ से मैं कृतार्थ हूँ श्रेयस्[11] पुरूष।" वह गद्‌गद् कण्ठ से बोला।

दोनों पुनः अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हुए!

जागृति अथवा सुषप्ति? स्वप्न या सत्य? कामाक्षी का अन्तः मनस् निर्णय

नही कर पा रहा था। वह प्रातः पूर्व की बेला थी, रात्रि का अंतिम चरण। वह दृष्टा बनी देख रही थी, उसी की मधुर, मधुकर यौवनलास्यी कलेवर की कलन विस्तार की मदमादी कला को। वह देख रही थी स्वतनुलसित प्रकृति के निर्म्लान भग पिधानक पत्रों की विकचीकरण क्रिया को संकीर्ण अनंगपित्सल पर प्रावारित पुटित पल्लवों के प्राच्छादन को महाविस्तीर्ण कर सोमनृसोम गवाक्ष को, जिससे जगत का जीव प्राचूर्य प्रोद्भूत हो रहा है। लौहित्य लसित चपला, आत्मभूया के रन्ध्र निर्ग से शुभ्रि देव, मनसिजारि और पोषक देव का प्रजनन निष्पन्न हो रहा है। दैव्या के विस्तारित श्लक्ष्ण, अर्द्ध पद्मपत्राकार दल पर तम के देव का ताण्डवलास्य है तो द्वितीय पर सत्व का देवतत्व नटन सर्ग है-मध्य के महाविविर से रजस का देवता सृष्टि का सृजन करने में पूर्ण प्रक्त है। योनि अपांगयोनि में परिवर्तित है जो निर्रान्त है। इसी अपांगयोनि के मध्य से ज्योतिर्लिंग का उद्भव हुआ और आलोकमयी अपरा गुहा से अंशुल पुरूष का प्रादुर्भाव हुआ।

—"ललिता भैरवी अम्बा पापू..........! मुग्धानना.....मुग्धाक्षी, मद्रदायी मध्विजा कामाक्षी..........। श्रवण कर प्रिये..........मैं तेरा मनोऽधिनाथ हूँ। मैं ही भैरवानन्द नाथ हूँ..........मैं ही मत्स्येन्द्र नाथ हूँ..........मैं.........हूँ...........ऽ.........ऽ........।" कामापांगयोनि के मध्यबिन्दु से उद्भूत महालिंग के आलोकमय कुपिर से अभिर्भूत प्रकृति के संपूरक पुरूष का मेघविस्फूर्जित महानाद नदित हुआ।

कामाक्षी की विनिद्रित अवस्था खण्ड हुई। उसके महस्वत् देह स्थित मसृण-मराली कामांग के मेघमार्ग से सुरभित, सलिल वारि के प्रस्राव से पारिधानेय वसन भीग चुके थे। कामाक्षी ने सुकोमल कर से योषांग भवन पर आवरित परिधान वस्त्र का परीक्षण किया, पूरे प्रदेश में भीगेपन का अनुभव कर उसने गणन किया फिर निष्कर्ष कर चिंतन किया। प्रतिमास सम्पन्न मासिक रजस्राव काल में अभी एक पक्ष शेष था। क्या समय पूर्व ही रजाभिस्रावण हो गया? उसने पुनः स्मरमन्दिर का हस्तगत परिक्षण किया-वह सकलालय भीषण-ऊष्मा संतप्त था, जैसे कोई आग्नेयी कुण्ड की दह-दह दाहकता हो। उसने सकल क्षेत्र पर हस्त चालन किया पर क्षेत्रीय सुषिम से किसी भी भांति उदक-स्राव नही हो रहा था।

कामाक्षी के चित्तपटल पर समस्त स्वप्न की स्मृति मूर्त हुई। अकस्मात् ही स्वप्नदिष्ट पुरूष के कण्ठ मेघनाद का अनुगुंजन उसे पुनः कर्णगोचर हुआ। ". ....मैं तेरा मनोऽधिनाथ हूँ..........मैं भैरवानन्द...............।" कामाक्षी का समस्त

गात्र विकसित प्रसून सा उत्फुल्ल हो उठा, आनन्द की उर्मियों के हार्द प्रसारण से तनुरोह हर्षित हो उठे। यौवनक-आनन्द के मध्य ही उसे उसकी श्रवणेन्द्रिय ने पुनः मृदुल स्वर निःस्वान ग्राह्य किया-

-"कामेशी.........स्वागत को सन्नद्ध हो, चैतन्य हो चित्तज्ञा। बहुप्रतीक्षित पुरूष तत्व नगर द्वार पर उपस्थित है। मैने वरपूर्ण कर तेरी स्पृहा को मूर्तरूप दे दिया है। पुरूष को स्वीकार कर प्रकृति। अमोध रेतसी मत्स्येन्द्र का स्वागत कर।" कामाक्षी की अन्तःप्रज्ञा ने अभिज्ञित किया, वह स्वर स्वन उस पर कृपालु भगवान वज्रांग का है। कामाक्षी के अंग-अंग मे हर्ष-भुविस् की उद्दाम तरंगें जन्म लेने लगी-चिर प्रतीक्षित भुशुण्डि-पुरूष आगमित हुआ। वह सत्वर उठी और अनुचरियों को सखि समुदाय को सज्जित करने का आदेश प्रदान कर स्वयं भी अंग शुचि कम्मर्ण में व्यस्त हो गई।[12]

कामाक्षी ने अद्भुत शृंगार किया। नवप्रकार[13] के स्वर्ण एवं अन्य धातु तथा रत्नादि से निर्मित-सज्जित आभूषणालंकरों को देहयष्टि अवयवों, अंगों पर धारण किया। उसने पादांगुल्यों एवं अगुंष्ठ नखों को पीतारक्त रंग से रंजित किया। ऐसा प्रतीत होता था, मानो दिनकर की दिवारश्मियां उसके पादांगुष्ट नख एवं अंगुलियों से प्रसारित हो उठी हो। पादांगुल्यों मे पदांगद, ऐडिका ऊर्ध्व और पादसन्धि स्थल पर क्षुद्रघन्टिकाओं से पूरित झणत्काराभूषण, श्रोणीतट की अभिरम्य सुषमा में संवर्द्धन करती हुई इन्द्रनील खचित मेखला की द्रीप्ति आवलि ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानो कामी पुरूषों की कुदृष्टियों रूपी राक्षसियों से कामप्रासाद की रक्षा हेतु दृढ़ जम्बूनादी प्राचीर ही हो अथवा वह श्रोणी सूत्र काममन्दिर के मुख्य द्वार पर आरोपित वन्दनवार ही हो। कामाक्षी ने सुलम्बि ग्रीवा में तेरह रत्नो[14] से खचित, शुक्तिज निर्मित नक्षत्रमालिका भी आरोप्यित की। कानों में भी रत्नविजडित उत्तंस धारण किए, नासिका हीरक जडित नासिकाभूषण आवेध्य से सज्जित किया, मस्तक पर शिरोरत्न और नितम्ब प्रसारित कचराशि के संयुक्त सूत्र में अम्लान, चिरसुवासित पुष्पों की वेणी धारण की। कामाक्षी ने कोमल कलाइयों में झंकृत स्वर-प्रसवनी झण्झंकृत स्वर प्रस्वनी करकांचियों को तथा हस्तांगुल्यिों में रत्नविजडित मुद्रिकाओं को भी पहना।

प्रथमतः कामाक्षी की विलासोत्पादिका, कांचनीकाया सुरभिसुमनोऽभिरम्या थी। द्वितीय उस पर माल्यालंकार की सज्जा और तनुसुवासित मण्डन द्रव्यों का आलेपन। फलतः उसके अंग-प्रत्यंगों से दिव्य सुरभि का कृत्स्न प्रसारण होने

लगा। उसी के अनुरूप कामाक्षी की सहचरिकाओं ने भी आवेध्य, निबन्धनीय, प्रक्षेप्य और आरोप्य वसनाभूषणादि धारण किए।

इस शुभावसर पर कामाक्षी को एक-उपहास सूझा अथवा अपने चिरप्रतीक्षित महानायक की परीक्षा के हेतु उसने एक-उपाय का सृजन किया। अपनी कायानुकृति से समतुल्य कन्या का श्रृंगार विशेपज्ञा से कामाक्षी के तनानुरूप ही श्रृंगार सम्पन्न कराया। विशेषज्ञा ने अपनी अद्भुत कला सृजना से उस यौवनवती पोनोन्नतस्तनी की मुखच्छवि भी कामाक्षी की मुखच्छवि के समवर्ती ही निर्मित कर दी।

सृष्टि के सृजन प्रतीक नीर और योषितांग के प्रतीक श्रेष्ठ रूपाकार से निर्मित मंगल कलशों में कामेच्छाओं के एवं सरसता के प्रतीक आम्रपल्लवों एवं अन्य पदार्थ दधि तथा पौरुष व्रज (वीर्य) का प्रतीक पारद और रजः प्रतीक गन्धक भी डालकर पूर्ण किए गए।

द्वादश माहों की प्रतीक द्वादश मंगल कुम्भ वाहिकाएं, रूपवती स्त्रियों को सज्जित किया गया। उनमें से तीन भव्य, कुशला नायिकाओं का चयन कर उन्हें त्रिऋतुओं का रूप दिया गया। एक नायिका के वस्त्र आरक्त, द्वितीय के वस्त्र हरित मेघवर्णी परिधान, तृतीय के वस्त्र-परिधान धवल स्वच्छ थे।

चतुर्दिशाओं में व्याप्त निखिल जगत की उपस्थिति को प्रतीक रूप से कथन करते सार्वभौमिक शर्म्मण का प्रतीक रूप स्वस्तिक सभी मंगल कलशों पर गोरोचनादि पदार्थो से लिखा गया। प्रत्येक कुम्भ पर पुष्पमालिकाएं आरोहित की गईं!

भव्यरूप से सुसज्जित नवयौवनाओं का प्रफुल्लित समुदाय मंगलवाद्यादि के नाद से नगर गुंजित करता, राजधानी के प्रवेश द्वार पर पहुँचा। समुदाय के मध्य में एक स्वर्णमण्डित, कलात्मक शिविका थी जिससे महाराज्ञी और उसकी रूपाकृति नायिका बैठी थी। अपराह्न काल में योषा समुदाय नगर के प्रवेश द्वार पर पहुँच गया। प्रवेश द्वार पर आचार्या लोलापा प्रतीक्षारत थी।

कामाक्षी समग्र तनु आवरित हो शिविका से उतरी जब कि उसकी स्वरूपिणी राजसमद का सफल प्रदर्शन करती प्रवेश द्वार के समीप बने विशिष्ट प्रतीक्षालय के भवन में प्रवेशित हुई।

—"यह सकल तनु आवरिता कौन रमणी है पुत्री?" लोलापा ने मन्द स्वर में कामाक्षी से जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा।

–"यह रहस्य कुछ समय पश्चात स्वयं ही अनावृत हो जायेगा आचार्या।" कामाक्षी की प्रतिरूपा ने सस्मित कहा।

–"किन्तु यह कामिनी सम्मर्द किसके स्वागतार्थ एकत्रित हुआ है?" उसने पुनः प्रश्न किया।

–"यह भी ज्ञात हो जाएगा माता, धैर्य रखे।" प्रतिरूपा कामाक्षी ने उत्तर दिया। लोलापा ने तीक्ष्ण दृष्टि से कामाक्षी रूपा को देखा फिर कठोर स्वर में कहा–

–"तू महाराज्ञी नहीं, उसकी प्रतिरूपिणी हैं।"

–"शान्त........शान्त माताचार्या, मैं कामाक्षी हूँ। मेरे ही आदेश और मनः इच्छ का पालन कर इस युवती ने मेरा स्वरूप धारण किया है। मैं एकान्त क्षणों में आप पर समस्त रहस्य प्रकट कर दूंगी।" समीप चलते हुए वसनआवरिता कामाक्षी से मन्दतर स्वर में कहा। लोलापा मौन हो गई।

प्रतीक्षालय के एकान्त कक्ष में कामाक्षी ने मत्स्येन्द्र आगमन का प्रसंग लोलापा को श्रवण कराया। सुनकर लोलापा प्रसन्न हुई और बोली–

–"वे अवतार पुरूष हैं, प्रथम दृष्टव्यः सत्यासत्य का भेदन करने में समर्थ हैं। वे तत्क्षण ही कृत्रिम कामाक्षी का मूलपरिचय जान लेगें।"

कुछ समय विश्राम के पश्चात यौवनलास्यी वनितओं का वृन्द प्रवेश द्वार पार कर आगे बढा। उचित स्थान का चयन कर लोलापा ने सभी को ठहरने का आदेश दिया। मेखला और पताका स्वागत कार्य का निरीक्षण करने लगी।

सायंकाल हुआ। धरित्री तम के श्यामावरण में बद्ध होने लगी। कामाक्षी का स्नेहिल–अन्तर यत्किंचत भीत और आकुल हुआ। परमपुरूष का प्रत्यक्ष रूप पुरूष मत्स्येन्द्र का आगमन नहीं होगा? क्या उसके ईष्ट देव का वचन और भविष्य कथन मिथ्या सिद्ध हो सकता है।

लोलापा पर कामाक्षी की आकुलता प्रकट हुई। उसने धैर्य धारण कर प्रतीक्षा को स्नेह का संबल बताते हुए कामाक्षी को आश्वासित किया।

चन्द्रमौलि ने दूर से ही धरा–आलोकित उल्काओं का आलोक देख लिया। उसने मत्स्येन्द्र की ओर देख कर कुछ चिंतन करते हुए कहा–

–"मान्यवर गौड़ीस देव, मेरा दृष्टि निक्षेप वहाँ कुछ दूर आलोकित

उल्मुकाओं पर हो रहा है। मेरी मन्दी स्मृति अनुसार यहाँ से कुछ ही दूरी पर,
सम्भवतः प्रवेश द्वार है। मेरे पास राजाज्ञा पत्र है, मैं प्रवेश कर महारानी को सूचित करूंगा सम्भवतः रात्रि काल में ही आपके प्रवेश की अनुमति प्राप्त हो सकेगी। पर मेरा विनम्र–आग्रह है, तुम अपनी विद्या का उपयोग कर यहां प्रवेश न करना।"

–"अवश्य, अवश्य, मेरे कारण तुम पर किसी भी प्रकार का राजकोप नहीं होगा।" मत्स्येन्द्र ने स्मितभाव से उसे आश्वासित किया।

कुछ समयोपरांत वे दोनों उल्काओं से प्रकाशित क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। उन्होंने देखा उल्कुषियों के आलोक में अनेक कामनियों का समूह एकत्रित था। अकस्मात् समुदाय में अक्षोभ्य हुआ। वाद्ययन्त्रों के वादननाद से नभोमण्डल तक गूंज उठा। द्वादश वनिताएं मंगलकुम्भ अपने सिरों पर स्थापित किए आगे बढ़ी। उनके मध्य भाग में उपानहहीन आरक्त कौशेय वस्त्रधारिणी कामाक्षी भी थी।

"परमगुरु भैरवानन्दनाथ की जय हो..........जय हो..........जय हो..........।" के गगन भेदी जयनाद से धरित्री प्रकम्पित हो उठी। वृक्ष वनस्थली के पत्र स्फुरित से सचाग्र हो उठे।

–"गौडीश देव, यह किसका जयनाद हो रहा है? सम्भवतः यह योगानुष्ठ भ्रमवश हमें भैरवानन्द मान कर स्वागतानुसार प्रतीत होता है।" चन्द्रमौलि ने चलते–चलते कहा फिर उसकी दृष्टि घटवाहिकाओं के मध्य अपने हाथ में आत्मनश्वरी लिए कामाक्षी पर पड़ी। वह विस्मय से बोला–"अरे यह तो महारानी कामाक्षी ही है।"

मत्स्येन्द्र की दृष्टि रूपसागरी कामाक्षी की ओर उठी, तब तक स्वागत कमिनियों का समुदाय अति समीप आ गया। द्वादश कुम्भ धारिताओं ने धनुषाकार पंक्ति निर्मित की। मध्य भाग से कामाक्षी आगे बढ़ी।

मत्स्येन्द्र का दक्षिण हस्त ऊर्ध्व हुआ। उन्होंने वज्रधर प्रदत्त पद्मप्रसून का स्मरण किया, तत्क्षण कामाक्षी की यौवनमयी कायगन्ध की उत्तम गन्ध से मह–मह करता पंकज पुष्प उनके हाथ में आ प्रकट हुआ।

कामाक्षी ने धवलवसनधारित वनिताओं से जलपूरित कुम्भ ग्राह्य कर उसका जल मत्स्येन्द्र के श्रीचरणों में उत्सर्गित किया फिर हरित और आरक्त वसनावरित यौवनाओं की कलश गंगाओं को मिश्रित कर एकसाथ ही उनके पाद पद्मों का प्रक्षालन लिया। मत्स्येन्द्र प्रसन्न हुए, जबकि चन्द्रमौलि भयविजड़ित हो चिंतन

कर रहा था कि महाराज्ञी भ्रमवश भैरवानन्दनाथ के स्थान पर गौडीस का स्वागतभ्यर्चन कर रही हैं।

कामाक्षी निरिगिणी के पार्श्व से अपने उत्तम पुरूष का स्फुरित, स्पंदित हृदय और अतृप्त अक्षि, अनिमेष दृष्टि से पुण्य दर्शन कर रही थी। कामशास्त्र अध्ययन के समय जो सर्वांग पूर्ण पुरूष के लक्षण आचार्य लोलापा ने कहे थे, वे सब मत्स्येन्द्र के नृदेह में उपस्थित थे।

एकाधिक, द्विशुक्ल, त्रिगम्भीर, त्रित्रिक, त्रिप्रलम्ब, त्रिक्व्यापी, त्रिवलीयुक्त, त्रिविनत, त्रिकालज्ञ और त्रिविपुल आदि पुरूषोचित शुभ लक्षणों के अतिरिक्त अन्य शुभ लक्षण जैसे चतुर्लेख, चतुस्सम, चतुष्किष्कु, चतुर्दष्ट्र, चतुष्कृष्ण, चतुर्गन्ध, पञ्चदीर्घ, षडुन्नत, सप्तस्नेह, अष्टवंश, नवामल, दशपद्म, दशव्यूह, न्योग्रोध परिमण्डल, चतुर्दशसमद्वन्द, तथा षोडशाक्ष शुभ लक्षण भी प्रथम दृष्टयः स्पष्ट दृष्टिगोचर थे।*

कामाक्षी द्वारा पादाभिशेष के पश्चात् चकित लोलापा स्वर्णथाल में प्रज्ज्वलित कर्पूर वर्तिका से आरती हेतु उपस्थित हुई। लोलापा चकित इसलिए थी कि वर्षों पूर्व महाराज्ञी तिलोत्तमा के साथ जब उसने मत्स्येन्द्र विभु का दर्शन किया था, उस समय वह पुलस्ति और श्मश्रुयुक्त थे, पर अब। उनका समुज्ज्वल, योगाग्नि में तप्त, आदित्य तुल्य और मुखमण्डल श्मश्रुहीन था। जैसे मत्स्येन्द्र विभु ने कायाकल्प किया हो। उनकी वय मात्र 23–24 वर्ष की ही प्रतीति कराती थी।

लोलापा ने आरती की फिर संयतांजली से विनयवचन उच्चारित किए। मत्स्येन्द्र कह रहे थे–"देवी लोपा महाराज्ञी कामाक्षी का दर्शन लाभ नहीं हुआ। हाँ, इस नवयौवना के रूप में उनकी प्रतिच्छाया अवश्य दर्शन दे रही है।"

इसके पूर्व कि लोलापा अपना विनय निवेदन उत्तर के रूप में प्रस्तुत करें कामाक्षी निरिगिणी के पार्श्व से बाहर दृश्यगत हुई।

–"क्षमा करे देव.........। कोई भी लता किसी वृक्ष अथवा क्षुष पर अपने आरोहन के पूर्व उस आधार पर परीक्षण कर आश्वासित होना चाहती है-क्या वह आधार जिस पर आरोहण होना है, उसके सम्भार को सह सकेगा कि नहीं?"

मत्स्येन्द्र की दृष्टि उठी, वे चौकें एक नहीं अनेक कामाक्षियां वहाँ उपस्थित थी जैसे कामाक्षी के अतिरिक्त वहाँ कोई अन्य स्त्री थी ही नहीं! मत्स्येन्द्र के अधरों पर स्मित ने क्रीड़ा की। उन्होंने योगेश्वर कृष्ण का स्मरण किया।

—"मत्स्येन्द्र अपनी सिद्धियों का स्मरण करो।" मत्स्येन्द्र को परा वाक् कर्ण गोचर हुई। मत्स्येन्द्र के योगीनिवृत देह में योगेश्वर कृष्ण का महारास नृत्य करने लगा। उरग कंचुल की भांति उनकी देह से एक अन्य प्रकाशित सत्ता स्वानुरूप देह निकला फिर द्वितीय-तृतीय। कुछ क्षणों में उनने ही मत्स्येन्द्र प्रकट हो गए जितने कामाक्षी कलेवर थे। प्रत्येक कामाक्षी के साथ मत्स्येन्द्र थे।

चन्द्रमौलि चकित! विभ्रमित मृग शावक की भांति देख रहा था। उसे स्वप्न कल्पन भी न था कि उसका साथी गौडीस देव अतिसिद्ध है। कुछ समय तक मत्स्येन्द्र की मायामय चकित सृजना चलती रही, फिर जैसे कामाक्षियों का स्वरूप अन्य स्त्रियों के रूप में परिवर्तित हुआ मत्स्येन्द्र के शेष स्वरूप मत्स्येन्द्र में ही तिरोहित होते चले गए।

कामाक्षी का मूल स्वरूप प्रकट हुआ। जैसे साक्षात हरवधु ही उसके योष कलेवर में अवतरित हुई। तडित्समप्रभा की भांति उसके यौवनमय रूप में विमला लास्य करने लगी। कामाक्षी के दक्षिण हस्त में अलौकिक सुषमा को प्राप्त नीलपद्म प्रकटं हुआ, जिसमे उसने स्वयं के योषांग रज की प्रतिष्ठा कर मत्स्येन्द्र के पाद पद्मों पर अर्पित किया। नीलपद्म को शिवरूप मत्स्येन्द्र ने अपने वाम हस्त से ग्रहण कर पद्मवसित नीर से कामाक्षी का अभिषेक किया।

कामाक्षी की भांति ही मत्स्येन्द्र के दक्षिण हस्त में एक सुन्दर स्वच्छ-स्फटिक से निर्मित धवलपानपात्र प्रकट हुआ जिसमें शिव रेतस् की स्थापना थी। मत्स्येन्द्र की अतिप्रसन्न गिरा मुखरित हुई—

—"जिस भांति आदिनाथ रुद्र महादेवी जगत-तारिणी तारा को ग्रहण कर पानपात्र प्रदत्त किया था, उसी भाँति मैं भी तुम्हें यह पानपात्र 'कामाक्षीचषक' प्रदान करता हूँ।" कामाक्षी ने कामाक्षीचषकम् को वामहस्त से ग्रहण किया।[15]

मत्स्येन्द्र को स्मरण आया आदिनाथ के महालय में उन्हें भोजन से परितृप्तता प्रदान करती विश्वमोहिनी विमला के दिव्यतर स्वरूप का जिसका दर्शन कर मत्स्येन्द्र के मनस् में संकल्पोदय हुआ था कि ऐसी विमला सुन्दरी मुझे प्राप्त हो तो मैं आनन्दकेलि से रात्रि सुख भोगूं; वही स्वरूप कामाक्षी के दिव्य तनु के रूप में उपस्थित उनके नेत्रोन्मुख था।

—"तुम ही महायोषा विमला की अवतारधरा हो कामाक्षी। मैं तुम्हें अपनी शक्ति ललिता भैरवी अम्बा पाप् के रूप में, अपने तथा तुम्हारे महालय योग के

निमित्त स्वीकार करता हूँ।" मत्स्येन्द्र ने विमल-अवतारिणी कामाक्षी को प्राण-मन से स्वीकृत किया।

उपस्थित सभी योषाओं ने मत्स्येन्द्र के पाद्पदमों में स्वार्पण किया। चन्द्रमौलि के आश्चर्य का पार नही था। कामाक्षी ने प्रसन्नता प्रदर्शित करते हुए अपनी प्रिय सखी मेखला को आचार्य चन्द्रमौलि को प्रदान करते हुए कहा-

-"चन्द्र तुम ही महानायक को यहाँ लाए हो-मैं तुम्हारा सम्मान करती हूँ। राज्य की ओर से मैं तुम्हे अपनी सुयोग्य सखि मेखला का रजपूरित पद्म सहित उसका श्रेष्ठ तनु दान करती हूँ।" अपने स्वभावानुसार चन्द्रमौलि लज्जारक्त हो उठा। उसी समय अपनी प्राणवायु पर नियंत्रण करते, भाग कर आते हुए आचार्य शिपिविष्ट का आगमन हुआ। उन्होंने दूर से ही प्रखरादित्य की भांति दीप्त मत्स्येन्द्र को देख लिया था पर वे पहचान नहीं सके। समीप आकर अपने श्वास-प्रश्वास पर नियंत्रण का प्रयास करते अकस्मात ही उनके हस्त नमस्यबद्ध मुद्रा में युत हो गए। वे मन ही मन प्रसन्न हुए-

-"आचार्य शिपि.......... प्रसन्न तो हैं न?

-"हाँ...........मैं प्रसन्न हूँ, पर आपका परिचय पुरूष वर?" शिपिविष्ट ने अपनी दीर्घ शिखा पर हस्तचालन करते हुए प्रश्न किया। मत्स्येन्द्र उसकी विस्मृति पर मुस्काए।

-"आचार्य यह मत्स्येन्द्र विभु हैं, इनका सम्मान करो।" लोलापा ने शिपिविष्ट से मन्दस्वर में कथन किया।

-"मत्स्येन्द्र प्रभु.............ऽ.............मेरे भगवान................! क्षमा........क्षमा.. ....नाथ..............।" शिपिविष्ट ने क्षमा याचना करते हुए मत्स्येन्द्र के पदों में जा गिरे।

-"मदयन्तिका ने ही मेरी स्मृति को भ्रष्ट कर दिया, क्षमा करे प्रभो।" वे दीनता से बोले।

-"यह मिथ्या-आरोप है भगवन्। मैं तो महाराज्ञी के समुदाय में आरम्भ से ही उपस्थित हूँ।" मदयन्तिका यौवत समुदाय से निकल कर मत्स्येन्द्र के सम्मुख आ बोली!

-"आचार्य आप में कोई परिवर्तन नहीं आया।" स्मित वदन मत्स्येन्द्र ने उन्हें अपने पादप्रान्त से उठाते हुए कहा। वातावरण मोदमय हो उठा। वे सभी

मत्स्येन्द्र को राजप्रासाद की ओर ले चले। नारी राज्य के पुरा इतिहास और अद्यतन काल में यह प्रथमावसर था, जब किसी पुरूष को इस भांति राज्यप्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त हुआ था।

---

1. कौलज्ञान निर्णय की भूमिका में डॉ. बागची ने मत्स्येन्द्र सम्बन्धी इस सूची को उद्धृत किया है। नाम – विष्णु शर्मा, जाति-ब्राह्मण, जन्मभूमि-वारणा (वंग देश), चर्यानाम-श्री गौडीश देव, पूजा नाम-श्री पिप्लीश देव, गुप्तनाम-श्री भैरवानन्दनाथ। (इस जानकारी (सूची) का उल्लेख प्रातः पुण्य स्मरणीय, यशःशेष आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने एक स्थान पर किया है।
2. नदी
3. आनन्द
4. नदी
6. भाग्य
7. चित्त
6. बुद्धि
9. कल्याणकारी
10. दिव्य-आभा से पूर्ण
11. कल्याण करने वाला
5. अकुलवीर तन्त्र
12. भारत के सुदूर दक्षिण प्रान्त में रह रही, मुझ पर कृपालु पूर्वा के परिणय-उत्सव पूर्व उसके अपने भावानुभव पर आधारित एवं तुल्य आख्यान। लेखक पूर्वा का आभारी है।
13. जाम्बूनाद, शातकौम्भ, हाटक, बेणक, श्रृंगी, शुक्तिज, जातरूप, रससिद्ध, आकरोद्गन। यह स्वर्ण के 9 प्रकार हैं।
14. बृहत संहिता में आचार्य वाराह मिहिर के अनुसार 13 रत्न इस प्रकार हैं। यथा-वज्र, मुक्ता, मद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन, पुलक, रुधिराक्ष, भीष्म, स्फटिक, प्रवाल।
15. ऐसा ही प्रसंग भगवती तारा के प्रकटीकरण सन्दर्भ में महात्मा श्री ब्रह्मानन्द गिरि जी ने लिखा है। यथा–

   "गृहीत्वा वामहस्तेन तत्तौयैरभिषिच्य च।
   रुद्रदत्तं पानपात्रं विधृत वामपाणिना।।"

मत्स्येन्द्रनाथ ने प्रथम प्रहरोपंरात देवी कामाख्या का दर्शन किया। अद्भुत शिल्प संरचना और सजीववत योनिविग्रह के पद्माधरों के मृदु विस्फारण के मध्य उन्हें अखण्डमण्डलाकार निर्विकार निष्कल शिव की ज्योतिर्मयी छटा का किंचित दर्शन हुआ फिर वह ज्योतिर्मयी सत्ता लुप्त हो गई। मत्स्येन्द्र का मन व्याकुल हुआ-इसी महादेव के निष्कल स्वरूप की ज्ञानहीनता में सर्वबन्धों से मुक्ति संभव नही। उन्होंने नेत्र मूंद लिए। इसी के संधान एवं इसके आवास पद्मालय के पूर्ण दर्शन के हेतु ही उनका अन्तर्यामी उन्हें नारी नगर में लाया है।

–"देवी ललिता..........!" वे मन्द स्वर जैसे क्लान्त स्वर में बोले-

–"आज्ञा प्रभु।" कामाक्षी से उनकी विकलता नहीं छिप सकी।

–"समस्त जगत की गर्भधरित्री शक्ति ही जगत्प्रपंच की मूलकारणी है। उसी के द्वारा संसाराभिव्यक्ति होने पर प्रथमतः शिव का सोऽम रूप और द्वितीय अहं रूप प्रकट हुआ। एक में शिवत्व का ज्ञान है, द्वितीय समस्त जगत को स्वयं से अभिन्न मानकर सदाशिव की संज्ञा से अविहित हुआ। उसका 'अहं' भाव ही पराहंता या पूर्णहन्ता है। यह अलौकिक प्रकटीकरण प्रत्येक नृदेह में होता है किन्तु शक्ति के अभाव में यही प्रकटीकरण आभास मात्र हैं। शिव और शक्ति में स्पष्टतयः सद्-चित-आनन्द अनावृत रूप से विद्मान रहते हैं पर शक्तिहीन अवस्था में यह भी भाषमात्र ही होते हैं। इनकी संजाग्रति के लिए ही शक्ति अपना महाघात लिंगरूपी निष्कल शिव पर करती है, पर इसके पूर्व उसे 'प्रसुप्तशिव' का संधान कर उसकी पर्युषण क्रिया आवश्यक है। तू स्वयं शक्ति है, तू स्वयं महाघाती है, तू ही जगत्प्रसूता और जगत्प्रपंच की उत्सरूपा है। देवी उस निष्कल शिव का अभिमर्षण कर पर्युषण कर। तेरी सर्पया से चैतन्य हो वह क्रियागम्य होगा और अपने मूलनिष्कल स्वरूप का दर्शन देकर हम दोनों में ही प्रकट हो अपनी तद्रूपता प्रदान करेगा।"

मत्स्येन्द्र कुछ क्षणों तक निःस्तब्ध, मौन हो गए। कामाक्षी के चिति क्षेत्र अधोलोक से ऊर्ध्व लोक तक ज्योतिर्मय पिण्ड की आलोक रेखा खिंच गई-वह निश्चिय ही ज्योतिर्मय शिवलिंग का ही प्राकार था।

मत्स्येन्द्र पुनः मुखर हुए–"देवी विमलमती, मैने अध्ययन-श्रवणादि से ज्ञात किया कि इस निष्कल सत्ता का आवास भवन कहाँ है। चतुर्दल, अष्ट, द्वादश, षोडस्, चातुःषष्टिक, शत, सहस्त्र, कोटि, सार्ध कोटि और त्रिकोटि पद्म दलों

से हभ ऊर्ध्व देश में नित्य-उदित, अखण्ड स्वतन्त्र पद्म हैं। उसी महापद्म में सर्वव्यापी, निश्चल, निरंजन का वास है, यही शिव है, यही लिंग है उसी की शक्ति से सृष्टि का सृजन करती है और इसी शक्ति में सर्व जगत लीन हो जाता है। इस लयलीन होने की क्रिया के कारण ही वह शिव लिंग की संज्ञा है, वही निर्विकार निष्कल है और अखण्ड भी। अतः देवी तू उसका यजन कर फिर अपने 'महापद्म' में मेरा ही जागरण कर क्योंकि मैं भी निष्कल ही हूँ।"

—"मैं यह अद्भुत सपर्या किस विधि से निष्पन्न करूं भैरव?" कामाक्षी ने जिज्ञासा प्रस्तुत की।

—"सामान्य अर्घ्य-पाद्यादि कर त्रिसूत्रीकरण[1] सम्पादन कर फिर योगाग्नि से पुरुषोचित कोटि-कोटि ब्रह्मणों को भस्म कर, उसी भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण कर पशुपाश से मुक्त हो, फिर करन्यास अंगन्यास सम्पन्न कर दिक्बन्ध कर तत्पश्चात शूलपाणि की प्रतिष्ठा भी सम्पन्न कर मोचाफल (केला) वृन्त सहित लिंगार्पण कर पर्युक्षण कर! देवी अष्ट मूर्तियों पर भी बिल्वादि पत्रों से पूजन कर पाश मुक्त हो और सर्वतन्त्र स्वतन्त्र कौलिनी बन।"

एतदनुसार कामाक्षी ने लिंगार्चन प्रारम्भ किया। महाभिमर्षणादि से समुत्पन्न लिंग रेतस को दक्षिण कर में स्थापित कर कामाक्षी ने बिन्दु हवन किया जो कर्पूर की भाँति अग्नि ज्वाला प्रकट हुई। निर्वात निष्कम्प ज्वालाशिखा कामाक्षी के शिरोदेश तक ऊर्ध्वगामी हुई और बिन्दु भस्म कर उसी मृणाल हथेली पर भस्मराशि छोड़ गई। उसने मन्त्रोच्चारण किया।

—"अग्निरिति भस्म जलमिति भस्म सर्वं ह वा भस्म। भस्म मे चक्षुरादि-वाणिभस्मानि कुर्यात्, शाम्भवं पशुपाशविमोक्षणात्।"

भस्म रूपं परब्रह्म परा शक्तिर्निरीरिता।
भस्म ज्ञेयं परं ज्ञानं, परं तत्वस्वरूपकम्
परमानन्दकं भस्म ज्ञानकारी व्यवस्थितम्।
विभावयामि तद्भस्म पशुपाशविमुक्तये।

कामाक्षी ने पशुपति, हर, नीलकण्ठ, रुद्र, भूतेश श्री साम्भव भैरव, शिव, काल, ज्ञान और क्रोध शिव के मंत्रों से न्यासादि सम्पन्न कर अंगन्यास और दिक् बन्धन सम्पन्न किया फिर शूलपाणि की प्रतिष्ठा कर षोडशोपचार से अभ्यर्चन किया। उसने लिंगाग्र पर कदली फल भी अर्पित किया[2]

कामाक्षी ने सर्व क्षिति मूर्ति, भव जल मूर्ति, रुद्र-अग्नि मूर्ति, उग्र वायु मूर्ति, भीम आकाश मूर्ति, पशुपति यजमान मूर्ति, महादेव सोम मूर्ति, ईशान सूर्य मूर्ति, इत्यादि अष्टमूर्तियों का भी अर्चन किया।[3]

मत्स्येन्द्र अतर्यामी सहित प्रसन्न हुए। उपासना से तुष्ट उन्होंने मुग्ध गिरा से उच्चारण किया–"देवी तुम धन्य हों। लिंगोपासन श्रेष्ठ उपासना है क्योंकि लिंगवेदी ही देवी है तथा लिंग ही साक्षात ब्रह्म है। इन दोनों के पूजन से देवी-देवता पूजित हो जाते हैं। कुछ समय तक इसी भांति उपासन कर्म से तुम्हारे समस्त पाश (अष्टपाश) छिन्न हो जाएंगें। यद्यपि तुम पूर्ण पात्र हो और पाश भी शिथिक हैं, तथापि पूजा का सम्यक ज्ञान प्राप्त कर लेने पर साधक स्वयं सन्निहत शिवत्व का अनुभव कर जीवन्मुक्ति के उन्माद आस्वादन करता है।" मत्स्येन्द्र अपनी ध्यानतन्द्रा में डूब गए!

शरद् पूर्णिमा।

कामाक्षी का शिर्वाचनानुष्ठान सम्पन्न हो चुका था। चालीस दिन कामाक्षी का तपः कर्म शिर्वाचन किंवा लिंगार्चन के रूप मे निर्बाध चलता रहा। इस मध्य मत्स्येन्द्र स्त्री राज्य की विधि संहिता, और लोक सभ्यता को भलीभाँति जान गए। उस देश की उपासना पद्धति को भी उन्होंने आत्मसात किया। वह उपासना पद्धति पूर्णतः वज्रयानी-चीनाचार से सम्मत थी। अतः उन्होंने इस कामरूप पीठ पर ही योगिनी कौलमत को परिष्कृत करने का निश्चिय किया। उन्हें सत्याभाव हुआ कि इसी पीठ स्थल पर उनका अकुल मत कुल मत से समन्वित होकर आदिनाथ-उपदेशित कौलमार्ग की सार्थकता सिद्ध हो सकेगी।

मत्स्येन्द्र ने सौलह सौ कमनीयकाय धरित्री कामनियों का मण्डल निर्मित किया। शत सुन्दरियों के मध्य एक नायिका की नियुक्ति कर मुख्यतः षोडश नायिकाओं का यौवत समूह निर्मित किया। इन नायिकाओं में ही पृथक से मेखला, पताका, मदयन्तिका तथा लोलापा का भी प्रमुख स्थान था। इनके अतिरिक्त सव्रीडा, कापालिकी पांशुला तथा उसकी दो विशिष्ट सेविकाएं भी मुख्य थी। ये उपर्युक्त नायिकाएं – षोडश नायिकाओं के अतिरिक्त नायिकाएं थी।

रूप गुण और पात्रता के आधार पर मत्स्येन्द्र ने षोडश – यौवन पूरित और चारुअंग धारिणी वनिताओं के नवीन नामकरण किए। शुभद्रा, प्रमदा, सकला, निष्कला, कमला, विमला, कुलजा और भगदा ये प्रथम परिमण्डल की अष्ट

नायिकाएं तथा रति, धी, मती, श्री, सृति, वृत्ति और इति द्वितीय परिमण्डल की अष्ट नायिकाएं थी। प्रथम परिमण्डल की अष्ट योगिनी कुल में जीव राग का उत्तरोत्तर संवर्द्धन करता भगदा के सुखगेह में विश्राम पाता फिर द्वितीय योगिनी परिमण्डल में सराग जीव प्रवेश कर अपनी क्रिया, बुद्धि, चिति सहित समस्त वृत्तियों का इति के महालय अभिहोम करता, तत्पश्चात कामाख्या (कामाक्षी) के महाशून्यागारी पद्म देश के अन्तःकुहर तल मे सर्वातीत हो महासमाधि मे प्रविष्ट हो कौल बन जाता। कुछ इसी भांति की परिकल्पना का स्थूल रूप प्राप्त कर योगिनी कौलमत की प्रतिष्ठा को मत्स्येन्द्र पुनर्जीवन देने के इच्छुक थे।

इसी आधार के अनुरूप कौलाचार्य मत्स्येन्द्र ने योगिनी कुल साधनालय का निर्माण कराया। चतुर्दिक प्रवेश द्वारों पर अष्टनायिकाओं के रमणासन स्थापित किए गए फिर षोडश वर्तुल मण्डल काराओं का निर्माण कर प्रत्येक कारा में शत पद्मदलों के मध्य में आस्तरणासन स्थापित किए गए। वर्तुल काराओं के पश्चात अष्ट पद्म और उसके अन्तः वार्तुल्य में पुनः अष्टपद्म। द्वितीय अष्टकमल के आभ्यान्तर षड्कोणी संरचना के अन्तःभाग में एक नील सरोवर का निर्माण हुआ और इसी नीर बिन्दु में महानायिका कामाक्षी का पद्मपत्रवत मनोहर आसन की स्थापना की गई। इस प्रकार कौलयोगिनी मण्डल का निर्माण श्रीमत्स्येन्द्र द्वारा सम्पन्न कराया गया।

सम्पूर्ण कौलमण्डल एक जलकूपिका की भाँति प्रतीत होता था। ऊर्ध्व से देखने पर षोडश कमलकाराएं स्पष्ट दर्शन देती थी। अधोतल के नील सरोवर में स्फटिक निर्मित चारुपद्म के मध्य कामाक्षी का आसन अतिदर्शनीय था।

नयनानन्दकारिणी कामाक्षी और योग निभृत मत्स्येन्द्र पुष्पिका के एक प्रसून मण्डप में बैठे थे। मत्स्येन्द्र मौन रूप से शरद् चन्द्रिका के शुभ्र प्रसारी सोमत्रावी मयंक मण्डल को मुग्ध हो देख रहे थे। उनके समीप ही मानस भोगम् की श्रेष्ठ सत्पात्री कामाक्षी पुष्पास्तरण पर बैठी अत्यन्त स्नेहमयी दृष्टि से मत्स्येन्द्र का उज्ज्वल मुख मण्डल को निरख-निरख कर आत्मतृप्ति के उद्योग में रत थी।

अकस्मात् मत्स्येन्द्र विभु के चिन्तन मे विराम आया। लताप्रसूनाच्छादित सघन गुल्मों के पार्श्व से पुरुष कण्ठ से सुमधुर भग गान श्रवण गोचर हो रहा था–

भग भोगनी भग योगिनी,
भग भोग भोगत भगवती।

भग-भग 'परा'
भग मात्र 'अपरा',
भग भगति भावति भग सृति॥
भग चण्डिनी-भग मुण्डिनी,
भग चण्ड-मुण्ड प्रचण्डिनी।
भग मण्ड मण्डित मण्डिनी
भग मुण्ड मण्डाखण्डिनी॥

भग मदिर मधुकरि मदस्त्रुता,
भग मिहिर मह्-मह् मुदकरी।
भग शिखर सिद्धि सुषीम सीता,
भग, मुक्ति दे भद्रंकरी॥

"चारुलोचने, आत्मभूया यह मधुर कण्ठी भग गान किस पुरुष के कण्ठ से निःसृरत है? यद्यपि इस गान में छन्द दोष है, तथापि यह श्रवणीय है।" मत्स्येन्द्र ने कामाक्षी की सकल कोमलता को अपनी प्रहर्षित दृष्टि से आलिंगत करते हुए प्रश्न किया।

—"प्रभु यह भग रचित पद तो कवि चन्द्रमौलि की रचना है, जिसे आचार्य शिपिविष्ट ने श्रवण किया होगा। अपनी विस्मृति वृत्ति के कारण शिपिविष्ट मूलपद को किञ्चित दूषित कर गान कर रहे हैं।" महाराज्ञी स्निग्धतनया कामाक्षी ने आचार्य शिपिविष्ट के स्वर को पहचान कर मन्द स्मित से मत्स्येन्द्र को वाक् निवेदित किया। शिपिविष्ट का गान स्वर गुंजित हो रहा था—

"मृदु-मनोहरि मुक्त पद्मा,[4]
सुख सरित योषा दलम्।
रस-रमित रज रास ऋजु,
पद्मा पद्म गत सद्गतम्॥"

—"हँ.........हँ...........ऽ.............ऽ........" स्वच्छ चन्द्रिका के प्रसार मे संगिमत युवती का मन्द्र हास्य ध्वनन् हुआ फिर स्वर उभरा—

—"आचार्य..........अब पद्मासृति का महत्व भी कहो।" यह मदयन्तिका का प्रसन्न स्वर था। आचार्य शिपि ने पुनः गायन किया—

"पद्मा दल मृदु मदिर 'पुर',
पद्मा पदं-पद भगवतम्।

पद्मा सृति प्रक्षरित सरितं,
सकुल शिव शरणागतम्।।"

अकस्मात मत्स्येन्द्र के किंचित परिस्फुरण हुआ। नेत्रों का अक्षि लास्य चलित हो कपाल कुहर में प्रवेश कर गया और दृष्टि भूमध्य में स्थिर हो गई। देह का गुरुभार क्षीणतर हो पुष्प की भाँति भारहीन हो गया। मत्स्येन्द्र के इच्छायान का आलम्बन प्राप्त कर उनका देह धरा से उठा और आंतरिक्ष में पक्ष्ममात्र को स्थिर हो उन्होंने अपनी आमंत्रणी बाहें कामाक्षी को लक्ष्य कर प्रसारित की।

कामाक्षी को प्रतीत हुआ जैसे सुरभि स्रोता उसका मृदुल तनु भवन भारहीन हो उठा है, वसुधा का गुरुत्वाकर्षण भी क्षीण प्रायः हो चुका है। उसका कमनीय कलेवर भूमि से उठा और मत्स्येन्द्र के भुज प्रसार में बंध गया। एकक्षण में ही प्रकृति-पुरुष की युग्ममयी सत्ता आचार्य शिपिविष्ट और कोमलांगी, विधुवदना, मदमयी मदयन्तिका के लीला स्थल पर उपस्थित थी।

सोमस्रावी विधु के चन्द्रिक ज्योत्स्नालोक में सुरभित पुष्पों के चक्रासन पर मदयन्तिका ऊर्ध्वमुखी हो उत्तानावस्था में लेटी थी। निर्वसना मदयन्तिका की कायकान्ति का धवलचन्द्रिका के प्रसार में शिपिविष्ट मुक्त दर्शन करते प्रकृति रूपिणी के पर्युषण में व्यस्त थे! पूजन के उपकरण, नीर कलश-आदि समीप ही स्थित थे।

शिपिविष्ट ने पद्म प्रक्षालन किया, स्नान के मंत्र उच्चारित किए फिर पुष्प गुच्छ से मदयन्तिका के पद्ममण्डल को आच्छादित कर दिया। उनके कण्ठ से स्वर निर्गत हुआ-

"पद्मा पद्म द्युत्युष्ट त्वं
दिवि, मुक्ति-भुक्ति प्रदायनी।
कर-अकर कुलजा कला त्वं
शिपि शक्ति-सुक्ति कमायनी।।"

-"देवी कामायनी, शिपिविष्ट के साधन तंत्र पर अपना कृपावर्षण करो। उसकी अर्चना प्रसन्नदायी है।" मत्स्येन्द्र ने कलम्बित लिप्त वदना कामाक्षी के कोमल कमल वसित सृष्टि-उत्सा की शक्ति को उद्दीप्त करते हुए वचन कहे।

कामाक्षी की सकल काम कलीय चेतना योष मन्दिर के श्वभ्र बिन्दु पर एकत्र हो गई। कुछ क्षणों में ही एक आलोक राजि उसके सृष्टि सृजकांग से

प्रादुर्भूत हो मदयन्तिका की योषमृणालता में प्रवेश कर गई। तत्क्षण मदयन्तिका का कोमल, दीप्ति देह आलोक पूरित हो महस्वत् हो उठा। उसके अंग-प्रत्यंग से दिव्य-आलोक का निर्झरण देख शिपिविष्ट चौकें। उन्होंने मदयन्तिका के रूपवारित मुख को देखा और आश्चर्य आतंक से उनका स्वर फूटा-

-"अरे..........यह तो महाराज्ञी कामाक्षी का मृदुल-मोहन तन है।" उन्होंने घबरा कर पलायन का प्रयास किया, पर प्रकृति प्रतिनिधि रूपा ने उन्हें अपने मृणाल भुजपाश में महालिंगन कर उन्हें धराशायी कर दिया फिर स्वयं अपने वाहन पर आरोहण को सनद्ध हुई।

कामाक्षी स्वयं चकित थी। वह स्पष्ट देख रही थी, उसी का प्रतिरूप शिपिविष्ट पर आरूढ़ था। ऐसा क्यों? उसने उत्तर के लिए मत्स्येन्द्र का लक्ष्य किया, पर मत्स्येन्द्र! जिस स्थानपर मत्स्येन्द्र खड़े थे, वह रिक्त था। कहाँ गए मत्स्येन्द्र विभु?

-"महाराज्ञी प्रणाम स्वीकार करे।" सघन गुल्मों के मध्य खड़ी लीला दर्शन कर कामाक्षी नारी-पुरूष का युग्म स्वर श्रवण कर आकर्षित हुई! उसके समीप अभिवादन करते मदयन्तिका और शिपिविष्ट दोनों ही खड़े थे। कामाक्षी ने अत्याश्चर्य से लीलास्थल की ओर देखा तो और भी उसके आश्चर्य में वर्द्धन हुआ। उसी की प्रतिरूपिणी रमणी के सहचर के रूप में शिपिविष्ट के स्थान पर स्वयं मत्स्येन्द्र ही लीलारत थे! "आचार्य, वहाँ दृष्टि निक्षेपन करो, देखो तो. ....तू भी दर्शन कर मदयन्तिके कामाक्षी ने शिपिविष्ट और मदयन्तिका को प्रेरित किया!

दोनों की दृष्टि कामाक्षी से संकेतिक स्थल पर पहुंची, पर वह कोई दृश्य नहीं था। दोनों ही समवेत स्वर में बोले-

-"देवी राज्ञी, वहाँ तो निरामयी शून्यता है।"

कामाक्षी ने मदयन्तिका का स्पर्श किया। जैसे ही मदयन्तिका का कामाक्षी द्वारा स्पर्श हुआ, वह चकित हो लगभग चीखी।

-"महिमामयी देवी! यह तो आपकी ही प्रतिच्छाया है, और पुरूष मत्स्येन्द्र उससे रमनरत है।"

-"मेरी देह का स्पर्श करो आचार्य।" कामाक्षी शिपिविष्ट की विकलता को लक्ष्य कर बोली। शिपिविष्ट ने आज्ञापालन किया, और उन्होंने भी वही दृश्य

देखा जो कामाक्षी मदयन्तिका देख रही थी। उन्होंने कामाक्षी के स्पर्श से स्वयं को मुक्त किया तो पुनः दृश्य दृष्टि से अतीत हो गया। यह बात शिपिविष्ट ने मदयन्तिका से भी कही। उसने भी परीक्षण किया और सत्य पाया।

अकस्मात् कामाक्षी को आभाश हुआ कि उसके यौवन राग में तीव्र वर्द्धन हो रहा है। देह में कामेच्छा रागमयी होती जा रही है–कामअंगों में स्फुरणा का व्याप्तन हो रहा है, रति की रंगधरा महाराग से रंजित हो निरन्तर अपने प्रियकर की संघर्ष क्रियाओं से कामदग्ध हो रही है!

–"तुम यहाँ से तत्क्षण प्रस्थान करो।" कामाक्षी ने दोनों को आदेश दिया और वही दुर्वांकुरों के मृदुलास्तर पर बैठ गई।

–"काम की प्रत्यक्ष भू, देवी कामाक्षी! यहाँ इस असमय?" अपने समीप ही मत्स्येन्द्र का कण्ठ स्वर सुन कर कामाक्षी पुनः चकित हुई।

–"मैने प्रासाद में भी आपका गहन संधान किया, अन्ततः आप यहाँ मिली।" मत्स्येन्द्र ने पुनः कहा।

–"प्रभु! महाश्चर्य घटित हो रहा है। उस लीला स्थल को देखें। वहाँ मेरी प्रतिच्छाय रमणी और आपका प्रतिरूप पुरूष मिथुनचर्या में रत हैं!" कामक्षी ने कहा! मत्स्येन्द्र ने देखा और प्रसन्नता से मुखर हुए–

–"काममयी, स्तुतारूपिणी रानी। प्रकृति में अनेक रहस्य घटित होते हैं। यह भी किसी सूक्ष्म ब्रह्माण्ड में घटित हो रहा है।"

–"किन्तु प्रभु, यही आपका प्रतिरूप सन्ध्याबेला से ही मेरे समीप था।" कामाक्षी अभी भी चकित थी।

–"यह भी प्रकृति का ही रहस्य है, समयानुसार आप पर अवश्य प्रकट होगा। अब प्रस्थान करें।" मत्स्येन्द्र की आज्ञा ग्राह्य कर कामाक्षी उनके साथ चल दी! वह पुनः पुनः चलते हुए लीला स्थल को देखती, वह मिथुनचर्या निर्विघ्न चलती रही! कामाक्षी इस तथ्य से अनभिज्ञ थी कि यह निधुवन लीला प्रभु मत्स्येन्द्र की ही इच्छा शक्ति की संरचना थी जो उसके अत:वसित राग के उद्दीपन संवर्द्धन हेतु रचित थी।

"देवेशि! भक्ति सुलभे! परिवार समन्विते!।
याक्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव॥"

श्रीमद्कामाख्ये! देवि। इहागच्छागच्छ। मत्स्येन्द्र सन्निहत पुरूष चिति ने कामाक्षी की अन्तः निवासिनी कामरूपिणी का आह्वान किया। वात्या वेग की भांति कामाक्षी का रसागार कलेवर उपासना स्थल पर उपस्थित हुआ।

अधोमुख अंजली से पुरूष ने 'इह तिष्ठ तिष्ठ' उच्चारण किया फि मुष्ठिका में अंगुष्ठ को अन्तःलय कर (दबा कर) 'इह सन्निधेहि' उच्चारण कर अपने निकट बैठने का संकेत किया। देवी के समीप (निकट) आने पर आसन पर उसकी स्थापना कर मत्स्येन्द्र के मुख से उच्चारण हुआ–

–"इह सन्निरुद्धस्वहस्त भ्रामयित्वा अत्र अधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण।" "श्रीमद् कामाख्ये! देवि! वज्रपुष्प प्रतीच्छ हुँ फट् स्वाहा" मंत्रोच्चारण से उन्होंने धेनु, योनि, मत्स्य, अंकुश, शशांक, खड्ग, मृग, गालिनी मुद्राओं का प्रदर्शन कर पुष्पादि पूर्वक पूजन किया।

विविध मुद्राएं, प्रतीक और प्रत्यक्ष उपकरणों से समंत्र पूजन कर मत्स्येन्द्र विभु ने वायव्य से इशान कोण तक गुरुपंक्ति का पूजन किया। वही अभीष्ठ मोक्षकाम्य हित उन्होंने ऊर्ध्व केशनाथ व्योमकेश नाथ नीलकण्ठ नाथ, वृषध्वज नाथ आनन्दनाथान्तनाथ जगत् पिता एवं तारावती, भानुमती, जया, विद्या, महोदरी, अम्बान्त तथा इसके साथ ही वशिष्ठानन्दनाथ, मीननाथानन्दनाथ, हरिनाथानन्दनाथ, कुलेश्वरानन्दनाथ, महेश्वरानन्दनाथ, सुखानन्दनाथ, परिजातानन्दनाथ, तथा महाकाल रुद्राण्यम्ब, उग्राम्ब, भीमाम्ब, धीराम्ब, भामर्य्यम्ब, कालरात्र्यम्ब, विश्वरूपाम्ब आदि की पूर्वादिक्रम से वामावर्त विधि से समंत्र अर्चन किया।

कामाक्षी रूपी प्रत्यक्ष यंत्र के पूर्व में शंखपाण्डर, पद्मनाभ, असितांग, पाण्डर, तारक, पद्मान्तक उत्तर में यमान्तक, पश्चिम में विध्नान्तक और दक्षिण में नरान्तक का पूजन किया।

उन्होंने वामभाग मे मांस रहित तन्दुल, दधि, हरिद्रा, परिपक्वमत्स्य, कारणवारि इत्यादि अन्यान्य पदार्थों को त्रिकोण, षट्कोण, वृत तथा वर्गाकार, चतुष्कोण आदि निर्मित कर स्थापित किए।

कामाक्षी की दीप्ति में ही उन्होंने इच्छा, ज्ञान, क्रियारूपिणी, कामिनी एवं रति प्रिया, रतिप्रदात्री रति का भी पूजन किया। प्रकृति ऊर्ध्वमुखी हो आसन पर शयन मुद्रित हुई!

कामाक्षी की मृदुता में सौदामिनी की तडितच्छटा प्रकट हुई। कामाक्षी की

तनु प्रसारित शम्पारश्मियों ने मत्स्येन्द्र के पुण्य श्रेयः गात्र से उनके मूलपुरूष के सत्वसार को अपने महाघात से मूर्त कर जाग्रत किया। अव योग संवृत मत्स्येन्द्र मात्र दृष्टा थे। उनके अन्तःनिहित पुरूष ने स्वाभाषित क्रियाओं का सम्पादन प्रारम्भ किया। पुरूषोत्तम ने द्वादस योनि विद्या का न्यास किया–

योनिविद्यायै नमः (मृगमुद्रा से सिर में न्यास

"योनि नित्यायै नमः" (मुख)

"योनिरूपायै नमः" (कण्ठ)

"योनिमध्यायैः नमः" (हृदय)

"योनि सिद्धायै नमः" (उदर)

"योनि क्लृप्तायै नमः" (नाभि)

"योनिदायै नमः" (मूलाधार)

"योनिहायै नमः" (दक्षिण पाद)

"योनि साध्यायै नमः" (वाम पाद)

"योनिज्ञानायै नमः" (दक्षिण भुजा)

"योनिपायै नमः" (वाम भुजा)

"योनिपुण्यायै नमः" (सर्वांग)

पुरूष ने ये द्वादस न्याश अक्षतयोनि पद्म को द्वादस शकलो में विभक्त कर न्यास किए फिर श्रद्धा सहित पद्ममण्डल के बाह्य परिसर को निम्बादि के कटुनीर तथा मधु आदि के मिष्ठनीर से प्रक्षालन कर पवित्रीकरण की क्रिया सम्पन्न की।

पुरूष ने प्रकृति के राजिमगौर पदम के उत्तर दल-अधर पर कामरूपिणी, दक्षिणदल-अधर पर कामप्रदायनी तथा पद्म के मध्य संकीर्ण छिद्र में रति आधारिणी अथवा रतिवाहना महाविस्तारणी कामाख्या की पूजन की। मण्डल के इसी मध्याह्न में आकाशी, प्रकाशी, नीरराशि का पूजन भी हुआ। कमल के ऊर्ध्व में विहारिणी और अधोभाग में निस्सारिणी, मण्डस्थ योनि पत्रकों पर अंकुरित मणि के त्रिकोणों पर कादि-हादि और अनादि तथा स्वयंभुलिंग पर श्वेतवर्णी महादेवी ने कान्त कुलदेव का पर्युषण सम्पन्न कर पुरूष ने प्रार्थना की।

"पाहि त्वं करुणामयि! प्रियतमं सत्साधकं रक्ष मां
भ्रष्ठान्नाशय नाशय प्रियतमं वक्त्रारविन्दं मम्।
नित्यं देहि सुधासुधाचयमयी सिद्धि शिवे! सिद्धिदाम
ज्ञान मोक्षविधायकं कुरु शिवे!..........................॥"

माधवी कामाक्षी ने मसृणं कमल से मदकेसर पुष्प प्रस्त्रवित होने लगा जिसे पुरूष ने अपने अंगुष्ठ पर एकत्रित कर भाल पर तिलक रूप से लगाया। प्रकृति अत्यधिक रागमयी होकर ऊर्ध्व मुख से विविध नाद स्वर सीत्कारादि के स्वर प्रकट करने लगी।

–"पुरूष आ..........ऽ.............ऽ.............! मुझे परितृप्ति का प्रमोद प्रदान कर। मैं साधन हूँ और तू साध्य। तू मेरे रजामृत को अपने दिव्य रेतस् के संग मिश्रित कर ऊर्ध्व रेतस् बन। मेरे मृणाल मय अंग विस्तार धारक देह में पंचामृत की पंचपुण्य सरिताएं तेरे श्रेयस हित ही महास्त्रावित हो उठी हैं। तू इनका आकर्षण कर ऊर्ध्व क्रिया से देह स्वदेह को वज्रवत बना तब अस्थि, त्वक्, मांस, लोम, नाड़ी, लार, मूत्र, अष्टक्, स्वेद, शुक्र, क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा, कान्ति, धावन, चलन, रोधन, प्रसारण, आकुंचन, राग, द्वेष, भय, लज्जा, मोह आदि समस्त तत्वांश अपने–अपने तत्वों में विलय होकर मुझे तत्वातीत बना देगे। आ. ....ऽ.............ऽ..............। चक्रासीन यंत्रमयी प्रकृति ने भुज प्रसार का पुरूष कर आह्वान किया।

–"कललास्यी कामाख्या! अक्षत योनि के सांकीर्ण्य सर्गी पथेकपदी में गमन विघ्नकर है। अतः दैव्या, साधन मन्दिर के बाह्य प्रदेशी रति कक्ष में अक्षत पद्म सृति के क्षत सम्पन्नीकरण हेतु आदेश प्रदान कर, क्योंकि कुमारिका का सर्वांगीण अभ्यर्चन निष्पन्न हो गया है।" पुरूष ने विनय की!

"तब फिर इसी करणीय को विलास कक्ष में प्रचण्ड सपन्नाकरण के शिश्न कृत्य से बुलिपिधानक पत्रों का विस्फारण कर भगाभिमर्षश कर।" प्रकृति के चटुल चक्षुओं से कामेच्छा की भास्वती प्रज्ञा उदित हुई।

पुरूष ने प्रकृति की श्लक्ष्ण सुषमा को उठाया और समीपस्थ रति कक्ष में बिछे मृदु–आस्तरण पर आरोहित कर दिया। मत्स्येन्द्र अभी भी तटस्थ वृत्ति से दृष्टा बने प्रकृति और पुरुष की सपर्या फिर केलिक्रीडा निर्लिप्त भाव से देखते रहे।

कामाक्षी के यौवन प्रसारित, प्रफुल्लित अंगावयवों में पूर्णतः बंसतावतरण हो चुका था। देह की अमलप्रभा में रति देवी के सुरभित प्राकट्य से उसे सर्व जंगम जगत काममय प्रतीत होने लगा। प्रातः से ही आनन्द की उद्रेकोर्मिलाएं शिरोरुह, लोमराजि सहित उत्सवमयी हो रही थीं। दिन भर वह उमंग-उत्साह और आनन्द की त्रिवेणी में डूबी-निशा-उत्सव की मधुस्मृतियों का स्मरण करती रही। नारी की पूर्णता बिना पौरुष के संभव नहीं। आज उसे प्रत्यक्ष प्रतीत हो रहा था कि नारी राज्य में पुरुष की कितनी महती आवश्यकता है। अब उसे रात्रि काल की प्रतीक्षा थी।

---

1. त्रिसूत्रीकरण कर्म इस प्रकार तान्त्रिकों में प्रचलित है!
   (1) योनिपीठ से विष्णुपीठ-(2) लिंगाग्र से तुल्य मूलक पर्यन्त (3) योनि से नीचे शेष पर्यन्त तान्त्रिक कर्म त्रिसूत्रीकरण कहलाता है। यथा-
   "योनिपीठाद्विष्णुपीठं लिङ्गाग्रातुल्यमूलकम्।
   योन्यधः शेषपर्य्यन्तं त्रिसूत्रीकरणन्त्विपदम्।।" "ताराहस्यम्"
2. उपर्युक्त न्यास इस प्रकार-
   पशुपतये नमः - सिर, हरये नमः - मुख पर, नीलकण्ठाय - कण्ठ पर
   इसी प्रकार अन्य स्थानों पर हृदय, कपाल, दोनों कान, दोनों पैर, दक्षिण बाहु, वाम बाहु, पीठ एवं समस्त अंग।
3. इन मंत्रों को इस प्रकार उच्चारित करेगें।
   सर्वाय क्षितिमूर्तये नमः
   भावय जलमूर्तये नमः
   रुद्राय अग्निमूर्तये नमः
   उग्राय वायुमूर्तये नमः —इसी प्रकार अन्य शेष 4 मूर्तियों के मंत्र होगें।
4. पद्मा से आशय पूर्वोल्लिखत 'पदम' के अर्थ से है, द्वितीय यहाँ पद्मा से आशय जो पद्म को धारण करे वह अर्थात सुन्दर स्त्री। यहाँ भावार्थ महाशक्ति जगत्प्रसूता कामाख्या से है।
5. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने 'गोरक्षनाथ का उपदिष्ट योगमार्ग' नामक लेख में अमरौघ शासन (पृ.7) का-उल्लेख करते हुए लिखा है-मेरुदण्ड के मूल में सूर्य और चन्द्र के बीच योनि में स्वयम्भू लिंग है जिसे पश्चिम लिंग कहते हैं। यही पुरुषों के शुक्र और स्त्रियों के रजः स्खलन का मार्ग है। यही काम, विषहर और निरंजन का स्थान है।

रात्रि के द्वितीय प्रहर की प्रारंभिका

मत्स्येन्द्र ने पूजाग्रह के द्वार पर योगिनी आदि का संक्षिप्त पूजन किया फिर सौलह सौ योगिनियों का अर्चन कर प्रथम अष्ट दिक्वस्त्र धारिणी योगिनियों का अभ्यर्चन किया, तत्पश्चात वे नीलनीर के स्फटिकासन में प्रविष्ट हुए। वहाँ दिगम्बरी क्लीं तत्व की प्रतिमूर्ति कामाक्षी साधना के हेतु सनद्ध थी।

साधना स्थल पर तेरह चषक एवं पात्र व्यवस्थित रूप से सज्जित थे। प्रत्येक चषक एवं पात्र सुधा वारि एव अन्य पदार्थों से परिपूर्ण था। यह सुधा आनन्दोत्कर्षिणी, अष्टपाशों से मुक्ति की प्रदात्री थी! कामाक्षी ने मत्स्येन्द्र का स्वागत कर आसनासीन होने की प्रार्थना की!

मत्स्येन्द्र ने भैरव के भाल में सुशोभित चन्द्रकला के अमृत से सिंचित एवं क्षेत्राधिष्ठित चक्रस्थित योगिजनों तथा सिद्ध साधकों द्वारा पूजित आनन्द सागर साक्षात् त्रिखण्डामृत प्रथम चषक (पात्र) को प्रणाम किया। फिर हिरण्यमय द्वितीय महापात्र को जो महामांसी है, नील है तथा सनातन और सर्वदा आनन्दोदधि में विलीन रहता है, जो ज्ञानस्वरूप मोक्ष का प्रदाता हैं को उन्होंने प्रणाम किया। महापद्म में बुद्धि द्वारा अक्षय योनि का ध्यान करते हुए मत्स्यखण्ड युक्त तृतीय पात्र को भी उन्होंने प्रणाम किया। चतुर्थ पात्र में स्वयं सिद्धि स्वरूपा मुद्रामयी योनिमुद्रा, पंचमपात्र में भगलिंगमयी सुधा, षष्ठम् पात्र में महामद्यमय, सप्तम में सप्तसमुद्रों से उत्पन्न समुद्रजलमयी सुधा, अष्टम में अष्टदुर्गारूपिणी सुधा, नवम में शिवप्रिया, दसम में महामोहों की विच्छेदिका मोहनी भगवती, एकादश में अष्टमहासिद्धियों की दात्री, एकादश महारुद्ररूपिणी, द्वादश पात्र में सदानन्दी द्वादसादित्यों तथा त्रयोदशपात्र में वाणी की अधिष्ठात्री शारदा को प्रणाम निवेदित किया।

अंत में कामाक्षी के महापद्म पात्र में उन्होंने रजस्विनी दैव्या को प्रणाम किया। कामाक्षी मुदित हुई, उसके मदपूरित नेत्र महावेग से हँस उठे।

–"महाकौल अपने अन्तःनिवासित पुरूष को प्रत्यक्ष करें, मैं प्रकृति की समग्रता को प्रकट कर चुकी हूँ।" कामाक्षी का स्वर कठोद्धृत हुआ!

स्वसिद्ध क्रियाओं से मत्स्येन्द्र ने अपना पूर्ण पुरूष प्रकट किया। चक्र में अवस्थित 16 सौ रमणियां किंवा योगिनियों के प्रहर्षित कण्ठ ध्वनि से यंत्र मण्डल गुंजित हो उठा। उनका महानाद अधिक समय तक यंत्र आवेष्टकों से

टकरा-टकरा कर ध्वनित्व होता रहा।

—"अहो पूर्ण पुरुष! मै कर्त्री हूँ, मैं ही कार्यिका। मै ही भोगनी हूँ और समस्त भोज्य पदार्थ भी मैं ही हूँ। तू चिदात्मा है, तू ही विष्णु और विश्व है तथा गुरु भी तू ही है। इसलिए मैं तुझे अपने महाभिघात से उत्थापित कर तुझे अपने समस्त दायित्व प्रदान करती हूँ। तू योग से भोग और भोग-योग की दिव्ययुति से दिव्यभाव को प्राप्त कर मेरा यजन कर क्योंकि मैं ही पूर्ण हन्ता और मुक्ता हूँ।" करते हुए प्रकृति स्फाटिकाधार पर उत्तारशायी हो गई।

पुरुष ने वदन किया—

शक्तिरूपे! महादेवि! योनि सिद्धिस्वरूपिणी।
प्रसीद जगता सृष्टिकारिणी! ब्रह्मरूपिणी॥

योनि रूपा महाविद्या योनि सिद्धि प्रदायिनी।
सृष्टिः प्रजायते यस्मात पुत्रत्वेनापि पाल्यते॥

पुनः प्रलीयते योनौ सृष्टिस्थितिलयालये।
साधयामि महामंत्रं तेन सिद्धिं विधेहि मे॥

साक्षी मत्स्येन्द्र देख रहे थे—'यंत्र' के मध्य अमृतानन्द स्वरूपिणी, करोड़ों सूर्यों की भांति प्रकाशपूर्णा तथा कोटि चन्द्रमाओं की निर्मल-शीतल कान्ति से युक्त, रक्ताम्बरा दैव्या को जिसकी श्लक्ष्णी भुजाओं में रत्नजटित केयूर एवं अन्य अंगों में सर्व प्रकार के अभूषण विभूषित हैं। उन्होंने दिव्या की मोहनी मृदुता को श्रद्धा से नमन किया।

पुरूष कुचोत्पन्न ब्रह्महत्या से मुक्ति का पाठ कर शुक्रशाप का मोचन कर रहा था—

"सूर्य मण्डल सम्भूते! वरुणालयसम्भवे!।
अमाबीजमयि! देवि! शुक्र शापाद्विमुच्यताम्॥"

मत्स्येन्द्र अमृतानन्दवर्षिणी की रूपमाधुरी का पान करने लगे! षोडश वर्षीया, प्रसन्नवदना, त्रिलोचनी, सर्वांगभूषणाभूषित, आरक्तवसना, महामोद-प्रदायिनी, कामदेव द्वारा उन्मत्त कन्यारूपधारिणी सदाशिवमयी देवी जो रतिविलासयुक्त हृदया है, का मत्स्येन्द्र दिव्य दर्शन करने लगे।

चैतन्य शिवात्मा की अन्तः स्फुरणा मंत्र के रूप में बैखरित हुई—

"हौं हौं क्लीं कामेश्वरी महाकामाख्ये कामाख्यालये। ममैवं सिद्धिं देहि देहि स्वाहा"।

शक्ति ने वाममंत्र का लिंगोपरि सप्तावृति से जप किया। पुरूष भूरि प्रसन्नता से आर्द्र पद्म मण्डल का दर्शन किया। वह स्वयं विश्वरूप तथा उसकी आत्मा शिव में स्थापित हो गयी। कामाक्षी – कामाक्षी नहीं रही, महायोनिमयी पार्वती के प्रत्यक्ष और निर्विकार साररूप को ग्रहण कर स्वयं कामरूप पीठ की अधिष्ठात्री बन चुकी थी।

पुरूष ने प्रकृति के मृदुपल्लवों का विस्फार कर रन्ध्रालय में गजतुण्ड मुद्रा से प्रवेश किया। धर्माधर्म रूप यज्ञकाष्ठ समिधा में आत्मा की रूपिणी अग्नि उद्दीप्त हुई। मन का रूपी स्त्रुवा कामनारूपी हवि की आहुति देने के लिए तत्पर हो गया। साधक के नाभि चक्र से अक्षर प्रणव का चैतन्य हव्यवाहन की ज्ञानाग्नि जैसे प्रज्ज्वलित हुई, पुरुष को सुषम्ना के मुख विकसन का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ।

पुरूष ने सुषम्ना के विकच द्वार पर स्त्रुवा से अक्षवृत्ति की आहुति दी, ज्ञानाग्नि प्रखर हुई, सुषम्ना में वसित जन्मजन्मान्तर के संस्कार और वृत्तियां प्रकट होने लगी।

मत्स्येन्द्र ने पंच परमानन्दों मे प्रथम परमानन्द[1], द्वितीय, प्रबोध[2], तृतीय चिदुदय[3], चतुर्थ, प्रकाश[4], पंचम सोऽम्[5] आनन्दों को प्रकट होते देखा फिर पंचमहातत्व[6] और उनके अंशभूत तत्व, अन्तःकरण के वरुण-धर्म[7], कुल पंचक[8], व्यक्ताख्य शक्ति के गुण एवं प्रत्यक्षकारी गुणों को प्रदुर्भूत देखा फिर ज्ञानाग्नि में उनकी आहूति का दर्शन भी किया।

इन आहुतियों के पश्चात मत्स्येन्द्र ने अव्यक्त परमतत्व की पंचशक्तियां और प्रत्येक के पंच-पंच गुणो का प्रादुर्भाव देखा, तत्पश्चात पंचपद और उनके गुणों का भी प्रकटीकरण हुआ।

अव्यक्तपरमतत्व की पंचशक्तियां और उनके गुण

1. निजा

1. निराकृतित्व, 2. नित्यत्व, 3. निरन्तरत्व, 4. निष्पन्दत्व, 5. निरुत्थत्व

2. परा

1. अस्तित्व, 2. अप्रेमयत्व, 3. अभिन्नत्व, 4. अनन्तत्व, 5. अव्यक्तत्व

3. अपरा

1. स्फुरन्ता, 2. स्फारता, 3. स्फुरता, 4. स्फोटता, 5. स्फूर्ति

4. सूक्ष्मा

1. नैरन्तर्य, 2. वैरंश्य, 3. नैश्चल्य, 4. निश्चयत्व, 5. निर्विकल्पत्व

5. कुण्डली

1. पूर्णत्व, 2. प्रतिबिम्बत्व, 3. प्रकृतिरूपत्व, 4. प्रत्यङ्मुख, 5. औच्चल्य

पंचपद और उनके गुण-

1. अपर

1. अकलत्व, 2. असशंयत्व, 3. अनुमतत्व, 4. अन्यपारता, 5. अमरत्व

2. पर

1. निष्कल, 2. अलोल, 3. असंख्येन, 4. अक्षय, 5. अभिन्न

3. शून्य

1. नीलता, 2. पूर्णता, 3. मूर्च्छा, 4. उन्मनी, 5. लयता

4. निरंजन

1. सहज, 2. सामरस्य, 3. सत्यत्व, 4. सावधानता, 5. सर्वगत्व

5. परमात्मपद

1. अभयत्व, 2. अभेद्यत्व, 3. अच्छेद्य, 4. अनाश्य, 5. अशोष्य।

(सिद्ध-सिद्धान्त संग्रह)

महालिंग रूपी सुमेरु पर्वत ने सत्यासत्य के विपुल बल से रजसागर में महा मंथन प्रारम्भ किया। रजरत्नाकर से विविध रत्नादि पदार्थ, अमृतादि पेयों का प्रादुर्भव हुआ। शिव की वर्तुली पिण्ड सत्ता ने रज के कूलंकषापर्पाल से रससार ग्रहण कर रेतस् सहचर के रूप में प्राणवायु के आघात से सुषम्ना मार्ग संचारित हो अनेक चक्र और उनके आधीशों से साक्षात कर विभिन्न सिद्धियों को उपेक्षित कर सहस्त्रदलीय महागार में प्रवेश कर निष्कल शिव को एवं शिवा को उनके जागृति तत्व रज और रेतस् से अभिशक्त कर उन्हे पूर्ण चैतन्यता प्रदान की। शिव और शिवा महायुग्मावस्था को प्राप्त हो एकाकार हो गए। देह के समस्त तत्व

प्राणादि उस ऐक्य मे लय होते ही निरंजनी सत्ता का उदय हुआ और निर्विकल्पता के महाशून्य में 'कुल' लय हो गया!

निम्नोक्त सभी विवरण 'सिद्ध-सिद्धान्त संग्रह' से

1. परमानन्द के गुण - उदय, उल्लास, अवभास, विकासन, प्रभा।
2. प्रबोध के गुण - निष्पंद, हर्ष, उन्माद, स्पन्द, नित्यसुख।
3. चिदुदय के गुण - सद्भाव, विचार, कर्तृत्व, ज्ञानृत्व, स्वातन्त्र्य।
4. प्रकाश के गुण - निर्विकार, निष्फलत्व, सद्बोध, समता, विश्रान्ति।
5. सोऽम् के गुण - अहंता, खण्डितैश्वर्य, स्वानुभूति, साम्यर्थ्य, सर्वज्ञता।
6. पंचमहातत्व और उनके अंशभूत गुण-
   1. पृथ्वी-अस्थि, त्वक्, मांस, लोम, नाड़ी
   2. जल- लाला, मूत्र, अस्टक्, स्वेद, शुक्र
   3. अग्नि - क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा, कान्ति
   4. वायु - धावन, चलन, रोधन, प्रसारण, आकुंचन
   5. आकाश - राग, द्वेष, भय, लज्जा, मोह।
7. अन्तःकरण के पंच धर्म-गुण
   1. मन - संकल्प, विकल्प, जड़ता, मूर्च्छना, मनन
   2. बुद्धि - विवेक, वैराग्य, परा, प्रशान्ति, क्षमा
   3. अहंकार - मान, ममता, सुख, दुःख, मोह
   4. चित्त - मति, धृति, संस्मृति, उत्कृति, स्वीकार
   5 चैतन्य - विमर्ष, हर्ष, धैर्य, चिन्तन, निःस्पृहता
8. सत्व - दया, धर्म, क्रिया, भक्ति, श्रद्धा
   रज - दान, भोग, श्रृंगार, स्वार्थ, ग्रहण
   तम - मोह, प्रमाद, निद्रा, हिंसा, क्रूरता
   काल - विवाद, कलह, शोक, बन्ध, वचन
   जीव - जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्य, तुरीयातीत

गोरक्षनाथ! यौवन के आदित्य! हठयोग के पर्यायाचार्य। उत्तर के प्राचीन सोलह राज्यों में तथा पश्चिम में भी उनके हठयोग 'अलखनिरंजन' का नाद गूंज उठा था। अवन्ती राज भृतहरि त्रियामोह तथा राजसी सत्ता के भौतिकी सुख का पूर्ण परित्याग कर उनके अनुगत हो चुके थे। अनेक राज्याधीशों, सांमत, श्रेष्ठों तथा हीनवर्ग के जन भी उनके शिष्यत्व को प्राप्त कर योगमार्ग स्वीकृत कर चुके थे! गोरक्ष का नाथ संगठन बृहद रूप ले चुका था। वे जन सामान्य से कहते–

–"शिव–शिवा देह में ही निवास करते हैं। मानव देह में ही परा, अपरा, सूक्ष्मा और कुलकमलनी कुण्डलनी का निवास है। स्वयं से पृथक किसी नारी में शक्ति का सन्धान न करो। उसके भगमुख में हुए देहपात से जगत नष्ट हो रहा है, उस भग राक्षसी से बचो, अपनी रक्षा हठयोग से कर ऊर्ध्व रेतस् बनो।" अन्य स्थान पर वे कहते थे–

"ब्रह्माण्यवर्ति यन् किञ्चित्,
तत पिण्डेऽप्यस्ति सर्वथा।"

वे कहते जो ब्रह्माण्ड में है। वह सभी पिण्ड में है। मानव देह एक पिण्ड रचना है प्रत्येक अणु में पिण्ड है और असंख्य पिण्डों से विनिर्मित नृदेह भी पिण्ड है। इस पिण्ड में अनेक ब्रह्माण्ड हैं। इसी में शक्ति पीठ, तीर्थ, देवता, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, उरग, भूत–प्रेत, पिशाच, महाश्मशान आदि भी स्थित हैं। शक्ति की उपासना के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं है क्योंकि पिण्ड–पिण्ड में, अणु–परमाणु में यह शक्ति विद्यमान है।"

गोरक्ष पाषण्डादि प्रहार करते, कहते लोक में मूर्खता का अन्धाच्छादन हो रहा है। कोई शुभाशुभ कर्मों के अनुष्ठानों से मोक्ष की आशा करता है, कोई वेद पाठ से मोक्षार्थी है तो कोई निरालम्बन को मान कर मोक्ष प्राप्ति का उद्योग करता है। कोई–कोई ध्यान कला–करण सम्बद्ध प्रयोग से समुत्पन्न रूप बिन्दु–नाद, चैतन्य–पिण्ड–आकाश को मोक्ष से पारिभाषित करता है तो कोई मांस, मद्य, पूजा–पूजन सुरनादि से उत्पन्न आनन्द को मोक्ष के रूप में मान्यता देता है, कोई मूलकन्द से उल्लसित कुण्डलनी के संचार को मोक्ष के रूप में कथन करता है तो कोई–कोई समदृष्टि निपात को ही मोक्ष कह कर संतुष्ट है। यह सब मोक्ष नहीं भ्रम है। सहज समाधि के माध्यम से मन ही मन का लक्ष्य साधता है, देखता है, तब इस दृष्टि दर्शन से जो अवस्था उत्पन्न होती है वस्तुतः वही मोक्ष है।"[1]

हठयोग को पारिभाषित करते हुए गोरक्ष कहते थे–

–"'ह'कार अर्थात् सूर्य और सूर्य से आशय प्राणवायु अथवा परमात्मा। 'उ'कार अर्थात् चन्द्र और चन्द्र से आशय अपानवायु अथवा आत्मा। आत्मा और परमात्मा का मिलन अथवा प्राणवायु और अपानवायु का निरोध ही हठयोग है।"[2]

अर्द्ध रात्रि के पूर्व का समय था। श्यामविस्तारी गगनाम्बर से नीहारिकाएं योगी की उपेक्षित सिद्धियों की भांति टंगी हुई थी! नगर के वाह्य प्रदेश में महायोगी गोरक्षनाथ अपने दोनों शिष्यों के सहित ज्वलित धूनिका पीठ पर बैठे थे! महालंग कह रहा था–

–"गुरुदेव, अब तो यवन भी हठयोगानुयायी होते जा रहे हैं। क्रूर यवनों से सुरक्षा के हेतु गृहस्थजन संगठित हो रहे हैं। नाथ पंथ में भी विस्तार हो गया है भगवन्! अब हमारी भविष्यत योजनाएं क्या हैं प्रभो।"

–"महालंग अभी तो प्रारम्भ ही है। उत्तर में नाथपंथ विस्तीर्ण हुआ है, पूर्व में भी कुछ प्रभाव वर्द्धन हो रहा है। पश्चिम का मेरूदेश भी नाथपंथी साधनाओं को मान रहा है–अब शेष रहा दक्षिण। इसी आशय से मैं गोदावरी के तट पर धार्मिक महोत्सव में भाग लेने हेतु आया हूँ। कल पूर्णिमा से यह महा–उत्सव प्रारम्भ होगा। इस उत्सव में तांत्रिक, मांत्रिक, वामाचारी, पाशुपत, बौद्ध, ब्राह्मण धर्म के पालक भागवत, वैष्णव, जैन, कालचक्रयानी, वज्रयानी, शाक्त, शैव, गुह्य समाजी गाणपत्य, सौर, दैव्योपासक, कापालिक, कालामुख, लकुलीश आदि सम्प्रदाय के सिद्ध–शीर्ष पुरूषों का आगमन हुआ है। यही वह अवसर है जब हम इन सभी को अपनी क्रिया सिद्धि और ज्ञान से परास्त कर सके तो चतुर्दिक्न्त नाथ का श्रृंगी नाद गूंजने लगेगा।" गोरक्षनाथ ने अपने प्रिय शिष्य महालंग को अपनी योजना से अवगत कराया।

–"भगवन् इस प्रयोजन सिद्धि के हित सिद्ध नाथों का समुदाय आवश्यक है।" लंग ने अपना मत व्यक्त किया।

–"सिद्धि प्राप्त नाथों का समुदाय भी इस उत्सव में है लंग। वह सुसिद्ध वर्ग हमारी प्रतीक्षा कर रहा है। अवसर पाने पर हम उनसे सहायता प्राप्त कर सकेगें।" गोरक्ष ने उत्तर दिया फिर मौन हो और नेत्र बन्द कर कुछ चिंतन करने लगे।

–"बन्धु लंग, नाथगुरो के उद्दीप्त आननमण्डल पर आज चिन्ता का अनुलेपन देख रहा हूँ।" महालंग ने विचारते हुए कहा–

–"हाँ मुझे भी यही प्रतीत होता है नाथ।" लंग ने चिन्तित स्वर में कहा–

गोरक्ष की स्मृति में एक वर्ष पूर्व का घटन मूर्त हो रहा था। उस रात वह निशीथ काल में वकुल तरु के नीचे बैठे हुए थे। अकस्मात् उन्हे प्रत्याभाप हुआ जैसे कोई छाया उनके शिरोदेश के ऊर्ध्व में अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन करती वायसंतार कर उन्हें चुनौती दे रही है। उन्होंने अपनी पादुका अभिमंत्रित कर उसे ऊर्ध्व देश में फेंका। कुछ क्षणों में ही कापालिक कण्हपा वकुल शाखाओं के मध्य से अपने देह को संकीर्ण किए हुए उनके आसन के सम्मुख आ गिरे।

कण्हपा ने स्थिर होकर सव्यंग कहा था–"गोरक्ष, सिद्धियों का ऐसा दम्भ? अपने गुरु मत्स्येन्द्र के विषय में भी ज्ञात है अथवा नहीं?"

गोरक्ष उनकी व्यंग गिरा को श्रवण कर कुपित हुए और प्रत्युत्तर में सव्यंग ही मुखरित हुए–"कण्हपा अपने स्वयं के गुरु का ज्ञान है तुम्हें? इस काल में वे कहाँ किस व्याधि में कारित हो कष्ट भोग रहे हैं?"

"बताओ कहाँ हैं गुरुवर?" कण्हपा का प्रश्न था।

"अपनी साधना और सिद्धियों से संधान करना। आकाशचारी योगिनियों को प्रेषित करना। अगर तुम्हारी सिद्धियां और शिष्याएं प्रभु जालन्धरनाथ का सन्धान न प्राप्त सकें तो मैं उनकी देश उपस्थिति से तुम्हें अवगत करूंगा।" गोरक्ष ने कहा और तुम मत्स्येन्द्र विभु का सन्धान न पा सको तो एक वर्ष पश्चात गोदावीर कूल पर महोत्सव के अवसर पर मैं उनके देशकाल के निवास का कथन करूंगा।

गोरक्ष बहुविधि से अपने गुरुवर्य का गहन सन्धान करते रहे। सघन आह्वान में उनका सूक्ष्म प्रकटीकरण तो अवश्य होता पर वे स्थूलतः किस देश में निवास कर तपश्चर्या रत हैं? नहीं कहते। गोरक्ष की चेतना भी अनेकों बार आकाश मार्ग में भ्रमण कर संधानरत रही पर उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। अन्ततः गोदावरी महोत्सव समीप आ गया।

–"अरे जोगी जनों! यह यौवन का मूर्तादित्य, पुरूषों में सर्वश्रेष्ठ, और काहलियों[3] की कासृति[4] में कामेच्छा की जागृति का हेतु यह नायक किसका प्रियंकर हैं?" अशिञ्जित[5] ध्वनन् के मध्य, सुरा के पान से उत्पन्न स्खलित वाणी सुनकर लंग, महालंग ने दृष्टि खोल कर देखा।

धूनी के समीप अतिसुन्दरी युवती सुरोन्माद में झूमती खड़ी थी। प्रमुक्त, नितम्ब प्रसारित घन मेचक कुन्तलराशि, पीनोत्तुग उरोभू[6] मण्डल, उन पर पारदर्शी अंशुक पट्ट का लघु उरस्त्राण[7], उरसिज[8] परिसर में झूलित स्वर्ण उरःसूत्रिका[9] जिसमें रत्नादि खचित थे, युवती के पारिधानेय पट्ट भी अस्त-व्यस्त थे जिस पर सघन जघन क्षेत्र के उपरिदेश में सद्यस्खलित वीर्य के धब्बे-दाग स्पष्ट दर्शन दे रहे थे। संभवतः वह कुछ समय पूर्व ही पुरूष समागम को भोग कर आई थी!

–"तू कौन है माई? इस निशाकाल में भूकेशा[10] की भांति क्यों भटक रही है? जा, अर्द्धरात्रि का समय है, अपने स्थान को प्रस्थान कर।" महालंग ने शान्तचित्त हो युवती से गमन की प्रार्थना की!

–"जोगी..............। मैं कुलीना हूँ। श्रेष्ठ कुल की तनुजा और सभ्रान्त कुल की भार्या हूँ। मैं साधना के हेतु इस श्मशान में कापालिक कलम्पा के समीप गई थी। ऊ...........हु..........निर्वीय कापालिक! अरे जोगी, वह कापालिक के वेष में कापुरुष है। उसने भषक[11] की भांति मेरे कनक गात्र के यौवतांगों का चूषण-चाटन किया, कामाग्नि के उद्दीपन से स्त्रिवत मेरे प्रस्वेदित[12] तनु से भी परिरम्भण[13] किया पर............पर.......जोगी, वह मेरी रूपराशि और कामकान्ति को सह न सका। वह नपुंष मेरे रजस्रावण कुण्ड का स्पर्श किए बिना ही रेतस् पात कर मृत्वत हो गया। अमर्ष से मैंने उसके वक्ष पर पादाघात किया और अपनी कामवुक्षा के शान्तयर्थानुष्ठान हेतु इस ओर आ गई। यहाँ इस यौवन निवृत नायक के दर्शन मात्र से ही मेरे युवा यौवन की कामनाएं और भी अधिक भूयस्त्व को प्राप्त हो गई। अतः मैं इस योगी से भोगानुष्ठान कर अपने अभीष्ट को प्राप्त करूंगी। कामार्थिनी युवती ने अपने परिधान को उरु क्षेत्र तक कर्षित कर ऊर्ध्वगत किया और ध्यानस्थ गोरक्ष के अंक में जा गिरी! लंग और महालंग दोनों ही भय से व्याप्त हो, उसकी अश्लीलता पर जडवत् हो गए!

युवती ने कामातुर हो गोरक्ष के अधरों का चुम्बन किया, उनकी तद्रा भंग हुई, नेत्र खुले तो देखा दिव्य कामनी की भास्वती काया उनके क्रोड परिसर में पड़ी क्रियाशील थी! गोरक्ष के मन में श्रद्धा, नेत्रों में सम्मान और हृदय में पूर्ण पवित्रता का अक्षय वास था-

–"माता, अपने पुत्र की परीक्षा ले रही है? भद्रिलवती-भगवती, तेरा यह पुत्र योगी है। योगी भोगी नहीं माता।" गोरक्ष ने युवती को पृथक करने का नम्र प्रयास किया।

–"पुरूष मात्र पुरूष है नायक। भोगी और योगी से मुझे क्या प्रयोजन? और मैं तो साक्षात त्रिपुरसुन्दरी हूँ नायक। मैं मुक्ति भुक्ति की प्रदात्री हूँ। प्रमाण, विपर्यय (मिथ्याज्ञान) विकल्प निद्रा, स्मृति वृत्तियां राग, द्वेष और मोह से अनुविद्ध होती हैं योगी। इसलिए यह क्लेशकर है। अभ्यास और वैराग्य से इनका निरोध न करके मेरे कामतीर्थ के कुण्ड में इनका तर्पण कर मुक्त हो जा। योनि के महाक्षेत्र में जपा और बन्धूक पुष्पों के समान आरक्त (लाल) रज निवास करता है। तू इस रज के साथ रेत् का योग कर। ऐसा तेरा योगशास्त्र भी कहता है।[1*] तू मुझे अपनी योगिनी बना और इस रज योग अथवा राजयोग का आलम्बन प्राप्त कर अणमादि सिद्धियों को प्राप्त कर।" बोलते-बोलते युवती का प्रश्वास तीव्र हो गया। उसके मदघूर्णित नेत्रों मे महोन्माद राग और अधिक होने से नेत्र बोझिल होने लगे। सुरा के मत्त में चूर वह रति-आकांक्षिणी गोरक्ष से लतावत आलिंगित हुई!

–"अर्थ का अनर्थ न कर माता। मेरी योगिनी मेरे अन्तःकरण में ही निवासित है। तू जिस रज की व्याख्यातेयी है वह रज रक्त के रूप में प्रत्येक नृपिण्ड में है। शुक्र रज का ही साररूप है। मैं उसी साररूप रेत को ऊर्ध्व कर ब्रह्मयोनि में आहूत करता हूँ। प्राणापान ही शिव-शक्ति है और यह दोनों ही वायु मुझमें स्थित है, इसलिए मैं ही शक्ति हूँ और मैं ही शिव।" गोरक्ष निर्विकार थे। कामांगनी निरन्तर उनके अंगों से क्रीडा कर रही थी।

–"प्रपंची न बन पुरूष। यह शुष्क दर्शन है। वनिता के संग विहार ही महासुख है, सुरतार्थिनी के अधरामृत का पान ही परमसुख है, कामिनी की यौवनचन्द्रिका से प्रस्त्रावित सोम पान ही महापान है और रतिक्रीड़ांगन में विचरण ही परम-श्रेष्ठ कर्म है। अतः तू मेरी कार्माभत्ति का मोदस्पर्श कर। हठयोगी गोरक्षनाथ की भांति स्थिर और हठी न बन।" कामाग्नि में दग्ध युवती ने अपने ऊष्ण देह का संभार गोरक्ष पर आरोहित कर दिया।

–"ले......देख तो.........। तू और मैं समानवर्ती पदार्थ है। बता, अब किससे भोग करे। हम दोनों ही नारी पदार्थ हैं।" अकस्मात् गोरक्ष का कण्ठ स्वर परिवर्तित हुआ उनके स्वर में नारित्वजन्य स्वर का मिष्ठ था।

युवती ही नहीं, दोनों शिष्य भी चमत्कृत थे। गोरक्ष के स्थान पर एक अत्यन्त सुन्दरी, लावण्यावयवी वनिता के उत्संग में वह युवती पडी थी। उसने पुनः पुनः अपने नेत्रों को उन्मीलित लिया, फिर गोरक्ष के स्थान पर प्रकटित

युवती के मृदुल अंगों का पुनः पुनः स्पर्श किया। अन्ततः वह जैसे पराजित हुई।

—"गोरक्ष.......तुम धन्य हो.......। महायोगी तुम्हारा संयम, बल और तितिक्षा अद्‌भुत है।" समीपस्थ गुल्मों से प्रकट होकर दो तरुणियां धूनी के समीप बोली!

—"योगीराट् अब अपने निजरूप को ग्रहण करे।" दोनों रूपसियों ने वचनोच्चार किया। एक क्षण में ही उन्हें सुन्दरी के आसन पर गोरक्ष आसनासीन दिखाए दिए।

—"माता छिन्नमस्ता की चिद्रूपिणी। कनखलापा और मेखलापा माताओं बताओं तो यह नाट्य मंचन क्यों किया। इस ममत्व से परिपूर्ण माता में रति वांक्षा प्रकट कर अपने पुत्र का परीक्षा ले रही हो क्या?" गोरक्ष ने सस्मित कहते हुए नेत्रविस्फारिता अपने अंकस्थ युवती को उठाया। युवती के नेत्रों में अश्रु थे। उसने मातृस्नेहाधिक्य से गोरक्ष को अपने वक्ष से लगाया और वात्सल्य भाव से बोली–

—"पुत्र, सदा संयमी रह! मैं स्वयं छिन्नमस्ता ही हूँ। मैं अपने भक्तों की तुष्टि हेतु ही तेरे समीपवर्ती हुई। अन्य कोई स्त्री तेरी योगग्नि में दग्ध हो दाह हो जाती रे। बावले अपने सिद्धातों में अपनी माता के मूलरूप को भी स्मृत नहीं रखा।" गोरक्ष अपनी त्रुटि पर दुःखी हो 'माँ' के श्रीचरणों में काष्ठवत गिर गए। छिन्नमस्ता का चिर शाश्वत स्वरूप प्रकट हुआ!

प्रत्यालीढपद, छिन्न शिर, कबन्धों के मध्य शिर स्थान से उबलती रक्त की त्रिधाराएं। प्रथम मध्य शोणित धारा स्वयं के हस्तस्थित शिर के मुक्त विकच मुख से गिर रही थी तो दक्षिण वाम दो शोणित धाराएं माँ के दक्षिण-वाम खड़ी मुण्डमालिनी वर्णिनी और डाकिनी सखियों के मुख में गिर कर लोप हो रही थी।

गोरक्ष कृत्कृत्य हो गए–"माँ मोक्षदा वर्षाधिक हुआ, मैं व्यथित हूँ। गुरुदेव की अनुपस्थिति के कारण स्वयं को असहाय मान रहा हूँ। अब पंथ विकसित और बृहद् हो गया है-इसके संचालन के हेतु उनकी शक्ति और वर दोनों ही आवश्यक हैं। लोक में वादापवाद छाया हुआ है। कौल साधना के उपदेशक के रूप मे ख्यात मेरे दिव्य गुरुवर्य जब तक जागत को कौल साधना का अन्तः मर्म नाथपंथ को प्रमाणित नहीं देते अपवाद से मुक्ति संभव नहीं।"

—"मेरे प्रिय पुत्र! अवसाद त्रस्त न हो। कण्हपा को ज्ञात है, वही कौलगुरु की उपस्थिति विषयक ज्ञान होगा। यद्यपि मुझे ज्ञात है, पर कण्हपा भी मेरा ही प्रतिरूप है। वह भी तो अपने गुरु के संधान में रत है। यही लोक मर्यादा भी है।"

लंग और महालंग ने भगवती माता छिन्नमस्ता को प्रणाम किया। उन्हें भी अपना आशीष प्रदान कर दैव्या का आलोकमय दर्शन लुप्त हो गया। इस मध्य कनखला और मेखला भी अपने स्थान को प्रस्थान कर गई।

---

1. "अमरौधशासनम्" में कथ्य।
2. हकारः कथितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्यचन्द्रमसोर्योणात् हठयोगो निगद्यते।। –"सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति"
3. युवतियाँ
4. गुप्तमार्ग
5. गहनो की झनझनाहट, झन्कार
6. स्तन
7. स्तनों का कवचन
8. दोनों स्तनों के मध्य का क्षेत्र
9. हार
10. राक्षसी
11. कुत्ता (पशु)
12. पसीने से तर बतर अथवा गर्म
13. आलिंगन करने की क्रिया
14. योनिमध्ये महाक्षेत्रे जपावन्धूकन्निभम्।
रजो वसति जन्तुनां देवीतत्त्वं समावृतम्।।
रजसो रेतसो योगाद्राजयोग इति स्मृतः।
अणिमादि पदं प्राप्य राते राजयोगतः।। –"योगशिखोपनिषत्"

मेखला और कनखला ने सकल घटित प्रसंग अपने गुरुदेव कण्हपा को सुनाया। श्रवण कर कण्हपा कुछ चिंतित हुए और कुछ प्रसन्न भी। गोरक्ष के दिव्य भाव पर उनका मन श्रद्धा से ओत-प्रोत हुआ। उनके मनस् में चिंतन हुआ-दोनों ही गुरु किस लीला का पारण कर रहे हैं? क्या वे अपने शिष्य-प्रशिष्यों की दक्षता और सुसिद्धता का परीक्षण कर रहे हैं? उन्होंने भी अपने सर्व साधनों से अपने गुरु कपाल पालक श्री जालन्धर के संधान के बहुप्रयास किए, किन्तु साफल्य हस्तगत नहीं हुआ! वे प्रातःकाल होने की प्रतीक्षा करने लगे।

गोदावरी के तट पर विशाल धर्मोत्सव में हर स्थान पर अपने विशिष्ट चिह्नों से चिह्नित एवं वेषधारी योगीजनों का समुदाय विचरण करता हुआ जन सामान्य को दृष्टिगोचर हुआ। इतनी अपरिमित संख्या में कनफटे नाथ कहाँ से प्रकट हो गए? इन नाथ योगियों के मध्य गोरक्षनाथ कहाँ? कैसे हैं? किस अवस्था में हैं? वह लोकनायक जिसकी सिद्धियां और चमत्कार लोक मे व्याप्त हैं, वह जो श्रुतियों और लोकगाथाओं का नायक बनता जा रहा है। कहाँ है वह गोरखनाथ?

नाथों के हाथों में किंकरी, सिर पर जटाएं, कर्णों मे मृतिका एवं धातु, आदि की मुद्रा (कुण्डल) देह में भस्मानुलेपन, कटि में मूंजमेखला आदि से सज्जित नाथ-श्रृंगी, सुमिरिणी, सेली, गूदरी, खप्पर, बघम्बर, झोली आदि के धारक नाथों ने एक विस्तारित चत्वाल स्थल पर अपना डेरा डाला।

नाथयोगियों ने कुछ समय में ही मंच का निर्माण कर लिया। धूनियां बन गई, मल्लयुद्ध और शस्त्र संचालन अभ्यासी स्थल भी निर्मित हो गया। नाथ योगी योगाभ्यास की विविध क्रियाएं, मल्लयुद्धाभ्यास आदि के करतब करने लगे। परिसर सीमा के बाहर जनसम्मर्द उन्हें चकित दृष्टि से देख रहा था। धर्माचारियों के प्रेक्षागार रिक्त होने लगे, उनसे जनसमुदाय परागंमुखी हो नाथों की ओर एकत्रित होने लगा।

नाथ, सिद्ध विविध चमत्कारों का प्रदर्शन कर रहे थे। कोई विभूति (भभूति भस्म) को शून्य से प्रकट कर पाषाण पुष्प अथवा पदार्थों में परिवर्तित करता तो कोई-कोई रज्जू से नाग निर्माण तो कोई अग्निपान, अंगार भक्षण और आंतरिक्ष में स्थापित हो आसन लगाता!

अकस्मात जनसमुदाय में कोलाहल हुआ-"गोरक्ष आया, गोरख आया" के गगन गूंज स्वरों से धरित्री कम्पित होने लगी। जन-जन लोक नायक के दर्शन हेतु लालायित था।

गोरक्ष जैसे प्रकट हुए। किशोर युवक की भांति वय, भस्ममण्डित गौर तन, जैसे भस्मराशि में दीप्ति अर्चिस पिण्ड हो! उनके रूप लावण्य का दर्शन कर तरुणियों के सुकोमल हृदयों में तीव्रस्पंदन होने लगा। युवकों मे द्वेष उभरा, वृद्धों के मुख से शुभाशीषों की कृपावर्षण हुआ।

युवतियों ने कहा-'यही मेरा कान्त बने, मुग्धाओं ने स्पृहा की-"यही मेरे सेज सुख का कारण बने, प्रोढाओं ने कहा ऐसे गुण और यौवन से सज्जित पुरूष कामनियों को प्रशान्ति प्रदान कर स्वयं के समान तेजस्वी पुत्रों से धरित्री को गौरवन्वित करे।

गोरक्ष उच्चासन पर आसीन हो बोले-

-"तुम सब नाथ हो, क्योंकि श्रेष्ठ हो। श्रेष्ठ समाज का निर्माण करो, बिन्दु को साधो बिन्दु साधन से ही प्राण और मन का चांचल्य समाप्त होता है, यही निरंजन प्राप्ति का उत्स है और यही अमरत्व प्राप्ति का श्रेष्ठाधार पर इसके साथ ही हम नाद की विस्मृति नहीं करें। यद्यपि नाद नाद तो अनेक जपते हैं, सुनते है, पर नाद को बिरले पुरूष ही जान पाते हैं-

नाद नाद सब कोई कहै, नादहि ले को बिरला रहै।
नादबिन्द है फीकी सिला, जिमि साध्या ते सिधै मिला।।

बिन्दु का साधन ब्रह्मचर्यहीन अवस्था में संभव नही और बिना बिन्दु के अनहद नाद निरंजन भी नही। जो बिन्दुवान है वही सिद्ध है। ऐसे साधक की सेवा माँ पार्वती करती है, वही उसे पालित पोषित करती है-

धन जोवन की करै न आस
चित्त न राखे कामिनि पास।
नादबिन्द जाकै घटि जरै
ताकि सेवा पार्वती करै।।

मद्य, मांस भांग, धतूरा आदि पदार्थों का सेवन अनुचित है। परनिन्दा और नशा ये नरक के हेतु हैं, इनका समूल परित्याग करो-

जोगी होई पन निन्दा झषै।
मद मांस अरु भांग जो भषै।
इकोतर सै पुरिषा नरकहि जाई।
सति सति भाषत श्री गोरष राई।

कठोर ब्रह्मचर्य को पालो, वाक् संयम से रहो, कायक-मानस को शौच और युद्ध रखो, ज्ञान के प्रति निष्ठावान बनो, पाषण्ड के फेर मे न पड़कर निरंजन का ध्यान करो।"

अकस्मात् जनसमुदाय में पुनः कोलाहल हुआ-अनेक कण्ठों से स्वर निनादन गूंज रहा था-"कानफानाथ की जय.........। कण्हपा की जय......।"

गोरक्ष ने मञ्चासन से देखा-कण्हपा एक लघु वृक्ष की शाखा पर बैठे हैं। वृक्ष धरापथ पर चलते हुए उनकी ही ओर आ रहा है। गोरक्ष ने मंच को संबोधित कर कहा-

-"चल कापालिक कण्हपा आ रहा है...........स्वागत के लिए चल पड।" और.........जनसमुदाय आंश्चर्य से नेत्रविस्फारितावस्था में देख रहा था। मंच की धरित्री भी चल पड़ी। दोनो सिद्ध एक स्थान पर मिले-दोनों के कण्ठों से 'आदेश' ध्वनि का गुंजन हुआ! दोनों गुरु एक ही मंच पर आसीन हुए। मंच पुनः चल पड़ा और अपने पूर्व स्थान पर आ स्थिर हुआ।

"गोरक्ष तुम्हारा पंथ भीषण है, जती, गृहस्थी इस कठोर कंटकी पथानुशासन में बद्ध नहीं हो सकते।" कण्हपा ने कहा-

-"नारीरकेल बहुत कठोर होता है योगी पर आवरण हटते ही वह नम्र और सुखदायी है। कपाल और सुरा का मर्म तुम कापालिकों ने नहीं समझा। योनिचक्र और उससे प्रस्रुत अमर वारुणी के मूलभाव स्वीकार न कर उसके दृश्यपरक पदार्थों को ही सत्य मान लिया। वस्तुतः ब्रह्मरन्ध्र के सहस्रार पद्म के मूल में जो योनि संज्ञेय त्रिकोण चक्र है, वही योनि है और वही चन्द्रमा का स्थान भी। योगी खेचरी मुद्रा के द्वारा जिह्वा को उलट कर तालू देश में ले जाता है, तब योनिस्थचन्द्र से अजस्रव प्रस्रुत-झरित अमृत का पान करता है। खेचरी का आधार ताक् देश का ऊर्ध्व कपाल है और इस भांति अमृत का पान कर्ता योगी कापालिक।" गोरक्ष की वाणी में सरस्वती ही जैसे प्रकट हुई।

-"यह कठिन, कठर और दुर्गम्य है।" कहण्पा का स्वर कुछ क्षीण हुआ।

-"और आज इसी दुर्गम्य की लोक को आवश्यकता है।" गोरक्ष का स्वर दृढ़ था। जनसमुदाय गोरक्ष का जय निनाद करने लगा।

-"किन्तु गोरक्ष.............। ये सिद्धान्त सिद्ध गुरु मत्स्येन्द्र विभु के पंथ के विरुद्धवत हैं। उनकी मान्यता है-

यत्रास्ति भोगो न तु तत्र योगो तत्रास्ति मोक्षो न तु तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसाधक पुंगवानां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

कौलसाधक मंत्रपूत वास्तविक कुल द्रव्य का ही सेवन करते है, उनके प्रतीक रूपक द्रव्य-पदार्थों का नहीं! तुम्हारे गुरु भी कौल है गोरक्ष, सर्वप्रथम उनकी ही वर्जना करो, तुम्हारा पंथ तब तक योगी-यति, गृहस्थी को स्वीकार्य नहीं।"

कण्हपा की बात श्रवण कर गोरक्ष एक क्षण स्तब्ध हुए, जैसे उनकी पीड़ा पर प्रहार हुआ हो! कण्हपा की उक्ति उन्हें सत्य प्रतीत हुई-जब तक पंथ प्रवर्तक गुरु उनके पंथ को प्रमाणित नहीं करते वह लोकमान्य कैसे होगा? गोरक्ष सम्हले फिर बोले-

-"योगिन कानफा, गुरुदेव का कर्तृत्व अपने स्थान पर सत्य है। वह श्री सुन्दरी को स्वयं से पृथक स्वीकार नहीं करते।"

-"तब वे नारीराज्य कामरूप में क्यों कारित हैं गोरख? श्रीसुन्दरी उनसे पृथक नहीं तो वहाँ उनका गमन क्यों हुआ?" काण्हपा का स्वर तीव्र हुआ पर गोरक्ष को गुरु संधान प्राप्त हो गया।

-"कामरूप में मेरे श्रीगुरुवर साधनारत है योगी पर तुम्हारे गुरु तो रानी मायनावती के चरणचारी बन कर राजाज्ञा से अन्धकारा में कारावास कर रहे हैं। यह अपार कारागारी पीड़ा के मूल में नारी का वह स्वरूप ही है जिसके माध्यम से "भोगश्च, मोक्षश्च करस्थ एव" जाओ कण्हपा अपनी सिद्धियों से ज्ञान से उन वृत्तियों का उद्धार करो जो भ्रान्ति रूप में राष्ट्रव्यापी हैं।"

अनेक तर्क-विर्तक हुए, वाद-विवाद चलते रहे। उपस्थित जन सम्मर्द कभी काण्हपा के सिद्धांतों को स्वीकृत करता तो कभी गोरक्ष के सिद्ध सिद्धान्तों का जयघोष।

उत्सव एक माह तक चलता रहा पर गोरक्ष और कण्हपा को अब उससे कोई प्रयोजन शेष नहीं रहा। वे अपने-अपने प्रतिनिधियों को नियुक्त कर गुरु लक्ष्य की ओर अग्रसर हुए। कण्हपा के साथ कनखलापा, मेखलापा के अतिरिक्त उनके अनेक शिष्य भी थे, जबकि गोरक्षनाथ के साथ उनके दोनो प्रिय शिष्य महालंग और लंग।

तीनों योगियों को कदलीवन होते हुए स्त्रीराज्य में प्रवेश करना था। कदलीवन में भी स्त्रियों की ही प्रभुता थी पर वहाँ पुरूष प्रवेश निषेध न था। वहाँ जन सामान्य ब्राह्मण धर्म के प्रति श्रद्धालु और समर्पित था, अतः नागर जन ब्राह्मणों का पूजन सत्कार करता था। अतः गोरक्षनाथ तथा लंग, महालंग ने कदलीवन में ब्राह्मण वेष धारण कर प्रवेश किया।

कदलीवन में वज्रांग-भगवान के एक मन्दिर में गोरक्ष रात्रि विश्राम के हेतु रुके। मन्दिर एकान्त में था फिर भी श्रद्धालु और दर्शनार्थियों का आवागमन कम न था। सायंकाल मुहूर्त में स्वर्ण शिविका में आरूढ हो, रजसी गरिमा से मण्डित कदली देश की राजमहिषी की आगमन हुआ। वे निपुत्री थी। उन्होंने अपने देश के आराध्य और कुलपूजक भगवान हनुमान का ब्राह्मण विधानानुसार पूजन सम्पन्न कराया।

संयोगवश गोरक्ष वहाँ उपस्थित थे ही, अत्यन्त सुरूपवान ब्राह्मण का दर्शन कर तरुणियां युवतियां अति प्रसन्न तो थी ही रजमहिषी भी उनका दर्शन कर प्रसन्न हुई। गोरक्षनाथ को सत्पात्र ब्राह्मण मान, मनोहर दीप्ति की उत्स कनकोज्ज्वला, मदिराक्षी राजमहिषी ने उनके चरणों में प्रणाम किया। ब्राह्मण वेष था इसलिए आशीर्वाद भी आवश्यक था-गोरक्ष ने अपने चरण समेटते हुए कहा-"माता पुत्र का चरण स्पर्श कर, उसे अधोगामी न बना। तू अवश्य पुत्रीवती होगी। यह नहीं तेरा दक्षिण उरोज भी वामस्तन की ही भांति समुन्नत और समवर्ती हो जाएंगा।"

कदलीदेशीय महाराज्ञी चकित हुई। वह एकस्तनी है, और पुत्रकाम्य की कामना से पीडित है, यह रहस्य ब्राह्मण पर कैसे प्रकट हुआ! गोरक्ष कह रहे थे-

-"ले माई इस विभूति को अपने दक्षिणस्तन के स्थान पर मर्दित कर और शेष विभूति का जल के साथ इसी मुहूर्त में सेवन कर।"

पट्टरानी ने तत्क्षण एकान्त में जा ब्राह्मण के आदेशानुसार भस्म का सेवन किया। तत्क्षण उसे प्रत्यक्षाभाष हुआ, उसके दक्षिण स्तन में वृद्धि होती जा रही है, स्तनवृन्त समुन्नत होता जा रहा है और कुछ ही क्षणों में दक्षिणस्तन वामस्तन के समान उच्छ्रकं शोभा को प्राप्त हो गया। पट्टरानी के नेत्र आश्चर्य से विस्फारित हुए। उसने कंचुक वस्त्र अनावृत कर परीक्षण किया नवविकसित पयोधर पर हस्तचालन भी किया फिर स्तनांशुकावृत कर द्रतगति से आ गोरक्ष के चरणों में आ गिरी।

—"ब्राह्मण देव! आप राज्याथिति है, इस राज्य में सदैव निवास के आकांक्षी हो तो राज्य का उपकार होगा।" रानी ने विनय की—

गोरक्ष ने एक क्षण चिन्तन कर अपने अर्न्तयामी निरंजन से संवाद किया- उन्होंने जो निर्णय दिया उसी के अनुसार गोरक्ष बोले—"राजमाता मुझे इस देश में निवास करने की आकांक्षा नही है, मैं अपनी अभीष्ट सिद्धि के हित भ्रमण कर रहा हूँ। यद्यपि राजप्रासाद अथवा भव्यहर्म्य मुझे सुखकर नहीं, तथापि मात्र कुछ काल के लिए आपके प्रासाद में अवश्य हो सकूंगा।"

"देव प्रातःकाल में मैं रथ यहाँ प्रेषित कर दूंगी।"

—"नहीं माता..........रथारूढ़ होना मेरी वृत्ति में नहीं।"

पट्टरानी गोरक्ष को प्रणाम कर प्रासाद गमन हेतु सन्नद्ध हुई और प्रणाम कर चली गई। गोरक्ष भविष्यत योजना पर चिन्तन करने लगे।

प्रातः पुण्य बेला में ही गोरक्ष अपने शिष्यों के साथ प्रासाद की ओर अग्रसर हुए। मार्ग में उन्हें करुणाजनक दृश्य दिखाई दिया। एक सुरूपवान दर्शनीय यौवन से सज्जित युवती शोकाकुल हो विलाप कर रही थी। वह कोई अन्य नही राज्य की नृत्यपटु राजनृत्यांगना कलिंगा थी। प्रातः ही उसके एकमात्र पुत्र शिशु का आकस्मिक स्वर्गारोहण हुआ था।

"महालंग यही वह युवती है, जो हमारे कार्य साधन की उत्तम सहायिका सिद्ध होगी।" गोरक्ष ने विलापित युवती को लक्ष्य कर कहा। महालंग और लंग नहीं जान सके कि यह सुतशोकाग्नि में दग्ध स्त्री किस भांति लक्ष्य संधान-सहायिका होगी?

गोरक्ष आगे बढ़े। कलिंगा के शिशु को खड्ड-ड्ड पर आरोहन कराया जा रहा था। जनसम्मर्द के मध्य से निकल कर गोरक्ष त्यक्तप्राण शिशु के समीप पहुँचे और शवारोहण को वर्जित कर बोले—

—"ठहरो..........। शिशु मृत नही, जीवित है।" उपस्थित शोकाग्रस्त जनसकुल गोरक्ष की तेजस्विन वाणी पर चौक उठा। खड्ड-ड्ड के समीप रुदनरत कलिंगा ने भी अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों से तेजस्वी पुरूष को देखा! गोरक्ष उससे कह रहे थे—

—"माता रुदन न कर, धैर्य धारण कर। त्रिभुवन मोहिनी की रूप धारिणी होकर भी अश्रुपात करती है।"

संभवत: याज्जवीन में प्रथम वार सर्ववल्लभा कलिंगा ने स्वयं के लिए किसी वीर्यवान तेजस्वी युवक के मुख से 'माता' का सम्मान स्वर श्रवण किया! गोरक्ष ने अभिमंत्रित विभूति (भभूति) निकाल कर शिशु शव पर फूंकी!

जनसम्मर्द स्तब्ध और उत्सुक भाव से आगन्तुक ब्राह्मण के कर्तृत्व को स्तिमित नेत्रों से देख रहा था। कुछ ही क्षणों में ही.........खड्ड-ड्ड स्तमिन में शयनित स्तन्धय शिशु में स्पंदन हुआ फिर उसका रुदन स्वर उठा! कलिंगा ने तत्क्षण अपने शिशु को उठाकर वक्ष से लगा दिया! शोकाकुल समुदाय ब्राह्मण देव का जयघोष करने लगा!

गोरक्ष ने राजप्रासाद में भी चमत्कार दिखाया। रानी की विशिष्ट सेविका के अज्ञात रोगवश पयोधरों में पय सूख गया था, अत: उसका शिशु मातृ स्तन्याभाव में विकल था। गोरक्ष की अभिमंत्रित भस्म ने उसके शुष्क स्तन्य पदार्थ को स्तनों में तत्क्षण पय प्रकट किया!

इस प्रकार पट्टरानी और कलिंगा जैसे गोरक्ष की भक्त बन गई। गोरक्ष को ज्ञात था, नारी राज्य की महाराज्ञी कामाक्षी और कदलीवन की महारानी में सन्धि है। इस राज्य से नृत्य कुशला कलिंगा विशेषावसरों पर कामाक्षी एवं उनके सहचारियों के मध्य नृत्यादि के लिए जाया करती थी।

गोरक्षनाथ की इच्छाशक्ति क्रियान्वित हुई। फलस्वरूप कामाक्षी का निमंत्रण संदेश कलिंगा को प्राप्त हुआ। इस निमंत्रण में उसे अपनी नृत्यकला का प्रदर्शन हेतु नारी राज्य में जाना अपेक्षित देख गोरक्ष ने उससे कहा–

–"माता नारी राज्य की राजधानी और वहाँ के रंगपुर दर्शन की अभिलाषा है।"

–"पर देव वहाँ तो पुरूष प्रवेश निषेध है, राजमहिषी भी यहाँ त्रिया राज्य-गमन की अनुमति नहीं देगी।" कलिंगा ने विचार कर कहा–

–"मैं आपकी सहायिका का रूप धारण कर चल सकूंगा। मैं संगीत, नृत्य एवं चर्तुवाद्य[2] यंत्रों में दक्ष हूँ।" गोरक्ष ने पुन: कहा। कलिंगा धर्म संकट मे थी। उसने पट्टरानी पर अपनी दुविधा प्रकट की। कामाक्षी के सम्मुख स्त्री वेष में पुरूष गोरक्ष का रहस्य अनावृत हुआ तो नैतिकता भंग होगी और राज्यसन्धि का भी उल्लंघन होगा! गोरक्ष को वे दोनों कुपित भी नहीं करना चाहती थी।

सायंकालीन कलिंगा की नृत्य शाला में। कलिंगा उस समय नृत्याभ्यास कर

रही थी कि अत्यन्त रूपवती सुन्दरी तरूणी उसकी रंग स्थली में आगमित हुई। जैसे स्वर्ग से शचि, स्फटिकाद्रि से स्वयं पार्वती का ही अवतरण हुआ हो। युवती की स्मित शोभा उत्फुल्ल पुष्प की सुषमा थी तो यौवनमय कलेवर में शम्पाच्छटा का द्वीपन था।

आगन्तुका ने नृत्यानुमति प्राप्त कर नृत्य-रास किया तो कलिंगा भी उसकी कला पर मुग्ध हो गई। नृत्य के पश्चात उसने कलिंगा के नृत्यप्रदर्शन पर आनद्ध वाद्य वादन किया तो कलिंगा को प्रतीत हुआ कि उसके अपने जीवन में प्रथम बार उसकी नर्तन कला को वाद्याश्रय प्राप्त हुआ हो। भाव स्वयं ही प्रकट होने लगे, नृत्य की मुद्राएं जैसे साक्षात प्रकट हो गई और अंगकर्म जैसे प्रत्यक्ष हो गए।

मत्स्येन्द्र विभु की कौलसाधना पूर्ण हो रही थी। नारी राज्य में लगभग द्वादश वर्ष का समय व्यतीत होने जा रहा था। इस मध्य कामाक्षी ने मातृत्व भी धारण कर लिया था। मत्स्येन्द्र से उत्पन्न पुत्र बिन्दुनाथ की वय लगभग 10 वर्ष की हो चुकी थी। बिन्दुनाथ स्वयं में रमने वाला विलक्षण प्रज्ञा सम्पन्न बालक था! कभी-कभी उसकी क्रीड़ा के मध्य पंचनरमुण्ड प्रकट हो जाते, जिनसे वह कन्दुक क्रीडा करता। कभी क्रीड़ा के मध्य वह हस्त प्रसार कर शून्य से विविध वस्तुओं को प्रकट कर देता। मत्स्येन्द्र उसकी क्रियाओं से प्रसन्न होते!

10 वर्ष की अवस्था में भी बिन्दु की शिशु सुलभ क्रियाएं पूर्ववत थी। वह कामाक्षी के उत्संग में आ बैठता और स्तनपान का हठ करता। कामाक्षी वर्जित करती तो वह रुदन करता और उसका रुदन स्तनपान के पश्चात ही थमता।

कभी बिन्दु उछलता तो आंतरिक्ष में ही स्थिर हो जाता। माता का भीत हृदय पुत्र क्षेम के कारण विकल हो उठता। कभी एक बिन्दु के स्थान पर अनेक बिन्दु कामाक्षी के समीप होते। कामाक्षी मूल बिन्दु को नहीं पहचान पाती तो अपने पयोधरों को अनावृत कर पयपान का आमंत्रण देती। मूल बिन्दु तत्क्षण उसके क्रोड़ में आ बैठता और शेष स्वरूप अदृश्य हो जाते! कामाक्षी बिन्दु के गत जन्म से घन परिचित थी, अतः उसे उसकी किसी भी क्रिया पर कोई आश्चर्य नही होता।[3]

बिन्दुनाथ आचार्य शिपिविष्ट को बहुत छकाता तो चन्द्रमौलि को भी अपनी नित नवीन शरारतों से प्रमुदित करता। कभी एकान्त क्षणों में वह लोलापा और अनंतवज्र जो मत्स्येन्द्र आगमन के पश्चात से नारी राज्य में निवासित था, के समीप अकस्मात् प्रकट होकर उन्हे लज्जित कर देता तो कभी शिपिविष्ट और मदयन्तिका और चन्द्रमौलि-मेखला के रमणानन्द अवसर पर मूर्त होकर उन्हें भी लज्जित कर देता।

प्रत्यक्ष मे मत्स्येन्द्र उससे मोहग्रस्त थे पर वास्तव में वे उसे शुद्ध स्नेह ही प्रदान करते। एकान्त में उससे कहते-"मातंगपा सत्यानुशरण करो, एकमेव निरंजन ही सत्य है वही सर्व सर्वत्र विराजित है। कुलाचार से निरंजन सत्ता का अभिज्ञान न हो तो गोरख के हठयोग का आचरण करना।" बिन्दुनाथ प्रसन्नता से स्वीकारोक्ति का प्रदर्शन कर अपना शिर मत्स्येन्द्र के चरणों में रख देता!

शरत्पूर्णिमा का महोत्सव समीप आ गया। उस रात्रि के चन्द्रिकालोक में

षोडस शत योगिनियों के परिवृत में मत्स्येन्द्र कौलाचार साधन करते थे। इस वर्ष एक पद्म कर्णिका में कदली देशीय नृत्यांगना भी सम्मिलत थी।

प्रतीक्षित निशा आ गई। सौलह सौ योगिनियों ने अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लिया। मत्स्येन्द्र ने पारम्परिक योगिनी पूजन कर अपने साधना केन्द्र में स्थान आसन ग्रहण किया। पद्म कलिका में कलिंगा का नृत्य-आरम्भ हुआ पर प्रथम चरण में ही उसकी वाद्ययन्त्री वादिका उदरशूल से पीडित हो वाद्यवादन में असमर्थ हुई। अन्ततः कामाक्षी की अनुमति से 16 सौ परिवृतीय यंत्र में आनद्ध वादन के लिए कलिंगा की नूत्र सखि को प्रवेश दिया गया।

कामाक्षी सहित सभी योगिनियां कलिंगा की नवसखि के विस्मयकारी स्फूर्जन्य रूप यौवन की सुषमेयच्छटा का दर्शन कर चकित हो उठी। कलिंगा ने सगर्व परिचय दिया।

—"यह मेरी रूपकुशला, नृत्य प्रवीणा, आनद्ध वाद्य वाजन में पटुश्रेष्ठा सखि गोरसी है।"

मत्स्येन्द्र का अर्न्तमन सजग हुआ, उन्होंने अन्वेषक दृष्टि से गोरसी की ओर दृष्टि निक्षेप किया, उनका अन्तः मन प्रफुल्ल हुआ।

मत्स्येन्द्र साधनारत हुए। गोरसी की करथाप ने मृदंग पर आघात किया। सुमधुर अनुगूंज नाद से यंत्रमण्डल गुंजित हो उठा। कलिंगा ने नृत्य प्रारम्भ किया। उत्तरोत्तर नृत्य के भाव, कटाक्ष, अंग परिचालन, पदसंचार, चेष्टाएं और मुद्राएं रसों को ग्रहण कर मूर्तिमान होने लगे। मत्स्येन्द्र के मुख से प्रसंशा के स्वर फूट पड़े।

अकस्मात् मृदंग का वाद्यराग परिवर्तित हुआ। नाद का स्वरूप भिन्न हुआ, जैसे मृदंग नाद से प्रत्यक्ष वदन की भांति स्वरानुगूंज उठी—

"जय हो.......जय हो..........महागुरो.............जय हो........। मच्छेन्द्र के पादपद्मों में गोरक्ष उत्कर्ष करता है। जागो.....प्रभो...........जागो नाथ.........। जाग..........जाग.....मच्छेन्द्र...........जाग मच्छेन्द्र गोरख आया..........ऽ.............ऽ..........." मत्स्येन्द्र की तंद्रा खण्डित हुई, कामाक्षी चौकी। मत्स्येन्द्र ने अनुगूंज को पुनः श्रवण किया और पूर्ण ग्राह्य कर तत्क्षण उठे। वे त्वरा से अग्रसर हुए और गोरसी को अपने वक्ष से लगा लिया। अत्यन्त स्नेह से गोरसी के सिर पर हस्त प्रचालन कर मत्स्येन्द्र अश्रुपात करते हुए आवरुद्ध-वाष्पित कण्ठ से बोले—

—"मेरे वात्सल्य भाजन, पुत्र गोरक्ष..........।"

गोरसी के रूप मे गोरक्ष अपने धारासम्पाती अश्रुनीर से मत्स्येन्द्र के चरणों का अभिशेष करते शिशु की भांति भावातिरेक से रुदन कर उठे।

कामाक्षी चकित थी, योगिनिया चकित थी, कलिंगा चकित थी। नृत्य विरामित हो गया। मत्स्येन्द्र प्रभु नारी को पुत्र कह रहे हैं, गोरक्ष की संज्ञा से अभिहित कर रहे हैं। कौन गोरक्ष? क्या वही लोकविश्रुत गोरख जो हठयोगी है, योनि उपासना का कटुविरोधी है? पर वह गोरख तो पुरूष है?

"गुरुदेव जगत जल रहा है, पंथ पिछड रहा है, नाथयोग हठयोग में अपवाद के घूर्मणचक्र में विबद्धित है प्रभो! त्राहि माम् गुरो.........त्राहि माम्...........।" गोरक्ष का कातर स्वर था।

—"इतना वैकल्य क्यों गोरक्ष?" मत्स्येन्द्र का प्रश्न था।

—"आपका आचार पंथ विरूद्धी है। हे प्रभो! इस हेतु लोक नाथपंथ की मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न लगा कर लांक्षित कर रहा है। इस यौनाचार से मुक्त हो प्रभो। नाथपंथ का मार्ग प्रशस्त करो प्रभो।"

—"यह यौनाचार नहीं गोरख" मत्स्येन्द्र ने वर्जन किया।

—"यद्यपि यह दिव्य-कुलाचार है प्रभु, पर लोक इसे ज्ञानाभाव में मुक्त यौनाचार ही मानता है।"

—"तो मानता रहे। मैं लज्जादि अष्टपाशों से मुक्त हूँ-लोक से मुझे क्या प्रयोजन?" संभवतः गोरक्ष का परीक्षण कर रहे थे मत्स्यप्रभु।

गोरक्ष अत्यधिक व्यथित-विकल हुए। उनका मूलरूप पुरूष रूप स्पष्ट हुआ। कामराग में बद्ध कामनियां उनके पुरूष सौन्दर्य का दर्शन कर सीत्कार कर उठी।

—"लोक का परित्याग करो वत्स। तुम भी यही आवास करो, योनिरसावृत का पालन कर लक्ष्य साधो।" मत्स्येन्द्र प्रलोभन से अपने सत्पात्र नादपुत्र को परखा—

—"यह लक्ष्यसाधन नहीं, पतन है गुरो।" गोरक्ष का क्षुब्ध स्वर था।

—"कौलाचार पतन नही।" मत्स्येन्द्र पुनः बोले—

गोरक्ष के मन में ज्ञान विकार का स्फुरण हुआ। क्या उनके गुरु का पतन हो गया, पर वे तत्क्षण ही उस अहंपंक से उभरे और गुरुचरणों में पुनः लकुटिवत जा गिरे।

—"अब अधिक न छलो भगवन्! मेरी ऐसी परीक्षा क्यों नाथ?"
मत्स्येन्द्र का अन्तकरण प्रसन्न हो उठा, प्रकट में वह पुनः बोले—

—"देखो वत्स, यह सौलह सौ कामिनियों का यौवनवृत्त दुर्लभ है। कामाक्षी जैसी चिरयौवना निखिल ब्रह्माण्य में अन्यत्र नहीं। मैं इन सवका परित्याग नही कर सकता!"

गोरख ने कामिनियों पर दृष्टि प्रेक्षण कर अपनी अभिमंत्रित भस्म उन पर फूंकी। तत्क्षण ही सभी यौवनांगनाएं पाषाण की प्रतिमाएं बन गई–शेप रही मात्र कामाक्षी।

—"अरे गोरख............यह क्या अनर्थ किया?" मत्स्येन्द्र ने दुःखी होने का सफल अभिनय किया। कामाक्षी के हृदय में अमर्षाग्नि की ज्वाला जल उठी।

—"गोरक्ष, साधनामण्डल को भंग कर दिया तूने।" कामाक्षी का अमर्ष स्वर उभरा। स्मरण करते ही कामाक्षी के हाथ में दिव्य खड्ग प्रकट हुआ। कामाक्षी के मृदु कलेवर में भयंकरी भीमा रौद्री कराल तनु काली प्रकट हुई।

अम्बे तेरे आदेश का ही पालन कर रहा हूँ। मेरा शिरोच्छेद करती है तो मैं प्रतीकार नही करूंगा।" गोरक्ष नत हुए। अन्तः मत्स्येन्द्र सजग हो चुके थे, उनका नादपुत्र तो चिरामर है–वे उसकी प्राणहानि कैसे होने देगें? पर गत वर्षों मे गोरक्ष ने कितना साधना बल प्राप्त किया है? उनका शिष्य देव्यामर्ष से किस भांति रक्षा–समर्थ है? वे दैव्या को भी दिखाना चाहते थे! प्रत्यक्ष मे वे बोले–

—"इस विघ्नकारक का शिरोच्छेद कर।"

मत्स्येन्द्र का आदेश होते ही तीक्ष्ण असियुक्त खड्ग गोरक्ष की ग्रीवा पर गिरा, पर आश्चर्य खड्ग झण्त्कार की ध्वनि करते खण्ड-खण्ड हो गया! जैसे प्रहार गोरक्ष ग्रीवा पर नहीं पाषण पर हुआ हो!

—"गोरक्ष..........मेरे पुत्र.............।" कामाक्षी ने खण्डित खड्ग फेंक कर गोरक्ष को अपनी गोद में समेट लिया।

—"तू सिद्ध है पुत्र।" कामाक्षी ने सस्नेह कहा—

—"मेरी सिद्धि-मेरा सिद्ध भाव कैसा माता? यह तो गुरुप्रदत्त है, मेरा करणीय नही।" गोरक्ष श्रद्धा से बोले!

—"अब इन सौलह सौ सुन्दरी योषाओं को पाषाणी कलेवर से मुक्त कर

पुत्र।" कामाक्षी ने आदेश दिया और उसका आज्ञापालन कर गोरक्ष ने उन्हे पूर्ववत रूप में ला दिया!

गोरक्षनाथ राजप्रासाद के उपवन में रहने लगे। मत्स्येन्द्र नित्यप्रति कामाक्षी और बिन्दुनाथ पर मोह प्रकट करते। गोरक्ष यह तो जान चुके थे कि उनके गुरु मोहमुग्ध होने का अभिनय मात्र कर रहे हैं। वे उनकी (गोरक्षनाथ की) परीक्षा ले रहे हैं अथवा मत्स्येन्द्रनाथ का अन्य कोई रहस्य है? वे ज्ञात नहीं कर सके।

एक रात्रि में योजनाबद्ध हो गोरक्ष को कुछ स्त्रियों ने अपने रूपयौवन के कामपाशों में बांधना चाहा। लोलापा मदयन्तिका मेखला, पताका चारों ही अनावृत हो उनकी धूनी पर पहुंची। महालंग और लंग गा रहे थे–

"जग भषनी भग राकससी, बिन दोतन जग खाए।
युवा जनम विरथा करे भोग भोग चिल्लाए।।"

धूणी की प्रज्ज्वाल शिखा में गोरख अविचल–निश्चल बैठे ध्यानस्थ थे। चारों स्त्रियों ने अपनी मायावी संरचना की! लोलापा ने अपनी वज्रविद्या से कामजागरण किया। लंग और मतलंग विकल हुए। काम के महासंचार से उनकी धमनियां और रसना नाडी तंत्र उत्तेजित होने लगा।

वे लंग महालंग का मान समाप्त हो गया। वे चकित भ्रमित से परिवर्तित वातारण को देखने लगे। उनकी धूणी उनके गुरु गोरख सब कुछ अदृश्य हो चुके थे। सुरभित पुष्पास्तरण पर स्वयं को शयनित देख, दोनों ही एक द्वितीय को प्रश्न भाव से देंखने लगे।

अकस्मात् शून्य आंतरिक्ष में प्रसन्न स्वर गुंजन हुआ। दोनों की दृष्टि योग व्योम की ऊर्ध्वता में उंठी। संसार की श्रेष्ठ रूपा दो युवतियां आंतरिक्ष से उतरते देख वे चकित हुए। दोनो स्त्रियां वसनहीन थी। उनके यौवन विकसित अंगो से काम का उत्ताप फूट रहा था। दोनों ने धरास्पर्श किया और कामाग्नि में दग्ध दोनों योगियों का कामातुरो अभिसारिकाओं ने प्रगाढ़ालिंगन किया। योगी भय से चीखे. ....रक्षा..............रक्षा प्रभो..........ऽ............ऽ......।"

गोरक्ष की ध्यान ताली खण्डित हुई। उनके कर्णेन्द्रियों में महालंग, लंग की आर्त पुकार श्रवण गोचर हुई। उनके नेत्र खुले, देखा समस्त जड़–चेतन में काम व्याप्त है। उनके अंग में भी दो अनावृत देही सुन्दरियां मृतवत पड़ी है, सम्भवतः

वे दोनों उनके देहस्थ योगाग्नि [illegible]
कामालिंन युवतियां मूर्च्छित-अवस्था [illegible]
से भी कम समय में जान गए। [illegible]
किया। तत्क्षण सर्वमोहनी माया के [illegible]

महालंग, लंग को अपना [illegible]
होते ही दोनों स्त्रियों ने लंग, महालंग को [illegible]
मदयन्तिका थी। गोरक्ष की धूणी के [illegible]
पताका दोनो मृतवत पड़ी थी!

—"माताओं योगियों को धर्म [illegible]
योगी विचलित नहीं होता। लाओ [illegible]
आ जाएगा।"

लोलापा और मदयन्तिका [illegible]
उठी! उसी समय गुल्मों के पार्श्व से [illegible]
विजय की उल्लखित रश्मियां नृत्य कर रहीं थीं।

—"देवी लोपा, तुम्हारा विद्याजनित [illegible]
लोलापा ने पद्मलोचनों से अश्रुवारि [illegible]
सहकर्मणियों द्वारा उठवाया और प्रस्थान कर गई।

राजप्रासाद शोकाग्नि से दग्ध हो उठा! [illegible]
पर एकत्रित हो गया था! मत्स्येन्द्र [illegible]
समीप ही बिन्दुनाथ का शव पड़ा था।

बिन्दुनाथ गोरक्ष की धूणी के [illegible]
से युक्त विषधर ने दंश कर दिया। बिन्दु के [illegible]
नीलफेन का स्राव हुआ और उसने प्राण त्याग कर दिया।

कामाक्षी का हृदय विदीर्ण हो रहा था [illegible]
खण्डित नहीं हो पा रही थी! गोरक्ष [illegible]
बिन्दु को पुनर्जीवन प्राप्त होना सामान्य [illegible]
मोहान्धग्रस्त हो रुदन रत है?

गोरक्ष ने अपने गुरु मत्स्येन्द्र के चरणों [illegible]

निरंजन का घोष कर भूमि रज बिन्दु के मुख में डाल दी। बिन्दु एक क्षण पश्चात ही जाग उठा, जैसे गहन निद्रावस्था से उठा हो। गोरक्षनाथ के जयघोष से धरा नभ ध्वनित्व हो उठे! कामाक्षी और मत्स्येन्द्र ने गोरक्ष को भांति-भांति से आशीष वर प्रदान किए।

इस प्रकार की अनेकानेक घटनाएं घटित हुई। गोरक्ष की कीर्ति कामिनी देश से बाहर अन्य देशों में भी जाने लगी। त्रिया राज्य के पुरूष स्वतन्त्र हो गोरक्ष के हठयोग में दीक्षित होने लगे। इस कार्य में शिपिविष्ट, चन्द्रमौलि और अनंतवज्र ने अपूर्व सहयोग दिया।

यही नहीं गोरक्ष ने अपनी मातृभक्ति से श्रद्धा से कामाक्षी को अभिभूत कर दिया। सदैव वह बिन्दु की ही भांति गोरक्ष का ध्यान रखती। बिन्दुनाथ के समान गोरक्ष भी हठ करते। एक दिन बिन्दु पयपान कर रहा था, गोरक्ष भी आ गए! उनकी स्मृति में महात्मा सुरत आश्रम के नित्यश्मशान में घटित घटना चपला की भांति उद्दीप्त हुई!

माता बिन्दु पयपायी है, मुझे उससे ईष्या है! मैं भी बिन्दु की भांति लघु वयावस्था में होता तो मैं भी अमृत पान करता।" गोरक्ष बोले-

कामाक्षी हँस उठी फिर सहज बोली-"बड़ा योगी बनता रे। जगत को अपने चमत्कारों से चकित कर रखा है तूने। ले अब अपनी माता का चमत्कार भी देख।" कामाक्षी ने अपने द्वितीय स्तन से पय निचोडा और अंजुली में एकत्र कर उससे गोरक्ष का अभिसिंचन किया। कुछ क्षणों में गोरक्ष के स्थान पर एक 6-7 माह का बालक भूमि पर लेटा हुआ था। कामाक्षी ने सस्मित उसे उठाया और दूसरे स्तन का स्तनमुख शिशु मुख में दे दिया। शिशु किलक-किलक कर हर्ष प्रकट करता स्तनपान करने लगा। कुछ दिनों तक गोरक्ष शिशुरूप में रहे फिर मत्स्येन्द्र प्रभु की आज्ञा और इच्छा से पुनः अपने स्वरूप को प्राप्त हुए।[4]

एक अवसर पर गोरक्ष के किसी सुकृत से प्रसन्न हो कामाक्षी ने वरदान का वचन दिया। गोरक्ष तत्क्षण बोले-"माता गुरुदेव की महती आवश्यकता है जगत में पंथ सवर्द्धन हेतु मैं उन्हें अपने साथ ले जाना चाहता हूँ मेरी इच्छा को पूर्ण करे माँ विमला।" कामाक्षी स्तब्ध! वचन तो प्रदान कर ही दिया था, अतः कामाक्षी ने अवरुद्ध कण्ठ स्वर से स्वीकृति भी प्रदान की!

रात्रि का एकान्त! मत्स्येन्द्र और कामाक्षी वार्तालाप में रत थे। अकस्मात् ही

गोरक्ष उस ओर आ गए। वार्तालाप उनके विषयक ही हो रहा था। मत्स्येन्द्र कर रहे थे-

—"रानी गोरक्ष स्पर्शोत्पल है। यहाँ निवास कर मेरा उद्देश्य कुलार्चन तो था ही, साथ ही मैं गोरक्ष का परीक्षण भी करना चाहता था। मुझे दृढ़ विश्वास था, गोरक्ष सदैव निर्विकारी निर्मल ही रहेगा। द्वितीय मैं गोरक्ष के माध्यम से ही यौन विकृति की साधनाओं का मूल मर्म भी प्रकट करने का आकांक्षी था, क्योंकि जिन मान्यताओं का मैं पक्षधर हूँ, उनके ही खण्डन से मेरा पंथ दूषित होता, जबकि समाज और देश में अब उन साधनाओं के सत्पात्र प्राप्त नहीं होते। गोरक्ष के सर्वाभ्युत्थान केन्द्रित मेरी लोक में अवमानना हो, अपवाद हो तो भी मुझे स्वीकृत है।"

—"पर यह नाट्याभिनय का समापन क्या होगा प्रभु?" कामाक्षी का प्रश्न था।

—"तुम बिन्दुनाथ को संस्कारित कर पोषित करो रानी। मैं प्रातः ही गोरक्ष के साथ यहाँ से प्रस्थान करूंगा।"

—"प्रभु! आपका विरह..............? मेरा श्रेयस् कैसे संभव है नाथ।" कामाक्षी का कण्ठ वाष्पित हो उठा, नेत्रों से अविरल अश्रुपात हो उठा!

—"मोही नहीं स्नेही बनो रानी! जब भी पुकारोगी, समीप ही पाओगी।" मत्स्येन्द्र ने कामाक्षी के नेत्रों से अश्रु पोंछते हुए कहा!

गोरक्षनाथ भावविभोर हो उठे। उनके उत्थान के हित ही गुरुदेव ने लोकापवाद और अवमानना को स्वीकार किया, लोक हित के हेतु गुरुवर्य ने इतिहास में यह अंकित कराया कि गुरु को शिष्य ने त्रिया देश से मुक्त कराया। वे गुरु कृपा की इस अतिरेकता को प्राप्त कर रो उठे। और दौड़ कर गुरु चरणों मे जा गिरे। मत्स्येन्द्र ने उनके शिर पर अपना वरदहस्त रखा।

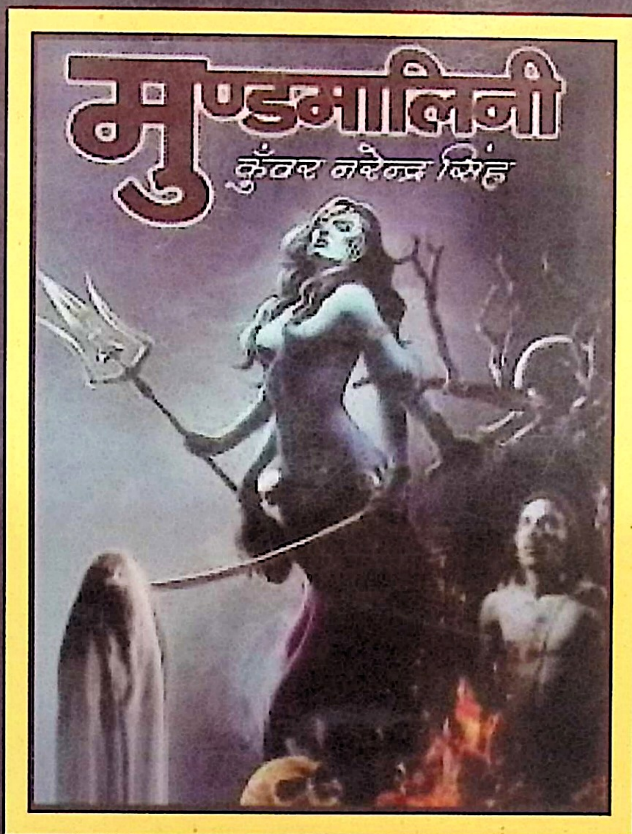
प्रातः मुहूर्त में मत्स्येन्द्र और गोरक्ष नाथ महालंग, अंग त्रिया देश से चल पड़े। लोक कह रहा था गोरक्षनाथ सामर्थ्यवान योगी है। उसनें अपने गुरु को नारी मोह सत्ता से मुक्त किया। गोरक्षनाथ ने ही इस लोक भ्रान्ति का अनेकों वार खण्डित करने का प्रयास किया पर गुरु ने उन्हें वर्जित कर आदेश दिया कि वे इस रहस्य को कभी भी लोक पर प्रकट न करें। नाथपंथ फलित-पुष्पित होने लगा। भारत में ही नही विश्व के अनेक देशों में नाथों की 'अलख हुंकार' गूँज उठी।

1. नाथ योगियों के चिह्न वेषादि के विषय में इस प्रकार उल्लेख मिलता है– मुद्रा, धंधारी, आधारी, शृंगी या सिंगी, सोटा, किंकरी, सुमिरणी (जपमाला) मूंज मेखला, कंथा या कफनी (कोपनी) गुदरी, खप्पर पात्र, त्रिपुण्ड, बटुवा जिसमें विभूति रखी जाती है। नाथ योगियों में कनफटा भी होते हैं और इसी सम्प्रदाय में कहीं-कहीं नाथ ओघडों में कानफटे नहीं होते। कहा जाता है कि हिंगलाल शक्ति पीठ पर दो सिद्ध अपने एक शिष्य का कर्णमुद्रा संस्कार कर रहे थे, पर वे वार-वार शिष्य के कान को चीरते और वह कर्ण विच्छिद छिन्द्र अपने आप बन्द हो जाता। अतः दोनों सिद्ध हार मान गए। इसे मां हिंगलाज का निर्देश मानकर नाथ ओघडों से कान छिदवाना बन्द कर दिया।
2. वाद्य यन्त्रों के 4 प्रकार निम्न हैं–
   1. तत – वीणा आदि वाद्य
   2. आनद्ध – मृदंग, ढोल आदि
   3. सुषिर – बांसुरी आदि
   4. घन – कास्य की झाझ, मंजीरा आदि
3. पाठक अवंती के महाश्मशान में तथा कालभैरव मन्दिर में घटित मातंगपा प्रसंग का अवलोकन करें।
4. वस्तुतः यह प्रसंग किसी ग्रन्थ अथवा श्रुति में नहीं मिलता।





विश्वशर्मण्य
में निवास
तो था ही,
परीक्षण भी
गोरक्ष के
विकृति की
मर्म भी प्र
थे, क्योंकि
वे पक्षधर
से पंथ दूषि
समाज औ
साधनाओं
होते। गोर
उनकी (
हो, अपवा
स्वीकृत थ



आ मुझे परिम्भण दे, मेरे स्तिमित अंगों की सुचारुता में तू लय होजा,
मेरे स्मर स्फुटनी रन्ध्रराजि से प्रक्षरित तीर्थवारि की पुनीतता से प्रत्यभिज्ञ हो।
यही कामाख्या का परम भोग्य है इसी से ब्रह्माण्ड का सृजन होता है, तू भी
इसी का उत्पादक तत्व है। जगतप्रसू: कामाख्या के इसी प्रणेय महारंध्र में
प्राणीधान कर। यही तुझे अभीष्ट है।

(मुण्डमालिनी से)